भारतीय कविता
१९५४–५५

भारतीय कविता
१९५४–५५

भूमिका

जवाहरलाल नेहरू



साहित्य अकादेमी
नई दिल्ली

प्रकाशक :
वितरक :
पब्लिकेशन्स डिवीज़न
सूचना और प्रसार मन्त्रालय
ओल्ड सेक्रेटरियेट, दिल्ली ८

मूल्य : बारह रुपये

मुद्रक :
वि. पु. भागवत
मौज प्रिंटिंग ब्यूरो, बंबई ४

भूमिका

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद से हमारी भाषाओं में नवजागृति के चिह्न स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे हैं। इस नवजागरण के साथ-ही-साथ कुछ दिनों से इनमें संघर्ष और विरोध के लक्षण भी प्रकट होने लगे हैं। मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि पारस्परिक सहयोग और मैत्री-भाव से ही हमारी भाषाओं के विकास और प्रगति में तेज़ी आ सकती है, उसके हिमायती और प्रेमी लोगों में पारस्परिक विद्वेष और प्रतिस्पर्धा के भाव उकसाकर नहीं। वैसे तो, मेरे विचार से किन्हीं भी भाषाओं के विकास के लिए यह सिद्धान्त लागू होता है, भले ही वे एक-दूसरे से बहुत घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध न हों। किन्तु अपने अत्यन्त निकट आपसी संबंध के कारण भारतवर्ष की भाषाओं के लिए तो यह सिद्धान्त कहीं अधिक उपयुक्त और वाञ्छनीय है।

साहित्य अकादेमी ने सभी भारतीय भाषाओं को विकसित करना और उनमें पारस्परिक सहयोग की इस भावना को प्रोत्साहित करना ही अपना लक्ष्य बनाया है। हम जितना ही अधिक दूसरी भाषाओं को जानेंगे और समझेंगे उतना ही अधिक अपनी भाषा का मर्म समझ सकेंगे। इसी लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिए अकादेमी ने पुस्तकों और विभिन्न भारतीय भाषाओं में उनके अनुवाद की विशाल योजनाएँ बनाई हैं। इस कार्यक्रम में 'भारतीय कविता : १९५३' नाम से एक संकलन १९५६ में प्रकाशित हो चुका है। यह पुस्तक उसी शृंखला की दूसरी कड़ी है। मैं इसका स्वागत करता हूँ और अनुरोध करता हूँ कि सिर्फ वे लोग ही नहीं जो काव्य के प्रेमी हैं, बल्कि वे सभी, जो हमारे देश के साहित्य के विकास में सहायता पहुँचाना चाहते हैं, इस काव्य ग्रन्थ को अवश्य पढ़ें।

इस समय हम लोग पञ्चवर्षीय योजना तथा देश के आर्थिक विकास के कार्य में लगे हुए हैं। निश्चय ही यह बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है। परन्तु मनुष्य का सारा जीवन इतने में ही सीमित नहीं है। कला और साहित्य, नृत्य और संगीत के बिना जीवन बहुत-कुछ नीरस और प्रेरणाहीन हो जायगा, क्योंकि कला और साहित्य के माध्यम से ही कोई राष्ट्र अपनी आन्तरिक अनुभूतियों को प्रधान रूप से अभिव्यक्त करता है।

यह संकलन हमारे आन्तरिक संबंधों को उजागर करके विभिन्न भारतीय भाषाओं को एक-दूसरे के निकट लाता है। इसलिए इन भाषाओं को एक मिलाने वाली शक्ति के रूप में काम करना चाहिए। इन्हें विच्छेद और बिलगाव को बढ़ावा देने वाली ताकत के रूप में प्रकट नहीं होना चाहिए, जैसा दुर्भाग्यवश ये कभी कभी दिखाई देने लगती हैं।

जवाहरलाल नेहरू

वक्तव्य

सन् १९५४ ई. के अन्त मे यह निश्चित किया गया था कि साहित्य अकादेमी की ओर से भारतीय भाषाओ की कविता का एक ऐसा वार्षिक सकलन प्रकाशित होता रहे जिसमें भारत की १४ भाषाओ की गत वर्ष मे प्रकाशित चुनी हुई दस-दस कविताएँ समाविष्ट हो। साथ ही यह भी निर्णय किया गया था कि यह संकलन हिन्दी में प्रकाशित हो, जिसमे एक ओर देवनागरी लिपि मे मूल कविता हो और दूसरी ओर उसका हिन्दी अनुवाद दिया जाय।

प्रस्तुत संकलन इसी योजना का द्वितीय विनम्र प्रयास है। इसके पूर्व पहला संकलन 'भारतीय कविता: १९५३' के नाम से सन् १९५६ मे प्रकाशित हो चुका है। इस संग्रह के लिए प्रारम्भ में प्रत्येक भाषा की कुछ उत्कृष्टतम रचनाओ का चुनाव अकादेमी के विभिन्न भाषाओं के परामर्शदाताओं अथवा उनके द्वारा प्रस्तावित व्यक्तियो ने किया और फिर, अन्ततः कार्यकारिणी समिति ने उनमें से प्रकाशनार्थ कविताएँ चुनी।

इन कविताओं के लिप्यन्तर और अनुवाद का कार्य सुयोग्य एवं अनुभवी द्विभाषाविज्ञ व्यक्तियो द्वारा सम्पन्न कराया गया है। हिन्दी मे प्रकाशित होने वाले सकलनों और पत्र-पत्रिकाओ मे अन्य लिपियों के नागरीकरण की जो पद्धति प्रचलित है, लिप्यन्तर कराते समय हमने उसीको सामने रखा है। वैसे, भारत की सब भाषाओ की ध्वनियो के सर्वमान्य एवं सर्वग्राह्य स्तरीकरण या चिह्न-निर्माण का प्रयत्न अभी बाल्यावस्था में ही है, फिर भी हमने ऐसा मार्ग अपनाने का प्रयत्न किया है जो अधिक-से-अधिक निर्विवाद हो। उर्दू कविताओं का अनुवाद न देकर हमने प्रचलित पद्धति के अनुसार उनके नीचे कठिन शब्दो के अर्थ-मात्र ही दिये हैं।

इस सकलन में समाविष्ट सभी कविताओ का अनुवाद हमने मूल कविता की भावना के साथ-साथ उसकी शब्दावली को भी यथासभव ज्यों-का-त्यो रखने के विचार से अक्षरशः तथा पंक्तिशः गद्य मे ही कराया है। कविता का अनुवाद करना कठिन है। इस सकलन के अनुवादको ने प्रयत्न किया है कि अनुवाद के साथ मूल कविता का अधिक-से-अधिक सान्निध्य और सारूप्य बना रहे, जिससे पाठक कुछ प्रयास करके मूल का भी थोड़ा-बहुत रसास्वादन कर सके। इस प्रकार यह संकलन हिन्दी को अन्य भारतीय भाषाओ की काव्यगत शैलियों और मुहावरो के निकट लाने की दिशा में भी एक विनम्र प्रयास है।

इस अवसर पर हम अपने उन सभी विद्वानो और प्रतिष्ठित साहित्यकारो, कवियो और अनुवादकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिनके सक्रिय सहयोग से

यह संकलन तैयार हो सका है। हमारी प्रकाशन-योजना के अन्तर्गत इस शृंखला की तीसरी कडी भी शीघ्र ही प्रकाशित होगी; जिसमे १९५६–५७ मे प्रकाशित भारतीय भाषाओ की चुनी हुई कविताएँ इसी पद्धति के अनुसार समाविष्ट होगी।

अपने ढंग का एक-मात्र और अभिनव प्रयत्न होने के कारण ऐसे प्रकाशन मे पर्याप्त समय की अपेक्षा होती है। विभिन्न भाषाओ की उत्कृष्ट कविताओ का प्रामाणिक चुनाव करना, उनका अनुवाद कराना और फिर प्रत्येक संग्रहीत कवि की अनुमति प्राप्त करना—ये सभी समयसाध्य कार्य हैं। फिर भी इस संकलन के प्रकाशन मे काफी विलम्ब हुआ है। 'भारतीय कविता : १९५३' के प्रकाशन से जिन विद्वानो और सहृदय पाठकों का ध्यान आकर्षित करने में हम समर्थ हुए थे, वे बीच-बीच मे इस सग्रह के विषय मे पूछ-ताछ भी करते रहे हैं। हम इस विलम्ब के लिए उन सभी के निकट क्षमा-प्रार्थी हैं।

मन्त्री, साहित्य अकादेमी

अनुक्रम

अ स मि या

चयन : बिरिंचिकुमार बरुआ
अनुवाद . चक्रेश्वर भट्टाचार्य

कवि-नाम	कविता
केशव महन	*दिवा-स्वप्न*
दिनेश गोस्वामी	*दलील*
नवकांत बरुआ	*प्रार्थना : आकाश के प्रति : खिडकी से*
प्रफुल्ल भुइयाँ	*निर्जनता*
बीरेन बरकटकी	*नवजातक*
महिम बरा	*दृष्टि*
महेद्र बरा	*विफल प्रतीक्षा*
वीरेश्वर बरुआ	*डायरी*
हरि बरकाकती	*संधि*
हेम बरुआ	*छाया-भ्रम*
होमेन बरगोहाँई	*उज्जीवन*

পোহৰৰ সপোন

চিত্ৰলেখা ! চিত্ৰলেখা !!
তোমাৰ
পোহৰ ধৰ্মী সাধনাৰ জয়—
যাউতি যুগীয়া হল : শিল্পৰ জয় হল ।
বিধিনিৰ বাণ মৰি শেষ হৈ গল ।
গতিক ৰোধিব কোনে ? অনিৰুদ্ধ যাৰ নাম ।
পোহৰ ঢাকিব কোনে—? উষাই যে তাৰ নাম
চিত্ৰলেখা ! চিত্ৰলেখা !!

তুমি জানো বুঢ়ী হলা ?
বুঢ়ী আইৰহে মুখত দেখোন তোমাৰ কাহিনী শুনো !
বসন্ত আহিলে পুৰণি গছতে ন কুহিপাত মেলে
তুলিকাত আজি চিত্ৰলেখাৰ নতুন ৰহণে খেলে ।
সাধুকথা জানো কেৱলেই সাধুকথা ?
ৰূপকোঁৱৰৰ শোণিত পুৰত
বাণ অসুৰৰ হাড়ত দুবৰি গজে ।
অনিৰুদ্ধ গতিৰ ছন্দত উষা হল লাস্যময়ী
শিল্পীৰ পৃথিবী সন্তান সম্ভৱা আজি
ৰূপকোঁৱৰ ! মোৰ ৰূপকোঁৱৰ !!

তথাপিও দেখো—
বাণদৈত্যৰ ছিন্নবাহুৰ এজুপি ৰঘুমলাই
শান্তি পুৰীৰ বুকুৰ মাজতে মেলিব খুজিছে শিপা !!
চিত্ৰলেখা !!

दिवा-स्वप्न

चित्रलेखा ! चित्रलेखा !!
तुम्हारी
आलोकधर्मी साधना की जय
चिरस्थायी हो गई : कला की जय हुई।
विघ्न का बाण मर गया, खत्म हो गया।
गति को रोक सकता है कौन ? अनिरुद्ध जिसका नाम है।
आलोक को ढँकेगा कौन ? ऊषा ही उसका नाम है,
चित्रलेखा ! चित्रलेखा !!

तुम क्या बूढी हो गई ?
बूढी दादी के मुँह से ही तुम्हारी कहानी सुना करता हूँ !
वसन्त आने से पुराने पेड में नई पत्तियाँ उगती है।
आज, तूलिका में चित्रलेखा का नया रंग खेलता है।
दतकथा सिर्फ क्या दंतकथा ही है ?
रूपकुमार के शोणितपुर में
बाण-असुर की हड्डियो में दूब-घास उगती है।
अनिरुद्ध गति के छन्दो में ऊषा लास्यमयी बनी
आज 'कलाकार की पृथिवी' सन्तान-सम्भवा है,
रूपकुमार ! मेरे रूपकुमार !!

तो भी देखता हूँ
बाण दैत्य की छिन्न बाहु का एक परावलबी पौधा
शान्ति पुरी की छाती के बीच में ही जम जाने के लिए तैयार है !
चित्रलेखा !!

गणजीवनर हेगुली उषाक
बन्दीकरार हीन अभिलास लइ
आजिओ ये वाणे मेलिछे हेजार बाहु !!
बाण मरि गल : वीज तार नमरिल ।
तुमि कत चित्रलेखा ?

तुमि कत आछा ? उषाई विचारिछे ।
रूपकोँवरर शोणित पुरत
बाण असुरर हाड़त दूबरि गजे ।
रूपकोँवर ! चित्रलेखा !! ज्योति प्रसाद !!
पृथिवीत होवा नतुन बाणर कि हब बारु दशा ?
चित्रलेखा !

कुरि शतिकार मोर असमर हाजार चित्रलेखा !!
तूलिका लओ आहा !
ज्योति प्रसादर पोहरर रं ठाक् भरि भरि आछे ।
चित्रलेखा !

तूलिका लओ आहा,
ज्योति प्रसादर । ज्योति प्रपातत—
हाजार हाजार पोहरर कणा—
उड़िब धरिछे चोवा ।
आन्धारर बाण बर भीरु आजि,
प्रेमर गानेरे हिसा ढाकिछे देहि !!
शांतिर रहण युद्धर देहात दिछे ।
चित्रलेखा ।

नतुन दिनर हेजार चित्रलेखा !!
ज्योतिये मातिछे सौवा ।

गणजीवन की रंगीन ऊषा को
बद करने की हीन अभिलाषा से
आज भी तो बाण ने हजारो बाहु बढाये हैं !!
बाण मर गया ? बीज तो नहीं मरा।
तुम कहॉ हो चित्रलेखा ?

तुम कहॉ ? ऊषा घूर रही है।
रूपकुमार के शोणितपुर में
बाण असुर की हड्डियो में दूब-घास उगती है।
रूपकुमार ! चित्रलेखा !! ज्योतिप्रसाद !!
पृथिवी में दाखिल हुए नये बाण की दशा क्या हो गई।
चित्रलेखा !

बीसवी सदी की मेरी असम की हजारो चित्रलेखाओ !
आओ तूलिका उठाओ !
ज्योतिप्रसाद के आलोक के रंग स्तर-स्तर में भरे हुए हैं
चित्रलेखा !

आओ तूलिका उठाओ,
ज्योतिंप्रसाद के 'ज्योतिप्रपात' में
हजारो आलोक के कण है,
वे देखो उड़ रहे हैं।
आज अंधकार का बाण बहुत ही डरपोक है,
प्रेम के गान से हिंसा को ढॉक रहा है।!
युद्ध की देह में शान्ति का रंग चढाया है।
चित्रलेखा !

नये दिन की हजारो चित्रलेखाओ !
वहॉ ज्योति पुकार रही है,

रूपकोॅवरर तूलिका हातत लोवा—!
गणजीवनर उषाड़ मातिछे— : गतिर्र अनिरुद्ध
समुद्यत बाण विधिनिर जाल लड़
शिल्पी तुमि आजि : सेड़ चित्रलेखा ।
उषा अनिरुद्धर महामिलनर
तुमिये करिबा दिहा ।
चित्रलेखा—!

नतुन दिनर अलेख चित्रलेखा ।
रूपकोॅवरर तूलिका हातत लोवा ।—

केशव महंत

असमिया

रूपकुमार की तूलिका उठाओ!
गण जीवन की उषा पुकार रही है : गति के अनिरुद्ध।
विघ्न का जाल लेकर बाण भी हाजिर है
आज तुम कलाकार हो : वह थी चित्रलेखा।
ऊषा-अनिरुद्ध के महा मिलन की
व्यवस्था तुम ही करोगी
चित्रलेखा!

नये दिन की सैकडो चित्रलेखाओ!
रूपकुमार की तूलिका उठाओ!

केशव महंत

दलील

मोर व्यग्र आन्धारर तरंगशीर्षत एइ कामनार—
उत्तुग मिछिल— ।
आहे याय दले दले जाके जाके बहु पंगपाल
नाहर फुटुकी बाघ, सिह आरु कुकुर नेचीया । मेनकार
स्तनरेखा रजनीर बिरस गीतत हिम है उरि आहे;
कय माया नगरीर
कथा यार पचा चुबुरीत नतुन जन्मर
भ्रूणे कथा कय आमार बिस्वास आरु प्रेम आरु जन्म मृत्युर ।
पगपाल आहे जाके जाके । आजि, कालि,
अहाकालि समयर—
सागरत क्लांत शांत शिशुटिर दरे । तार बाबे आरु किय मज्जार वेदना ?
जीवनर दलीलत निर्वोध स्वाक्षर आरु बेचाकिना तेज मञ्हर ।
उर्वशीर नग्नदेहत जीर्ण शीर्ण चुमार परश । दुवार मुखत ष्ट्रीट
चिंगारर भोग विजडित कंठ । मूढतार—
तिक्ततार बचनार निश्चेतन करुणार भग्नस्तम्भ-
नगरीर—
आयना भगा दम सूर्यर पोहर परि जले
किउटि कुरा रजनीगन्धार
समदले करे वर्षाशीत, गधूलि रातिर मराशत अस्त्रोपचार ।
नामहीन—
अख्यात वासना । विकल्प, विकल्प कत ?—
एये तार शेषर कान्दोन ।

दिनेश गोस्वामी

दलील

मेरे व्यग्र अधकार के तरंग-शीर्ष में यह कामनाएँ
उत्तुग एकत्रित हैं।
आते है जाते है दलदल मे झुड-झुड मे बहुत टिड्डी
चीते, सिह और भेड़िये। मेनका की
स्तन-रेखा रजनी के विरस गीत मे हिम होकर उडकर आती है-
कहती है माया नगरी की
बाते जिसकी सडी हुई बस्ती मे नव जन्म का
भ्रूण बाते करता है हमारे विश्वास और प्रेम और जन्म-मृत्यु की।
झुड-झुड टिड्डी आती है। आज, कल,
आने वाले कल के समय के
सागर मे क्लांत शान्त शिशु की तरह। उसके लिए मज्जा की वेदना और क्यो?
जीवन की दलील मे निर्बोध स्वाक्षर है और रक्त-मास का क्रय-विक्रय है।
उर्वशी की नग्न देह मे जीर्ण-शीर्ण चुबनो का स्पर्श है।
दरवाजे के सामने
स्ट्रीट-सिगर का भोग-विजडित कठ। मूढता का,
रिक्तता का, वंचना का, निश्चेतन करुणा का, भग्न-स्तम्भ
नगरी का
टूटे हुए आइने का झुड सूरज की धूप मे जलता है।
क्युटीकुरा रजनीगधा का
एकत्र वर्षा शीन बनता है, गोधूलि मे रात मे मृत शव मे अस्त्रोपचार है।
नामहीन
अख्यात वासना है। विकल्प, विकल्प कहाँ है?—
यही उसका आखिरी रोदन है।

दिनेश गोस्वामी

प्रार्थना : आकाशर प्रति : खिरिकिरे

The bone's prayer to death its God Only the hardly, barely, prayerable
pıayer of the One Annunciation

आकाश, तोमार नीला रं मोर व्यथारे
आरु नीला करि करुण करार कामना
क्षमा करा आजि, दुषार दुखर कथारे
आत्मरतिर बिलासर दिन गणा ।

कालपुरुषर तरोवाले ललै केचा सूर्यर कक्षपथत शान,
आउँसी निशार उल्कार जुइ आबेलिर कवितात ।
वन्ध्याज्ञानर गुहात बिचारि प्राण ओषधिर अनुपान
बिफल बेजालि । तोमार नीलिम नियरर कणा दिया तात ।

गुहार पोहर अचिनाकि किय, प्रतिसरनेरे कुंचित
मइ जानो सेया आजि सन्ध्यार मरा सूर्यर वर्णालि ।
गधूर बताह । हेजार सापर बिहर निशाह सांचित
शत निबुलाक निचुकोवा नील, हे आकाश तात दिया ढालि

मोर मगजुत हेजार अनाथ शिशु सूर्यर कलरव,
बहु उजागर स्वप्न शिशुर दिठकर बाबे कामना ।
मोर धमनीत सिँहतर करोँ स्पन्दन अनुभव,
निशाहत मोर नोपजा शिशुर मरणर यंत्रणा ।

निरुपाय यदि मरण निचाई प्राणार उछव मुखर हय
जेका देवालत कार लेखा सेया ? पोहरर हाते मचि याय
जमा खरछर कटाकुटिबोर तोमार नीलात हक लय,
इमान तुच्छ मृत्युर बाबे हेडलाइनत ठाइ नाइ ।

प्रार्थना : आकाश के प्रति : खिड़की से

The bone's prayer to death its God Only the hardly, barely, prayerable
prayer of the One Annunciation

आकाश, तुम्हारे नील रंग को मेरी व्यथा से
और नील कर करुण बनाने की कामना
आज क्षमा करो, एक-आध दुःख की बात से
आत्म-रति के दिन गिनो !

काल-पुरुष की तलवार ने कच्चे सूर्य के कक्षपथ मे धार पाई है,
अमा-निशा की उल्का की आग शाम की कविता मे है ।
वन्ध्या ज्ञान की गुफा मे प्राण औषधि का अनुपान ढूँढना
विफल वैद्यपन है । तुम्हारी नीलिम निहारिका का कण उसमे दो ।

गुफा की रोशनी अपरिचित क्यो; प्रतिसरण से कुंचित
मै जानता हूँ, आज संध्या की मरी हुई सूरज की वह वर्णाली है
भारी हवा । हजारो साँपो के विष का निश्वास संचित
रात 'नैबूला' को तुष्ट करने वाला नील, हे आकाश, वहाँ डालते हो

मेरे मस्तिष्क मे हजारो अनाथ शिशु-सूर्यों के कलरव हैं ।
सैकड़ो जाग्रत स्वप्न-शिशुओ के दिवा-स्वप्न की कामना है,
अपनी धमनी मे उनका स्पन्दन मै अनुभव करता हूँ,
मेरे निश्वास मे अजान शिशु की मरण-यन्त्रणा है ।

अगर निरुपाय मरण के नशे मे प्राण-उत्सव मुखर होते है॰
(भीगी दीवार मे वह किसका लेख है॰? जो दिन का हाथ पोछ देना है)
तो जमा-खर्च की काट-छाँट तुम्हारे नील मे ही मिट जाय,
इतनी तुच्छ मृत्यु के लिए हेडलाइन मे जगह नहीं है ।

हे आकाश, मोर प्रार्थना शुना, निरुपाय यदि, विलास एया,
कौन प्रश्नर इंगित कोवा अंगठार दरे जोनटो बॅका—
आमार आकाश निचेइ अकनि, तोमार आकाश दिया ।

बन्ध घरर खिरिकि फ्रेमत रातिर आकाश ऑका ।

नवकांत बरुआ

१३ असमिया

हे आकाश, मेरी प्रार्थना सुनो, अगर यह विलास निरुपाय है,
तो कौन-से सवाल का इगित है कि अंगार की तरह चॉद टेढा है—
हमारा आकाश एकदम छोटा है, तुम्हारा आकाश दो ।

(बद घर की खिडकी के फ्रेम मे रात का आकाश अंकित है ।)

नवकांत बरुआ

निर्जनता

तात आरु एको नाइ—केवल प्रान्तर । अत तत यदि—
मेघ गछ—पाहार आछिल सकलो एकत्र हैं
हल निर्जनता । मयो हलो,
मयो हलो निर्जनता, केवल प्रान्तर आरु प्रान्तर निर्जनता ।

कालि राति यदि परा नाइ सेउजीया बरषुण,
सेया तेनेहले घॉह आरु बिरिना बनर
सेउजीया अन्धकार ।

सूर्य म्लान आबेलि परत कोन मृगनयनार
तन्द्रालु चकुर दृष्टि एबार येतिया गल घूरि
अमि पालो चिरनील आकाश विस्तार । मृगनयनाइ कले
शुइ थाका शुइ थाका
सेउजीया आन्धारत शुइ थाका
आकाशर टोपनि आहिछे ।

पाहरिलो आमि तात आछिलो किमान दिन,
दुदिन ने दुबछर ? मनत परिछे मोर
आछिलो ये आमि तात अनेक आन्धार राति
अनेक युगान्त आरु अनन्त अनादि राति
सेये मोर वासभूमि । ताते थाको आमि ।

तुमि कोन कल्लोलिना पृथिवीत थाका :
सेइ ये सेइ ये एक तिलोत्तमा उच्चवशजात
सुरम्य विपनित गै अनर्गल कथा पाते
हॉहे आरु गान गाय, बारांगना बुलि याक

निर्जनता

उसमे और कुछ भी नही है—सिर्फ प्रान्तर। अगर इधर-उधर—
मेघ पहाड थे तो सब इकट्ठे होकर
निर्जनता बन गई। मै भी हुआ
मै भी बन गया निर्जनता, सिर्फ प्रान्तर और प्रान्तर निर्जनता।

कल रात को अगर हरी बारिश नहीं गिरी तो
यह है घास और कॉस वन की
हरा अन्धकार।

सूर्य-म्लान शाम को जब किसी मृग-नयनी की
तन्द्रालु ऑखो की दृष्टि एक बार चक्कर काट गई
हमे मिला चिरनील आकाश का विस्तार। मृगनयनी ने कहा—
सोते रहो सोते रहो
रे अन्धकार में सोते रहो
आकाश को नीद आ रही है।

हम भूल गए कि हम उधर कितने दिन ठहरे थे
दो रोज क्या दो बरस? मुझे याद आया है
हमने उधर बहुत अधेरी राते बिताई
बहुत-से युगान्त और अनन्त राते
वही मेरी वास-भूमि है, हम उधर ही रहते है

तुम कौन कल्लोलिनी पृथ्वी मे रहती हो;
वही जो एक तिलोत्तमा उच्च-वश-जात
सुरा-विपनि मे अनर्गल बातचीत करती है
हॅसती है और गाने गाया करती है, जिसको वारागना कहकर

मुद्रा याचे बहुत मानुहे—, सेइ प्रवाद-नायिका
पृथिवीत थाका यादि तुमि मध्याह्न सूर्यक मइ
कै गलो कथा, येतिया आछिलोँ आमि
इकरार बेर आरु खेरर चालेरे सजा आकाशर अभासत
मा आरु मइ। अनेक अरण्य नदी तीर्थ आरु जनपद
भ्रमण करिलो आमि—भिक्षारी सन्तान आरु भिक्षारिणी;
आमि दुइ निःस्व आत्मा

बहुदूर धूरि आहि पालोँ, प्रान्तरर निर्जन प्रदेश
प्रमत्त सूर्यर प्रेम अथवा कामना
प्रान्तरे पाहरि गल, प्रति राति
अन्धकारे है सुरजन्मा पोहर बिलाय
घर आरु आकाशत। बताहत भरि परे कुँवलीर घ्राण
समयर मृत्यु हय, पृथिवीर मृत्यु हय
थाके माथोँ प्रान्तरर अनुभव करिबर
निर्जनता मा आरु मइ।

प्रफुल्ल भुइयाँ

असमिया

बहुत लोग मुद्रा चढाते है, वही प्रवाद-नायिका·
पृथिवी मे अगर तुम रहते हो मध्याह्न सूर्य से मै कहता गया
जब हम थे।
सरकंडे की दीवार और खिड़की से पाये हुए आकाश के आभास मे
मॉ और मै। सैकडो अरण्य-नदी-तीर्थ और जनपद मे
हमने भ्रमण किया——भिक्षुक संतान और भिखमगी;
हम दोनो निःस्व आत्मा

बहुत दूर चक्कर काटते-काटते दाखिल हुए प्रान्तर के निर्जन प्रदेश मे।
प्रमत्त सूर्य का प्रेम या कामना
प्रान्तर भूल गया, हरेक रात को
अधकार सुरजन्मा बनकर आलोक विकीरण करता है
घर और आकाश मे। वायु भर जाती है कुहेलिका के घ्राण से
समय की मृत्यु होती है, पृथिवी की मृत्यु होती है
सिर्फ प्रान्तर को अनुभव करने के लिए वाकी रह जाती है
निर्जनता मॉ और मै।

प्रफुल्ल भुइयाँ

नवजातक

अनागत दिन गणि पृथिवीर विशाल बुकुत
आगन्तुक नव जातकर—
अतीत हेराय याय आमि रचा वर्तमान
भविष्यर सॅचार काठित कालर मामर।
पृथिवीर मेनका मरमे मोक
देखुवाले खीण आभा आशा सूरुजर
तुमि पावा पुतलार स्नेह आलिंगन
उजागरी ज्योतिहीन निशार बुकुत
जीवनर रामधेनु निराश डावरे भरा
तोमार बाटत सेइया

आचिनाकि कीचकर दल
मइ पालो पकिल बाटते मोर
उन्मादना शिराइ शिराइ
तुमि पावा पथे पथे कंसर आहवान
मेटभरा ययातिर जरा।
हे बुरंजीर नतुन अतिथि
तुमि शुना साधु नतुन दिनर
युगक स्तम्भित करा आजिर कालर
कलम्बच हेराइ याय, गुहार माजत
इथारर सिपारेदि पृथिवीर सीमा रेखा
मानुहर स्वप्नर साधना थल मंगल ग्रहत

रत्नाकर वाल्मीकि हय
कालिदासर अज्ञता हेराय—
जीवनर मोहनात ज्ञानर कल्लोल
आमार कारणे सेइया नतुन पोहर।

नवजातक

अनागत दिन की गिनती करके पृथिवी के विशाल वक्ष मे
आगन्तुक नवजातक का
अतीत खो जाता है, हमसे रचित वर्तमान
भविष्य की चाभी मे काल का जग है
पृथिवी की मेनका के स्नेह ने मुझे
दिखाई क्षीण आभा आशा के सूरज की,
तुमको मिलेगा पुत्तलिका का स्नेह-आलिगन
उजागरी ज्योतिहीन निशा की छाती में
जीवन इन्द्रधनुष निराश बादल से भरा है
तुम्हारे पथ मे वहाँ

अपरिचित कीचक का दल है
मेरे पकिल पथ में ही
मुझे मिली शिरा-शिरा में मेरी उन्मादना
रास्ते-रास्ते मे तुमको मिलेगा कस का आह्वान
भाराक्रान्त ययाति की जरा।
इतिहास के नये अतिथि,
तुम सुनते हो नये दिन की कहानी
युग को स्तम्भित करने वाले आज का
कोलम्बस खो जाता है गुफा के बीच में
ईथर के उस पार से पृथ्वी की सीमा-रेखा है
मानव-स्वप्न की साधना-स्थल मगल ग्रह है

रत्नाकर वाल्मीकि बन जाता है
कालिदास की अज्ञता मिट जाती है—
जीवन की मोहिनी मे ज्ञान का कल्लोल है
हमारे लिए यह नई रोशनी है।

तोमार जीवनर नतुन उषात
व्यास आरु वाल्मीकिर कापत मामरे धरे ।
आमितो नोहोवा हऑ नोहोवा युगत ।
उठा कण, उठा हेरा जारज सन्तान !
आमार जीवनर खन्तेकीया रदकाचलित
चाइ लोवा समुखर
आन्धारर शेष गतिपथ
अन्तहीन वासुकीर फणार तलत
पाहरि नायाबा सोण—

आमार जीवन जोरा स्वप्नर साधन ।

बीरेन बरकटकी

हमारे जीवन् की नई ऊषा में
व्यास और बाल्मीकि की कलम में जग लग जाती है।
हम तो मर मिट गए है मर मिटे युग मे।
उठो प्यारे! उठो हे जारज सन्तान!
हमारे जीवन की क्षणिक धूप रोशनाई में
देख लो सामने का
अंधेरे का आखिरी गति-पथ
अन्तहीन वासुकी के फण के नीचे
प्यारे, भूल मत—

हमारी जीवन-भर स्वप्न की साधना।

बीरेन बरकटकी

दृष्टि

बरषार गोटेइ आबेलि
पिरालित बहि थाके मोर चकुजुरि:
आबेलिटो बहि थाके एगोचा घॅाहत
मोर पिरालि कानत;
इ कि अकस्मात्
चकु चात्मारि, गल, सेउजीया विजुलीर—
चमकनि स्थिर
एगोचा बनत।
आकलुवा दुचकुत दुर्वासार भोक लै
थर हल दृष्टि मोर चकुर पतात:
पुलकत!
विस्मयत!!
प्रथम निशार प्रणयत!!!
सौन्दर्यर बहुत पोहर पार है बजारे बजारे
किमान घूरिलो। दर भाओ करि करि लागिल भागर
दोकाने दोकाने गै विफल ग्राहक।
आजि मोर पिरालि काषत,
सकलोरे चकुर आॅरत।
सेइ रूपे दिले धरा, एलागि ओफोन्द भरा दुचकुत लाज
अति साधारण कोनो प्रथमा प्रियार
कुचि मुचि ढाकि धरा ओरनी आॅरत,
दिया नाइ सौन्दर्यइ एइदरे प्रथम भुमुकि
पृथिवीर जलङ्गात,
ज्वला नाइ एइदरे दुचकु
काजिरङा किम्बा डबकात।

दृष्टि

वर्षा की सारी शाम
मेरी आँखे बरामदे में बैठी रहती हैं,
शाम बैठी रहती है एक गठरी घास में
मेरे बरामदे के कोने में,
यह अचानक क्या हुआ
आँखे कैसी चमक गईं ? हरी बिजली की
चमक स्थिर है
एक गठरी घास में।
लाचार दोनो आँखो में दुर्वासा की भूख लेकर
मेरी दृष्टि स्थिर हो गई आखो के कोने में :
पुलक में !
विस्मय में !!
प्रथम निशा के प्रणय में !!!
सौन्दर्य के बहुत-से आलोक पार होकर बाजारो मे
कितने चक्कर काटे। मोल-तोल करते-करते थक गया
दूकान पर दूकान मे बेकार ग्राहक हूँ।
आज मेरे बरामदे के कोने मे
सबकी नज़र से ओझल
वह रूप पकडा गया।
अभिमान से भरपूर उपेक्षित दोनो आखो मे शर्म
एकदम साधारण किसी प्रथमा प्रिया के
कुंठित ओढनी के संकुचित वेष्टन में;
इसी तरह सौन्दर्य कभी आँख-मिचौनी नहीं खेल रहा था।
पृथिवी की गहराई से
कभी दोनो आँखे इसी तरह जली नही है
'काज़ीरंगा' या 'डबका' में।

आजि मोर पिरालि काषत पृथिवीर सकलो माधुरी
थुप लै आछे दुटि ऍका बॅका रेखार माजत
चिकुन पिछल देह भेकुली एटिर ।
बामुणी भेकुली एटि नाइ तार आन परिचय,
तातो आछे जीवनत महिमार क्षण ।
आमि दुयो बन्धु तेने आमार दुयोरो
होक बन्धु स्वप्न विनिमय

महिम बरा

असमिया

आज मेरे बरामदे के कोने मे पृथिवी की सब माधुरी
इकट्ठी हो गई है दोनो टेढी-मेढी रेखाओ के बीच मे
चिक्कन पिच्छिल बदन है एक मेढक का।
मेढक है, उसका और कुछ भी परिचय नही है
उसका भी है जीवन का एक क्षण !
तब हम दोनो बन्धु है ' हम दोनो मे
स्वप्न का विनिमय हो।

महिम बरा

विफल प्रतीक्षा

पाँच बाजि गंलं। तथापि नाहिला तुमि
हयतो इमान परे दापोनत मुख चाइ तुमि
आपोन रुपत मुग्धा; तुमि आरु मइ माफलङ चाम।
नंथमाइ आरु रिलबङर आलिये गलिये घूरिम।
समय नहब जानो ? बर बेलि हल। सोनकाले आहा।
कारोबार कोमल भरिर खोज काणत परिछे सेया।
तुमि आहिछा ? नुलुकाबा। ओचरते बहा। अथनिरे परा
चाओंते चाओंते मोर चकुदुटा भागरि परिल....
तुमि नाहिला। कोनोबा चालिहा आहिल। मन भरि उठे विफल वेदनार
सन्ध्या एइ नामे एइ नामे। नमा नाइ एतियाओ।
तुमि, नाहिबा जानो ?

अवसन्न केरेणीर दले सन्धानी चकुर पाखि मेलि दिये।
टुकुराटुकुर कथार सॉथरे मेघर कुंडली पकाय।
चुरटर धोंवा ओलामि थाके। चेरापुंजित एतिया किजानि
मौचुमी बरषुण नामे। आरु लाबानर पथे पथे
पाइनर डाले डाले जिरनीया रद मच खाइ आहे
सन्ध्यार कोमल स्पर्शत। खाची गाभरु
उख्वापि पान्सिनियातर पचोवा कमिल।
छन्दमधुर उठा नमा ननक्रेमी खोज नाइ आरु।
तथापि नाहिला तुमि। छयबाजि पोन्धर मिनिट गल।

हयतो तुमि अभिमान करिछा। कालियेइ नकला किय ?
शिलॅगर एइ धुनीया सान्धिया कालि गुचि याबगइ;
आरु कोनो कालेइ उभति नहाके गुचि याब एइ सन्धिया।
बरुवा। आहक, अलप लाइटुमखार पिने....

विफल प्रतीक्षा

पॉच बज गए। तो भी तुम नही आईं।
शायद इतनी देर तक दर्पण मे अपना चेहरा देखकर
तुम अपने रूप पर ही मुग्ध हो रही हो। तुम और मै 'मफलाग' देखेगे।
'नंथमाई' और 'रिलबांग' की गली-गली में घूमेंगे।
समय नहीं होगा क्या? बहुत देर हुई। जल्दी आ जाओ!
किसी की नरम पद-ध्वनि कान में आती है, यहाँ।
तुम आई हो? मत छिपो! नज़दीक बैठ जाओ! कब से
ताकते-ताकते मेरी दोनो आँखे थक गई
तुम नहीं आई। कोई चलिहा आया। विफल वेदना से मन भर जाता है।
अब सन्ध्या प्रायः उतर रही है। अब भी उतरी नही।
तुम क्या नही आओगी?

अवसन्न मुन्शियो का दल संधानी ऑखो का पखा खोल देता है,
खंड-खंड बातो के पहलू मेघ की कुण्डली बनाते है।
चुरुट का धुआ झूलता रहता है। शायद अब चेरापूंजी में
मौसम की बारिश गिर रही है। आर लाबान के पथ-पथ में
पाईन की शाखा-शाखा में आराम लेती हुई धूप लौट जाती है।
सध्या के कोमल स्पर्श। खासी षोडशी का
'उखपिंग पान्सिनियात' का तूफान शान्त हो गया।
छन्द मधुर चढाई-उतराई ननूक्रेमी पग और नहीं है।
तो भी तुम नहीं आई। छह बजकर पन्द्रह मिनट हुए।

शायद तुम अभिमान कर रही हो। कल ही क्यो नहीं बताया।
शिलांग की यह सुंदर संध्या कल ही चली जायगी;
और कभी वापस नाही आने वाली वह संध्या चली जायगी।
"बरुआ! आइये जरा लाईटमुखा की तरफ" ..

बन्धु तोमार अनुरोध करुणार हॉहिरे भरा
मइ नोवारिम । एतियाओ अलप रब लागिव ।
किजानि तेओ एतियाओ आहे । हयतो सात बजार
कथाइ कौछिल । मइहे पाहरि गलो ।
लाजुकी लता, आन्धार नामिल । आहॉ ।

तुमि आहिबा जानो? हयतो आहिबा । तुमि आहिबाइ ।
मेखेलार पातलित कर्शलावन....
रेस्तोरां उज्जल हल नियनर नील पोहरत ।
तुमि नाहिला । सन्ध्या आहिल । नील सन्ध्या ।
महानगरीर रातिर अतिथि,
कुवॅलीर दरे रहस्यमय अकारण तोमार नहार कारण ।
मन मोर गधूर-नील माफलडर नील सन्ध्यार निचिना ।
हयतो तोमार तारिख भुल हल ।
कालि आहिबा ?
तुमि आहिबा । तोमार कारणे लाबानर बाटत
एपाहि क्रिछेनथिमाम आरु एटि सरु 'खुबलेइ' ।

महेन्द्र बरा

बन्धु, तुम्हारा अनुरोध करुणा की हँसी से भरा हुआ है।
मुझसे नहीं होगा। अब भी और जरा इन्तजार करना पड़ेगा।
शायद वह आ भी सकती। शायद वह सात बजे
आने वाली थी। मै भूल गया हूँ।
लजवती लता, अंधेरा उतर रहा है। आओ!

तुम आओगी क्या? शायद आओगी। तुम जरूर आओगी!
मेखला की पट्टी में काँटेदार पौधा. ..
रेस्तराँ उज्ज्वल हो गया निआन की नील रोशनी में।
तुम नही आई। संध्या आई। नील संध्या।
महानगरी रात की मेहमान,
कुहेलिका की तरह रहस्यमय अकारण तुम्हारे नहीं आने का कारण।
मेरा मन भारी नील माफलांग की नील संध्या की तरह है।
शायद तुम तारीख भूल गई।
कल आओगी?
तुम आओगी! तुम्हारे लिए लाबान के रास्ते में
एक क्रिसेन्थिमम, और एक छोटी-सी 'खुबलाई'।

महेन्द्र बरा

डायेरी

एसमयत पृथिवीर विषादबोर आकाशत थुप खाइछिल
नावरीया बोरे बेजारते आठुत मुख लुकुवाइछिल
किन्तु नाओ बोर पानीत घर विचारि गै आछिल
आरु हिरोचिमार शुकान छाइबोरे सिहँतक पुति पेलाइछिल

किछुदिनरपरा आकाश फरकाल
कालि राति खेरीघरर ओपरेदि जोनटो उरिछिल;
मइ देखिछिलो कुवँलीर धोँवा
बाटे बाटे बनरीया फुल
दूरत गाँवत स्वप्नरता कोनो एक अनुराधार मुख ।

वीरेश्वर बरुआ

डायरी

ऐसा एक रोज था जब दुनिया का सब विषाद आकाश मे
इकट्ठा हुआ था ।
मॉझी लोगो ने दुःख से अपने-अपने जानुओ में मुँह छिपाये थे,
लेकिन नावें पानी में अपने घर घूर-घूरकर बहती रहती थीं
और हीरोशिमा की सुखी चट्टानो ने उनको ढक लिया था।

कुछ दिनो से आसमान साफ है
कल रात को खेटी के घर के ऊपर से चॉद उग रहा था
मैने देखा था कुहेलिका का धुऑ और धुआँ
राह-राह में जंगली फूल
दूर गॉव में स्वप्न-रता किसी एक अनुराधा का मुँह ।

वीरेश्वर बरुआ

सन्धि

सोणपाही मोर
आंगुलिर फॉके फॉके सरि परि यक
बेदनार स्मृतिमरा शॅता दिन बोर
जकार हाड़ेरे यार समाधिर दुवरित
अश्वक्लांत रचि याय
पलायनी दुरन्त समये । सेइ बोर एरि थै आहा
सलनिर कुमार चाकत
जीवनर उपकन्ठ हेजार खोजर दागे भरा
मचिबा किमान ?
तुमि माथों कथा कोवा
मइ माथो शुनि याओँ
आजि माथों कोवा आरु शुनार समय ।
कालर मामर आरु पुवतीर कॅचा पोहरर सन्धि,
विश्व गले सोण ज्वले जुइर बुकुत ।
जीवनर जलछबिखने कले ।
आहि पोवाटोहे सँचा,
योवाटो नहय ।
सेये सोण, सोणपाही
यायावरी जीवनर शत कोलाहल
आजि नेपथ्यत लीन । कल्लोल निमात हल
जीवनर फल्गुर पारत ।
तुमि आहा सोणपाही
एयेइ समय
एयेइ समय सोण
एयेइ नहय ॥

संधि

सोनपाही मेरी !
अगुलियो की फॉक-फॉक से गिरने दो
वेदना की स्मृति से भरपूर पाडुर दिनो को;
ककाल की हड्डी से जिसकी समाधि दूब घास में
अश्वक्लात बनाकर जाता है
पलायनी दुरत समय । उन सबको छोडकर आओ
बदलने को कुम्हार चक्की मे
जीवन के उपकठ हजारो पग के दागो से भरे हुए हैं,
पोछोगे कितने ?
तुम सिर्फ कहते जाओ
मै सिर्फ सुनता जाऊँ
आज है सिर्फ कहने का और सुनने का अवसर ।
काल का जग और प्रभात की ताजी रोशनी की संधि.
विश्व गलता है, सोना जलता है आग की छाती में
जीवन का चल-चित्र बोला—
आया हुआ सच है,
जाने वाला नहीं ।
इसके लिए मेरी प्यारी सोनपाही
यायावर जीवन के सैकडो कोलाहल
आज नेपथ्य मे लीन है । कल्लोल निर्वाक् हो गया
जीवन की फल्गु के पार ।
तुम आओ सोनपाही,
यही समय है
यही समय है प्यारी
सिर्फ यही नहीं ।

महुवा बनर बाट प्राणर जोवार लागि
उपचि उठक । तोमार अहात सोण
आकाशर हालधीया जोन साक्षी रक ।

तोमार ब्राउन दुचकुर मरम सिँचि
विगत दिनर चिताभष्मर परा
मोक जीयाइ तोला,
फिनिक्स जीयार दरे
आरु कारो नालागे खबर
पृथिवी उवँलि यक. सोण पाही
सन्धि आजि तुमि आरु मोर

हरि बरकाकती

अ स मि या

महुआ वन का रास्ता प्राणो के ज्वार से
उछल जाने दो ! तुम्हारे आने की प्यारे
आकाश के पीले चॉद को गवाही देने दो ।
तुम्हारी दोनो ब्राऊन ऑखो का प्यार सिंचित कर
बीते हुए दिनो की चिना-भस्म से
मुझे जिन्दा बनाओ
फीनिक्स की तरह ।
और किसी को खबर नहीं होनी चाहिए
दुनिया को मिट जाने दो, सोनपाही
आज तुम्हारी और मेरी सधि है ।

हरि बरकाकती

छाइ मुम

बुरंजीर काउरी बॉहत जुइ शला मारिब कोने? तोमार
अनुर्ब्बर आकांक्षाइ ने मोर उत्तप्त तेजर बाने?
पर्ब्बतर सिपारे,—बहु दूर दूरनित प्रतिध्वनि शुनो। प्रतिध्वनि?
कार प्रतिध्वनि? जीया मानुहर ने परि थका शुकान हाडर?
मोर मरु शुकान कल्पनाइ तोमार आकाश चुबके नोवारे।
कल्पनार ठें कोंगा। छागली शिंगीया जोनटोर जीवन सत्वा
मर आउसीर एन्धारत मरे। मोर यौवन तोमार
मुकुतापरीया हॉहित मलंगा दरे। हेरा सद्य यौवना—
तोमार बुकुर बिप्लव मइ कल्पना करिब पारों
मोर कल्पनाइ बहुत बस्तु ये चिनि पाय।....
मोर चकुर दुयो पतात दिखौर बिप्लव नाचे। नृत्यरता
उर्ब्बशीतकैयो चमत्कार। एटा सपोनर आढ़ै मिनिट
अवकाश देर श छेकेंड। अजेय समय।
मोर सपोनर कथा शुना। कान पाति शुना। .. युगर
खर सोंतत आमि बारिषार बर बान भांगिम। सॉतुरिम।
हयतो सॉतुरि पार पाम। नहयतो जाह याम। आरु
आमार दरे जहिब हाजार जन। मृत्यु—मृत्यु यार बाबे जीवणर रंगा
करवीर फुल। तारबाबे
आक्षेपर फुजियामा अचल। निर्ब्विकार।....
आजिओ नामिछे पृथिवीर उर्ब्बर बुकुत—जाके जाके
फरिंगर दरे साम्राज्य पिपासु लोभाल शगुन। चकु
खुर येन चोका। इबोर नामिछे—पृथिवीर प्रान्ते प्रान्ते
द्वीपे द्वीपे। द्वीपान्तरे। फेटी सापर दरेइ उन्मत्त,
बिशाल।....
समर पिपासु दले कोठ पाटिछे। मालयर रबरर पथारत,
काम्बोदियार गहन बनत। मेकंगर पारे पारे, सेउजीया

छायाभ्रम

इतिहास के कौए के घोसले में तीलियाँ जलाएगा कौन? क्या तुम्हारी
अनुर्वर आकांक्षा, क्या मेरी उत्तप्त खून की बाढ?
पर्वत के उस पार बहु दूर-दूर प्रतिध्वनि सुन रहा हूँ—प्रतिध्वनि।
किसकी प्रतिध्वनि है? जिंदा इन्सान की या पडी हुई हड्डी की?
मेरी मरु शुष्क कल्पना तुम्हारा आकाश स्पर्श तक नही कर सकती।
कल्पना के पैर पंगु हैं। बकरे के सींग की तरह चन्द्रमा के जीवन का स्तन
घोर अमावस्या में मर जाता है। जैसा मेरा यौवन तुम्हारी
मुक्ता-पंक्ति दाँत की मुस्कराहट में खाक हो जाता है।
(स्थ· यौवने! तुम्हारे वक्ष के विप्लव की कल्पना मै कर सकता हूँ।)
मेरी कल्पना सैकडो चीजो को पहचानती है। .
मेरी आँखो के दोनो पार 'दिखौ' का स्वप्न नाचता है। नृत्य-रता
उर्वशी से भी चमत्कार। (एक स्वप्न का अवकाश है ढाई मिनट)
डेढ सौ सैकण्ड। अजेय समय।
मेरी स्वप्न की बात सुनो। कान लगाकर सुनो। . युग के
खर स्रोत में हम वर्षा की बडी बाढ तोड देंगे। तैरेंगे।
शायद तैरते-तैरते पार मिल जायगा। नही तो मिट जायँगे। और
हमारी तरह आयँगे हजारो जन। मौत—मौत जिसके लिए
जीवन का लाल करबी फूल है। उसके लिए आक्षेप का
फूज़ियामा अचल है। निर्विकार है। ...
आज भी उतर आया है पृथिवी के उर्वर वक्ष में झुण्ड-झुण्ड
टिड्डियो की तरह साम्राज्य-पिपासु लोलुप शकुन। आँखे
छुरे की तरह तेज हैं। ये फल गए हैं पृथिवी के प्रान्त-प्रान्त में
द्वीप-द्वीप में। द्वीपान्तर में। फणिधर की तरह उन्मत्त,
विशाल।
समर-पिपासु दल अड्डा बना रहा है। मलाया के रबर-खेतो में
कम्बोडिया के गहन वन में। मेकाग के पार हरे

धाननीर सबुज कोनत ।
लिप्सार छाइमुम धूरि धूरि बय । जन कल्लोल रगा चहरत ।
उका पर्बतर निमात टिगत । युगर मरा श धरत—
नवजातक शिशुर नेजर बाबे तेजपियार दल उजागरे
आछे निमात । निष्ठुर ।
नतुन मानुहर गजालिते मरण घटिछे । मरिशालित
मरणर नाच । करुण । निर्दय ।
आकाश एन्धार। पोहर ?—पोहर कत ? केडफाले षडयन्त्र जाल।
नतुन जन्म। सौवा पुवालिर बेलि । मानुहर हाडे कथा कय—
मृत्यु किबा जय

हेम बरुआ

धान के खेत के हरे कोने मे।
लिप्सा का छाया-भ्रम घूर्णन कर बहता है। जन कल्लोल लाल शहर मे।
नगे पर्वत के नीरव शिखरो मे। युग के अतरंग महल मे,
नवजातक शिशु के खून के लिए खूँख्वार गिरगिट दल
जाग रहा है। निर्वाक्, निष्ठुर।
नये इन्सान के अकुर में ही मौत आई है। श्मशान मे
मरण का नाच है। करुण, निर्दय। .
आकाश अधकार। आलोक? आलोक कहाँ? चारो तरफ
षड्यत्र-जाल है।
नव-जन्म। वहाँ प्रभात अरुण है। इन्सान की हड्डी बोल रही है—
"मृत्यु किवा जय"

हेम बरुआ

उज्जीवन

सूर्यस्नात कोनो एक नतुन दिनर हॉहिर सिम्फनी
रात्रिर तुहिन स्पर्श भेदकरि भाहि आहे
जागे र कोनो एक बधिर सन्ध्यार पांडुर मुखत ।
विदीर्ण रातिर बुकु, राजपथ मुखरित, स्पप्नर लिचि
सद्यमृत कामनार शवबाही समदल (कार कामनार ?)
देवालत ककालर छायार मिछिल गलि भाहे
मय मोर लागे भय, तुमि हाय नाइ कापरत ।

हठाते उतला हल सुप्त प्राण जन अरण्यर
मुक्तद्वार प्रभातर, विषण्ण विक्षिप्त समारोह
पलातक कामनार, पराजित वन्ध्या वासनार
अपूर्व उज्जल दिन, कॅपि उठे राजपथ, आशार छलना
मणिहारी दोकानत उपवासी आकांक्षार भीर
देवालत इस्ताहार, मयदानत जनसभा, लालझाण्डा उरे
भय मोर लागे भय—सगी माथो दिनर एन्धार ।

होमेन बरगोहाँइ

उज्जीवन

सूर्य-स्नात किसी एक नये दिन की हँसी की सिम्फनी
रात का तुहिन-स्पर्श तोडकर भाग आती है
रग उगता है किसी एक बधिर सध्या के पाण्डुर मुँह में ।
रात का वक्ष विदीर्ण है, राजपथ मुखरित है, स्वप्न की लिचिग है
सद्यमृत कामना शववाही इकट्ठी है (किसकी कामना ?)
दीवार मे ककाल की छायाएँ इकट्ठी गल-गलकर बहती
भय, मुझे भय होता है, हाय ! तुम सामने नहीं हो ।

अचानक चमक गया सुप्त प्राण जन अरण्य का
मुक्त द्वार प्रभात का, विपण्ण विक्षिप्त समारोह
पलातक कामना का, पराजित वध्या वासना का ।
अपूर्व उज्ज्वल दिन है, राजपथ काँपता है, आशा की छलना
मनोहारी दूकान मे उपवासी आकाक्षा की भीड है
दीवार मे इश्तहार, मैदान मे जन सभा, लाल झडा उडता है
मुझे भय लगता है—संगी है सिर्फ दिन का अधेरा ।

होमेन बरगोहाँइ

उड़िया

चयन : कालिन्दी चरण पाणिग्राही

अनुवाद उपेन्द्र कुमार दास

कवि-नाम	कविता
अनन्त पट्टनायक	समन्वय
कुंजबिहारी दास	काश्मीर स्वप्न का नहीं, मिट्टी का है
कृष्णचन्द्र त्रिपाठी	किस अन्धकार में बहा ले चले अपनी तरणी
कृष्णचरण बेहेरा	रूप और प्रेम
गुरुप्रसाद महान्ति	सानेट
गोदावरीश महापात्र	गृद्ध
गोपालचन्द्र मिश्र	अजन्ता
चन्द्रशेखर मिश्र	रूप देवता
चिन्तामणि बेहेरा	प्रतिश्रुति
जानकीबल्लभ महान्ति	शान्ति-समाचार
तुलसी दास (कुमारी)	द्वन्द्व
नित्यानन्द महापात्र	यह मृत्यु नहीं नहीं
बिद्युत् प्रभा देवी	घास की कब्र
बिनोदचन्द्र नायक	इन्द्रमेघ
बैकुंठनाथ पट्टनायक	सन्ध्यातारा
मायाधर मानसिंह	रूप-तत्त्व
यदुनाथ दास महापात्र	रवीन्द्रनाथ
राधामोहन गडनायक	दुर्मुख
सुनन्द कर	तर्पण

समन्वय

बुगेन भिलार पाखे
        फुटिछि आजिरे लाजकुली लता फुल
        कि लाल आलोके पृथिबी आत्महरा !
        फुलर बाहार ! झराअ ना निआं झुल ।

पथर प्रान्ते पथ प्रारंभ जागे
म्यागनोलिआरे अनाइ मल्ली हसे,
लुहर लहरे शुचि-शुभ्रता रेखा
घासर केशरे सुन्था के पारि बसे ?

घासर केशरे सुन्था जे पारि बसे
सूर्यरे चिरि सिंदुर करे सुखे,
जन्हरे दलि प्रीति कर्पूर रचि
अमृत राग बोले बिषाक्त बुके !

बुगेन भिलार पाखे
        फुटिछि सेइ जे अख्यात रूपकथा
        रोष ईर्षारे झराअ ना निआं झुल
        सेइ जे निजर रस रजित व्यथा ।

बुगेन भिलार पाखे
        झरिछि आजिरे लाल गोलापर दल,
        भस्म गहलु नूआ मन्मथ उठे
        रति क्रदने बसन्त थरथर ।

बुगेन भिलारे भियोला जाउछि बाजि,
आम्र मुकुलु, मिशिजाए तहि केउ बेहेलार काया

समन्वय

बुगेन विला के पास
आज खिले है रे लाजवती लता के फूल
कैसे लाल आलोक से पृथ्वी है आत्महारा !
फूलो की बहार ! झडाओ न आग की चिनगारियाँ ।

पथ के प्रान्त से होता है पथ प्रारम्भ
मैगनोलिया को देखकर हँसती है मल्लिका,
अश्रु की लहरो में है शुचि-शुभ्र रेखा
घास के केशो मे कौन माँग निकाल रही है ?

जो घास के केशो में माँग निकालने बैठी है
सूर्य को चूर्ण कर सुख का सिन्दूर करती है,
चन्द्र को दल कर, रच कर प्रीति कर्पूर
अमृत राग लेपती है विषाक्त वक्ष मे !

बुगेन विला के पास
खिली है वह अख्यात रूप-कथा .
रोष ईर्ष्या से छोड़ो न आग की चिनगारियाँ
वही अपनी रस-रजित व्यथा ।

बुगेन विला के पास
झड गया है आज रे लाल गुलाबो का दल,
भस्म-राशि से उठता है मन्मथ
रति के क्रंदन से कम्पित वसन्त ।

बुगेन विला में वायोला बज उठता है
आम्र-मुकुल से मिल जाती है वहाँ किस बेहेला की कथा

प्रीति अर्चना ए कि रे ऐक्यताने
अतीतर शत अभिसपाते नूआ अभिज्ञा-छाया ?

उर्ध्वे पृथिवी निम्ने आकाश एणु
वैपरित्ये एकि 'हार्मनि' जागे !
गोलाप-गध बुगेन भिलार प्रासे
लाल लाजकुली प्रीति-परिभाषा मागे !

फुलर सागर उत्ताल हेला अबा
आरे निर्बोध ! झराअ ना निआँ झुल
स्मित-सिकतार पीत पाडुर माया
फुल-उर्मिर केउँ नृत्यर तुल !

जाए आजि जाए जरा जर्जर राति
बुगेन भिलार पाखे
उठिला एइ रे लाल गोलापर झड,
हृदय उपरे हृदय पडुछि भाजि,
आखि खोले कोटि लाजकुली लता कढ ।

अनन्त पट्टनायक

उ ड़ि या

एक तान से यह क्या है प्रीति अर्चना
अतीत के शत अभिसंपात पर नव अभिज्ञा-छाया ?

ऊपर पृथ्वी नीचे आकाश इसलिए
वैपरीत्य में यह क्या 'हार्मनी' जाग रही है !
गुलाब गंध बुगेन विला के पास से
लाल लाजवती प्रीति परिभाषा माँगती है !

फूलों का सागर उत्ताल हुआ क्या
अरे निर्बोध ! छोड़ो न आग की चिनगारियाँ
स्मृति-सिकता की पीत पांडुर माया
फूल ऊर्मि के किस नृत्य के समान है !

जाती है आज, जाती है जरा-जर्जर रात्रि
बुगेन विला के पास
यह उठा रे लाल गुलाब का झंझावात,
हृदय के ऊपर हो जाता भग्न हृदय,
आँखें खोलती है लाजवती लता की कोटि कलियाँ ।

अनन्त पट्टनायक

काश्मीर स्वप्नर नुहें माटिर

केशरे तार पाइन बनर ढेउ
मुखरे सजफुटा उलार हृदर पद्म
उषार किरण-गोला तुषार परि तार वर्ण
ललाटरे सुबर्ण नासपाति ।
गडरे आपलर रक्तिम आभास
अधररे द्राक्षार मधुर सौकुमार्य
निःश्वासरे उपत्यका उद्यानर सुरभि,
आखिरे झेलम प्रपातर चचलता
नखरे चेरी फुल
कठरे बुल्बुल
तुषार-स्रोत परि मंथर तार गति,
चिनार बन कुटीर बासिनी
ए किशोरी देहरे रूप पाइचि जेम्ति
काश्मीरर आश्चर्य श्री ।
शत शत लोलुप आखि मागे तार लावण्य
से मागे मुठिए मात्र अन्न,
किए देखे ता आखिरे रूपास्त्रर अस्त्र,
से मागे उछुला यौबन ढांकिबा पाइ
खण्डिए मात्र बस्त्र
किए कहे प्रकृतिर कारिगरी शेष सीमा छुइंचि
मुखरे उठे तार कारुण्यर बीचि,
सग्रामर क्षत अधररे रक्ताक्त
आखितले पाहाडी झरणाकु लोहित करे
एइ एक निराश-सूर्यास्त ।
अध आउ रुग्ण पितार दायित्व तार मथारे
चइति बनर ए सुदरतम मंजरी

काश्मीर स्वप्न का नहीं, मिट्टी का है।

केशो में है उसके पाइन वन की लहरे
मुँह में वुलर झील का सद्य.पद्म
उपा-किरण-मिश्रित तुषार-जैसा है उसका रंग
ललाट मे सुनहरी नासपाती।
गड पर है ॲपल की रक्तिम आभा
अधर पर द्राक्षा की मधुर सुकुमारता
श्वास मे है उपत्यका के उद्यान की सुरभि,
ऑखो मे झेलम प्रपात की चचलता
नख मे चेरी फूल
कठ मे बुलबुल
तुपार-प्रवाह-जैसी है उसकी मथर गति
चिनार वन की झोपडी मे रहने वाली
इस किशोरी की देह ने मानो पाई हो
काश्मीर की आश्चर्यमयी शोभा।
शत-शत लोभी ऑखे चाहती है उसका लावण्य
वह मॉगती है सिर्फ मुट्ठी-भर अन्न
कोई देखता है उसकी आँखो मे मदन-बाण
वह मॉगती है उमडती जवानी छिपाने के लिए
केवल एक वस्त्र।
कोई कहता है प्रकृति की कारीगरी का यह चरम उत्कर्ष है
कितु उसके मुख पर उठ रही है करुणा की तरंगे
संग्राम-क्षत अधर से रक्ताक्त
ऑखो के नीचे पहाडी झरने को लोहित करता है
एक यही नैराश्यमय सूर्यास्त।
उस पर है अधे और बीमार पिता का दायित्व
चैत्र वन की यह सुदरतम मजरी

जळुचि जीबनर व्यथारे ।
सर्बहरार हा-हतोस्मि गालर गोलापकु
करिचि पकिल
घन कुहेलि मध्यरे शिशिर-उषा परि छायामयी
से जेपरि कि कहे
काश्मीर
स्वप्नर नुहें
माटिर ।

कुंजबिहारी दास

जल रही है जीवन की व्यथा मे
गालो की गुलाबी को सर्वहारा के हा-हतोस्मि
किया ह पंकिल
घने कुहरे के बीच शिरशिर उषा की भाँति छायामयी
वह जैसे कहती है
काश्मीर
स्वप्न का नहीं,
मिट्टी का है।

कुंजबिहारी दास

केउं अंधारे चाल बाहि तुम तरणी

जेउ ठारे नाहि हृद दिआ देइ टिकिए
इमिति राइज किए काहि अछ देखिहे ?
कथाके कथाके खालि चालबाजि खेलइ
जणकु जणे जे जगि जगि खालि चलइ
जणे जेबे हसि हृद भरि कथा कहइ
आन जणे खालि गंभीर होइ रहइ
सेनेह सोहाग मधु आलापन भितरे
खुर धरि जणे तोटि काटि चाले सतरे ।
सत कहिबाकु कार छाति नाहि पताए
मिछ कहिबाकु जणे जे जणकु बताए
मिछरे भण्डि जे जारे पारिला मारि हे
से पुणि सबुठु पारिबार अटे भारि हे ।
हट हटा करि आनकु पारिबा दबाइ
आनर बिपदे हसि बाशदुरी नबाहि
पौरुष बोलि गर्बे जे छाति टेकइ
सिए पुंणि सार मणिष दुनिआ लेखइ
आजि जिए तुम बधु पडिशा भाई हे
कालि दि गोइठा देलणि ताहाकु थोइ हे
परदिन ताकु पथ भिक्षुक कलणि
जीवन धरि जा बचि रहिच, मलनि !
सीमाहीन केते जीवनर ढेउ खेलइ
चाहि देले तिले अतर केते पुरइ ।
ए महालीलारे आश्लेष देइ नियत
चालिबाकु तुम इच्छा हेउनि कियत ?

किस अन्धकार में बहा ले चले अपनी तरणी

हृदय का लेन-देन जहाँ बिलकुल नही है
ऐसा राज्य क्या कही तुमने देखा है ?
बात-बात मे चलती है केवल चालबाजी
एक को दूसरे से सतर्क होकर चलना पडता है ।
एक जब हँसकर हृदय से बाते करता है
तो दूसरा गभीर होकर रह जाता है ।
स्नेह-सुहाग के मधुर वार्तालाप मे
कोई उस्तरे से गला काट रहा है ।
सत्य कहने का किसी को साहस नही होता
मिथ्या बोलने के लिए एक-दूसरे को उकसाता है ।
धोखे से जो जिसको ठग सकता है
वही है सबसे अधिक समर्थ !
किसी को परेशानी मे डालकर नीचा दिखाना
दूसरो की विपत्ति का परिहास कर वाहवाही लेना पौरुष है
इस गर्व से जो छाती फुलाकर चलता है
उसे ही दुनिया कहती है मानवश्रेष्ठ ।
आज जो पडोसी तुम्हारा बधु है
कल उसे ही तुम लात मारते हो
परसो उसे रास्ते का भिखारी बना देते हो ।
जीवन धारण किये हुए जो तुम बच रहे हो, मर क्यो नही जाते
सीमाहीन जीवन की कितनी तरंगे खेल रही हैं
जिन्हे देखते ही अतर पूर्ण हो जाता है.
इस महालीला मे सदा आश्लेष देकर
चलने के लिए क्या तुम्हारी जरा भी इच्छा नही होती

अतर भरि दुनिआकु भल पाइबा
दुनिआ ओठरे हसर जुआर बाहिबा
एकि नुह तुम जीबनर मधु सरणी ।
केउ अधारे चाल बाहि तुम तरणी ?

कृष्णचन्द्र त्रिपाठी

अन्त.करण से दुनिया को प्यार करना
दुनिया के ओठों पर हर्ष का ज्वार लाना
क्या यह नहीं है तुम्हारे जीवन की मधु सरणी
किस अन्धकार मे बहा ले चले अपनी तरणी ?

कृष्णचन्द्र त्रिपाठी

रूप ओ प्रेम

आकाश-कुसुम कल्पना खालि
नुहें तव रूपशिरि
घास फुल सरि फुटे ता घरारे
रखि पारे मुहि धरि ।

तव प्रेम नुहे अति इन्द्रिय,
स्वर्गीय, महनीय,
मानुषी रूपर निर्यास ताहा
मो हृदये गोपनीय ।

कृष्णचरण बेहेरा

रूप और प्रेम

केवल आकाश-कुसुम की कल्पना नहीं है तुम्हारी यह रूप-श्री
घास के फूल की भाँति वह धरती मे खिलती है
उसे मै पकड़कर रख सकता हूँ

तुम्हारा प्रेम अतीन्द्रिय, स्वर्गीय और महान् नहीं है
वह है मानुषी रूप का निचोड़
मेरे हृदय मे वह गोपनीय है।

कृष्णचरण बेहेरा

सनेट

यदि मोर ए मनर रक्त मांस चमर पोषाक
आजि भल लागे नाहिं; ए निस्तेज पृथिबीर देह
आजि जेबे घोडि होइ शोइ पडे फिका जन्ह तारार आलुअ
आजि यदि एकाकार समयर देह ओ अदेह
तुमर निर्मोक तेबे खसिपडु बेणी आउ आखिर भ्रुलता
कंकाल तुमर आसु धला होइ समय ओ जन्ह आलुअरे
मो देहर स्वास्थ आउ रक्त मांस चमर पोषाक
खसि पडु उपेक्षित बिसर्जित तुमर देहरे ।
पृथिबीर ए देहरे खोजि खोजि मुं तुमर मनर सधान
आजि हुए उपगत उपकूले तुमर देहर
मु तेणु तुमकु खोजे रक्ते मोर देहर सीमारे
तुमर आत्मा बा काहि देह काहिं तुमर मनर ?
मु तुमकु भलपाए पुंजिभूत ए देहरे आत्मा मोर मनर पिपासा
मु तेणु तुमर देह खोजे मोर ए देहरे मोर सबु आशा ओ निराश।

गुरुप्रसाद महान्ति

सानेट

यदि मेरे इस मन की रक्त-मास चमडे की पोशाक
आज अच्छी नहीं लगती है, आज अगर इस निस्तेज पृथ्वी का शरीर
फीके चॉद-तारो का आलोक ओढकर सो जाय
आज अगर एकाकार समय की देह और अदेह
तो अपने निर्मोक को गिर जाने दो, बेणी और ऑख की भ्रू-लता और
अपने ककाल को समय और चॉद के आलोक से सफेद हो जाने दो
मेरे शरीर का स्वास्थ्य और रक्त-मांस चमडे की पोशाक
गिर पडने दो अपने उपेक्षित विसर्जित शरीर पर।
पृथ्वी की इस देह मे तुम्हारे मन का सधान खोजते हुए
आज मुझे अपने देह के उपकूल मे पहुँचने दो
इसलिए मै तुम्हे ढूँढ रहा हूँ रक्त मे, अपने शरीर की सीमा मे
लेकिन कहॉ है तुम्हारी आत्मा, कहॉ है तुम्हारे मन का शरीर?
मै तुम्हे प्यार करता हूँ, पुजीभूत इस शरीर मे आत्मा मेरे मन की पिपासा है
इसलिए मै तुम्हारी देह खोज रहा हूँ अपनी इस देह मे
मेरी सब आशा और निराशा।

•

गुरुप्रसाद महान्ति

शागुणा

धरणीर इतिहासे तुम नाम युगे युगे लेखा
बन्या मारी मरुडिर महाकाल पथे दिअ देखा
अश्रु हाहाकारे जहि जीवनर 'बड़दाण्ड' पथ
भरि उठे हे शकुनि, कर तुमे तहि छायापात ।
हे अद्भुत-रुचिग्रस्त पुतिगंध-क्षुधार्थ शागुणा
जीबर मरण पांजि तुमरे कि सबु जणा शुणा ?
मृत्यु निए टाणि जेबे माता कोलु प्राणर नन्दन
शब लाभी तुमे दिअ काहुँ आसि कि अभिनन्दन ।
जिअन्तार तुमे नुह, तुमे खालि जाणे शब-साथी
तुमे परा थिल केबे त्रेतायुगे प्रबुद्ध संपाति ?
तुमे थिल कुरुक्षेत्रे रक्त नदी संतरण बेले
तुमर बिराट तृष्णा किए तहिं मिटाइ पारिले ?
'नअक'र बंधुवर तुम पाइ आबाहन चाले
से आड़े समरांगने इन्दोचीने, फर्मोजा प्रान्तरे
नेले जहिं चण्डाशोक दयाकूले 'धर्माशोक' नाम
आजि बि-ताहारि तीरे तुम पाइ लागिछि संग्राम
तुम अबतार आजि परिग्रह एकाम्र मण्डले
मायाबी संचयबादी श्रेणीबद्ध नर गृद्ध दले
बिबस्त्र बुभुक्षु नामे करुछन्ति महा कोलाहोल
तुम आगमन पाइं सफा करि बिराट उत्कल
कंचा ओ सबुज पथे उठे जहि पाद रुणझुणु
जीबनर आशिर्बाद भासि आसे भ्रमर गुंजनु
कुचित कबरी तले फुटुथिला जहि सजफुल
तुम पाइं भोजि तहिं क्लेद मेद भूमिष्ट शिशुर
'योजना'र महापथे देख दूरे दिगबलय ग्रासि
ए जाति मंदिरे तुमे हे शकुन वासिअछ आसि

गृद्ध

धरती के इतिहास मे युग-युग से तुम्हारा नाम लिखा हुआ है
बाढ, महामारी, अकाल के महाकाल पथ मे तुम दिखाई देते हो
जीवन का 'बडदाण्ड' पथ जहॉ अश्रु के हाहाकार से
भर उठता है, हे गृद्ध, वहॉ तुम छाया-पात करते हो।
हे अद्भुत-रुचिग्रस्त, पूतिगध, क्षुधार्त्त गृद्ध
जीव की मरण-पंजिका के सम्बन्ध मे क्या तुम्हे सब-कुछ ज्ञात है ?
मृत्यु जब माता की गोद से प्यारे बच्चे को छीन लेती है
शव-लोभी कहॉ से आकर तुम कैसा अभिनन्दन देते हो ?
जीवितो के तुम नही, केवल शव-साथी तुम्हे जानता हूँ
तुम्ही तो थे न उस त्रेता युग मे प्रबुद्ध संपाति ?
तुम थे कुरुक्षेत्र मे रक्त-नदी-संतरण के समय
क्या कोई वहॉ तुम्हारी विराट् तृष्णा को बुझा सका ?
'नवाक' के बंधुवर तुम्हारा आवाहन होता है, उधर
इंदोचीन के समरागण मे फार्मोसा के प्रान्तर मे
दया-तट पर जहॉ चडाशोक धर्माशोक हुए
आज भी उसी के तट पर तुम्हारे लिए संग्राम हो रहा है
आज एकाग्र मडली मे तुमने अवतार लिया है
मायावी, संचयवादी, श्रेणीबद्ध नर-गृद्धदल
नगे-भूखो के नाम पर शोर मचा रहे है
तुम्हारे आगमन के लिए विराट् उत्कल को मिटाकर।
कच्चे और हरित पथ पर जहॉ चरणो की रुनझुन बजती है
भ्रमर-गुंजन से जीवन का आशीर्वाद डोलने लगता है
कुंचित कबरी के नीचे जहॉ सद्यःपुष्प खिलते थे
वहॉ तुम्हारे लिए क्लेद-मेद-भूमिष्ठ शिशु का भोज है।
'योजना' के महापथ मे दूर तक देखो दिग्वलय-ग्रासी
इस जाति के मंदिर पर तुम्ही आकर बैठे हो, गृद्ध

महा चान्द्रायण व्रत पालिबाकु हेब ए जनता
न हेले धरणी पृष्ठु लिभिलाए उडिआर सत्ता।
टेकि रुजु ग्रीबा मुदि भीम पक्ष, चाहुछ काहारे
चारिआडे अधकार हाहाकार भितरे बाहारे
राम गले बनबास गले बने माया मृग मारि
उद्धरिब किए सीता डाके मुत 'निआखुटां' धरि।

गोदाबरीश महापात्र

इस जनता को महा चान्द्रायण व्रत का पालन करना होगा
वरना धरती के पृष्ठ से उडिया की सत्ता मिट जायगी।
उठाकर रुजु ग्रीवा, बन्द कर भीम पख, तुम किसे ताक रहे हो
चारो तरफ अधकार है, बाहर-भीतर सर्वत्र हाहाकार
राम गये वनवास, माया-मृग मारने को गए वन मे
कौन सीता का करेगा उद्धार, मै 'निआखुटा' *लेकर पुकार रहा हूँ।

गोदावरीश महापात्र

* उडिया मे प्रकाशित एक पत्रिका।

अजन्ता

पाहाड पाहाड पथर जेउंठि मणिष करिछि चुना
पाहाड पथर मणिष हातरे होइछि कमल सुना
पथर जेउंठि मणिषे हातरे धरिछि देबता बेश
कहुछि मु कबि कहुछि से परा सुदूर प्रमिला-देश
उडि उडि जाअ पाहाड पथर उडरे पथर उड
मणिष तो देहे ता हात बजाइ तोलिछि सपन गड
उडरे पथर, मणिष तोठारे लगाइ देइछि डेणा
उडिगला मोर अजन्ता बाटर पक्षी हेला बाटबणा ।

पथर देह त कठिन नुहइ लुहाठारु बलि लुहा
लुहार जउरे का हात रेखारे झरणा हेउछि बुहा
मेघर मयुर चितार तारका गोटि गोटि रेखा टाणि
हेम कमलर फरुआ भितरे पुराइ काकर पाणि
किवा टाणिदेइ मरु बालुकारे, मुगुनि पथर चिता
नील कइँ फुल तनु चुमि चुमि मधुप लभइ व्यथा
पथर जेउठि मणिष हातरे पाइछि मणिष शिरि
डाकुछि मु कबि अजन्ता देहर पथर देहलि चिरि ।

पथर देहरे मथापिटे एबे मणिष एकाकी बसि
शिउलि पातल खसडा बाटरे पद तार जाए खसि
मणिष मनर जागरण तले रूप शिरि मागे खेल
तुली धरि परा युग युग धरि मणिष खोजुछि बेल
लेखिबा पाइंकि पथर देहरे मणिष मनर छाइ
थकिजाए बहु थकिजाए मन, बेल नाहिं बेल नाहिं
मणिष मनर एहि जेउ रूप राजधानी हाट
'आहुरि' अधार घन गिरितले काटरे पथर काट ।

गोपालचन्द्र मिश्र

अजन्ता

जहाँ पत्थर के अवारो को मनुष्य ने चूर्ण किया है
जहाँ मनुष्य के हाथो से पहाड पत्थर कमल सोना बन गया है
जहाँ पत्थर ने देवता का रूप धारण किया है मनुष्य के हाथो से
मै कवि कहता हूँ, कहता हूँ वही है सुदूर प्रमिला देश
उड-उडकर जाओ पहाड पत्थर उडो, पत्थर उडो
तेरे शरीर को स्पर्श कर मनुष्य ने बनाया है स्वप्न का गढ
उडो रे पत्थर मनुष्य ने तेरे पख लगा दिए हैं
अजन्ता-पथ पर उडने वाला मेरा पक्षी रास्ता भूल गया है।

पत्थर देह तो कठोर नहीं लोहे से बढकर लोहा है
किसने अपने हाथ की लोहे की छेनी से रेखा खीचकर नहर बहाई है
मेघ के मयूरो के विचित्र तारको की एक-एक रेखा खीचकर
हेम कमल की डिबिया मे ओस की बूँद भरकर
अथवा मरु बालू मे 'मुगुनि पत्थर' का चित्र अकित कर
नील कूई पुष्प के तन को चूमकर मधुप व्यथा पाता है
जहाँ पत्थर ने मनुष्य के हाथो से मनुष्य की शोभा पाई है
मै कवि अजन्ता देह की पत्थर की डयोढी चीरकर पुकार रहा हूँ।

अब मनुष्य अकेला बैठकर पाषाण देह मे सिर पटक रहा है
मार्ग की पतली काई मे उसका पैर फिसल जाता है
मानव-मन के जागरण तले रूपश्री खेलना चाहती है
युग-युग से तूलिका लिये हुए मनुष्य समय की प्रतीक्षा मे है
पत्थर देह मे अकित करने के लिए मनुष्य मन की छाया।
बहुत थक जाता है, मन थक जाता है, समय नहीं, समय नहीं
मानव-मन की यह तरंगे, रूप की राजधानी का यह बाजार
"और अधिक अंधकारपूर्ण घन गिरि के नीचे काटो, पत्थर काटो"।

गोपालचन्द्र मिश्र

रूप देवता

सृष्टि कर्ता निराकार निर्विकार है
इस भावना से ज्ञानियो को रहने दो
मेरे प्राणो के देवता कितने सुदर रूप मे
मेरी ऑखो के सामने विश्व-भर मे साक्षात् हैं।
मै निरक्षर निरालम्ब सत्ता नहीं समझ पाता
उससे मुझे तृप्ति नहीं, हृदय को सान्त्वना नही
असीम मे असीम का योग है चिर विफलता
वृथा ज्ञान, वृथा सुख, वृथा जीवन-साधना।
मानव रूपी यही तो देवता है मेरे सामने
कैसे मुग्ध नयन, कितना सुदर बदन
मेरे उच्छन्न प्राण प्रेमालोक से जाग उठते है
मानो यह जड विश्व अमृत-सदन हो।
आज है जल, स्थल एक ही रूप मे उच्छ्वसित
मानव-प्राण मे हुआ है देवता का अवतार
विश्व प्रेमानन्द के गान से अनुगुजित है
मन प्रेम से चाहता है मानव के लिए मुक्ति।

मेरे देवता ग्रहण करते हैं मेरे प्रीति उपहार

प्रतिश्रुति

जे शिशु जन्मिछि आजि मध्य रात्रि अंधकार तले
कातर करुण कंठे से चाहिछि प्रतिश्रुति मोर
स्वार्थर शाणित छुरी न देबाकु कम्र तार कठे
यात्रा पाइ करिबाकु तामिस्रार पथ परिष्कार
न देबाकु ललाटे ता ईर्षा घृणा अबिश्वास कला
गाइबाकु यात्रा पथे मणिषर मुक्ति प्रीति गान
सबिनय कठे तार प्रतिश्रुति मागे बारंबार ।
निःसहाये देबा पाइं अन्तरर स्नेह प्रीति-दान
आमरि मणिष शिशु असहाय मौन कठे केबे
निर्बाक प्रदीप्त नेत्रे जणाइछि दृढ़ दाबि तार
अमृत बंधने ताकु बाँधिबाकु मैत्री बिश्वासर
बचिबाकु देबा पाइं मणिषर पूर्ण अधिकार
जाअ नाहीं सहयात्री मणिषर स्वर शुण आजि
प्रतिश्रुति मागुअछि शिशु एक ए धरणी परे
देबा पाइं शान्ति स्वस्ति दाबी जाहा प्रति मणिषर
मणिषर मुखा पिन्धि हिसाबाद जहि क्रीडा करे
से चाहुंचि प्रतिश्रुति अभिनय करिबाकु शेष
पशुत्वर, देबत्वर चालिछि जा बिश्वे सदा आजि
चाहें कि से ए मणिष पिधे जेहु अमणिष बेश
ए मणिष प्राणपुरे मणिषर बंशी उठु बाजि
प्रतिश्रुति दिअ तार रक्त छिटा लागिबनि अगे
बचिब मणिष शिशु मणिषर अधिकार नेइ
सबुज आकाश तले अंकुर ए मानबिकतार
बढ़िब नबीन तेजे मुक्ति प्रीति मैत्री गीति गाइ ।

चिन्तामणि बेहेरा

प्रतिश्रुति

आज मध्य रात्रि के अधकार मे जिस शिशु ने जन्म लिया है
कातर करुण कठ से वह माँगता है मुझसे प्रतिश्रुति
स्वार्थ का तीक्ष्ण कटार कम्र कठ पर न लगने के लिए
यात्रा के हेतु अधेरे पथ को परिष्कृत करने के लिए
ललाट पर ईर्ष्या, घृणा और अविश्वास की कालिमा न लगने के लिए
मनुष्य के यात्रा-पथ मे मुक्ति-प्रीति के गीत गाने के लिए
उसका सविनय कठ बार-बार प्रतिश्रुति माँगता है
नि:सहाय को देने के लिए अन्तर का स्नेह प्रीति-दान
कभी हमारा यह मानव-शिशु असहाय मौन कंठ एव
निर्वाक् प्रदीप्त नेत्रो से अपना दृढ दावा उपस्थापित करता है
मैत्री और विश्वास के अमृत बधन से उसे बाँधने के लिए
मानव के पूर्ण अधिकार की रक्षा के लिए
जाओ मत सहयात्री आज मनुष्य की पुकार सुनो
इस धरती पर एक शिशु प्रतिश्रुति माँग रहा है
प्रत्येक मानव के शान्ति-स्वस्ति दावे के लिए
मनुष्य का चोला पहनकर जहाँ खेलता हिसावाद
वह चाहता है प्रतिश्रुति पशुत्व और देवत्व के अभिनय के अत के लिए
जो आज विश्व मे हो रहा है;
वह नही चाहता मनुष्य का यह अमानवी वेश
मानव के प्राणो मे मानव-वशी के स्वन गूँजने दो
प्रतिश्रुति दो उसके अग मे रक्त के छीटे नही पडेगे
मानव-शिशु जीवित रहेगा मनुष्य का अधिकार लेकर
हरित आकाश के नीचे मानवता का यह अकुर
मुक्ति, प्रीति एव मैत्री के गीत गाकर नवीन तेज से बढ उठेगा।

चिन्तामणि बेहेरा

शान्ति-समाचार

विपुला ए धरित्रीर देशे देशे विस्तारि दिगन्त
परिब्याप्त श्याम शष्य क्षेत्र
गहम ओ धान्य
काहिबां खर्जुर काहि अगुर उद्यान।
बळयित तृण पूर्ण चारण प्रान्तरे
अगणन दुग्धबती गोमाता विचरे
तथापि ए सर्वसहा धरित्रीर कोळे
क्षुद्र ए मानब शिशु
मदमत्त हिसा कळरोळे
सिक्त करे धरणीर सुपवित्र धूळि
उष्म रक्त ढाळि
धुम्रबाष्पे भरि जनपद
निति धर्म मुखे बोलि मसि
गरजे कमाण तार
हसिउठे शाणित ता असि।
धरणीर शष्य, फळे
स्वर्ण-रत्ने सागरे सरिते
सबुरि जे सम अधिकार
बाजेना कि काने कार
ए शाश्वत शान्ति समाचार।

जानकीबल्लभ महान्ति

शान्ति-समाचार

इस विपुला धरती के देश-देश मे दिगन्त तक फैले हुए है
शस्य-श्यामल खेत
कहीं पर गेहूँ और धान
और कहीं पर खजूर अथवा अंगूर के उद्यान
वलयित तृणपूर्ण चरागाह-प्रान्तर मे
अगणित दुग्धवती गोमाताएँ विचरण करती है।
फिर भी यह सर्वंसहा धरती की गोद मे
यह क्षुद्र मानव-शिशु
मदमत्त हिंसा के चीत्कार से
उष्ण रक्त बहाकर धरती की सुपवित्र धूल को सिक्त करता है।
धूम्र और बाष्प से जनपद को आच्छादित कर
नित्य धर्म के मुँह पर कालिख लगाकर
उसकी तोपे गरजती हैं
उसकी तलवारो की धारे चमकती है।
धरती की फसल, फल, स्वर्ण-रत्न, सरिता और सागर पर
सबका है समान अधिकार
क्या किसी के कानो मे यह शाश्वत शान्ति-समाचार नही गूँजता!

जानकीबल्लभ महान्ति

द्वन्द्व

संध्यातारा दुलाए आकाशे नॅइ आसे नील मेघ राति,
उआँसर फर हरा तल शोभा बुणे सौदामिनी छाति !
स्वप्नातुर झडर बदरे बज्र पढे प्रलयर मन्त्र
इथरर निष्प्राण स्नायुरे झजाकरे निष्कारण गस्त
कमि आसे फुटपाथर भिड शीत तोले स्वप्नर कपन
आयुष्मती कृष्णा रजनीर फुटि पडे कबरी बधन
पुति गध आमन्थरायने सर्बहरा बिकल क्रंदन
वक्षे ढाले लक्ष प्रश्न-बाची जीबन कि मृत्युर इधन ?
सृष्टि कण स्रष्टार बिलास ! इतिहास बर्बरता जाया
मुक्ति खालि युक्तिर निर्यास, परंपरा उर्णनाभी माया ?
शासन कि शाशित हंतक ? बिभव कि अभाब मारण
गौरब कि रौरब-भूषण, धर्म खालि कोक शास्त्र गान
यौबन कि जघन्य फिसादि ? सभ्यता कि अश्लील व्यजना ?
शान्ति पुणि भ्रान्ति स्नेहाशिष ? श्रम खालि कर्मर गजणा ?
सत्य सते मिथ्यार छलना ? ए माटि कि कोटिपति किणा ?
कुर्म हेब निःस्व खालि जन्म, खटि खटि अन्न-बस्त्र बिना ?
वचिबाकि गोष्ठिगत स्वार्थ ? मृत्यु बर शुभ श्रेयस्कर
नाश हेब द्वन्द्व-सरीसृप आगे देबुं बिश्वर कबर ।

तुलसी दास (कुमारी)

द्वन्द्व

सध्या-तारा आकाश मे ऊँघता है, उतरती आती है नील मेघ रात्रि
अमावस के गहन अधकार तले, शोभा बिखेरती है सौदामिनी छाती !
स्वप्नातुर प्रभजन के बदरगाह मे वज्र पढता है प्रलय मत्र
ईथर के निष्प्राण स्नायु मे झझावात करता है अकारण गश्त
फुटपाथ की भीड कम हो आती है, शीत पैदा करता है स्वप्न के कपन
आयुष्मती कृष्णा रजनी की बेणी के खुल जाते है बन्धन
पूतिगध आमन्थरायन से सर्वहारा का विकल क्रदन
उठाता है अतर मे लाखो प्रश्न, जीवन क्या मृत्यु का इधन ?
सृष्टि क्या, स्रष्टा का विलास ? इतिहास क्या, बर्बरता जाया ?
मुक्ति केवल युक्ति का निर्यास ? परम्परा उर्णनाभि माया ?
शासन क्या, शासितो का हत्यारा ? वैभव क्या, अभाव मारक ?
गौरव क्या, रौरव का भूषण ? धर्म केवल कोक-शास्त्र का गान ?
यौवन क्या, जघन्य फिसाद ? सभ्यता क्या, अश्लील व्यजना ?
शान्ति क्या, भ्रान्ति स्नेहाशीष ? श्रम केवल कर्म की पीडा ?
सत्य क्या, सचमुच मिथ्या की छलना ? यह मिट्टी क्या करोडपति की क्रीता ?
नि स्व का जन्म क्या, केवल कूर्म होना, अन्न-वस्त्र के बिना परिश्रम करना ?
जीवित रहना क्या, गोष्ठीगत स्वार्थ ? इससे तो मृत्यु शुभ है श्रेयस्कर है
द्वन्द्व सरीसृप का होगा नाश, पहले होगी विश्व की कब्र ?

तुलसी दास (कुमारी)

ए मरण नुहें नुहें

सेठि मुं देखिछि भोक उपासरे पिठि पेट एकाकार
एठि मुं देखइ मेदर बुद्धि उदर सर्बसार ।
सेठि मुं देखिछि पंजरातलु उठिबार अणचाश
एठि साकी सुरा साहितरे भुरु भुरु अगुरुर बास ।
सेठि परबरे गरभ जलइ शह शह दीपाबली
बिजुलि-आलुअ उजुलि उठुछि एठि देखें भलि भलि,
सेठि केते कार जीबन जाउछि काणि कउडिर मूले,
मणि माणिकर तउला एठेइ मणिष-हृदय तुले
सेठि भोक शोष रोग भोगकरे रक्त माउंस देह,
एठि मणिषर मनर लालसा चाटि खाए अहरह ।
सेठि भाजिपड़े गड गड होइ गढा-बेढा कोणारक
एठि देउलरे दिअ नाहि खालि मुखशाली चकचक ।
भोकिला पेटर साहितरे सेठि मरणर बादि-पाला,
एठि काल-कीट काटे टिकि टिकि हृदयर फुल डाला।
जीबन सेठेइ जीबन हेउछि भोके शोषे मरिमरि
बिलासर तले पलातक एठि शरण पशुछि डरि ।
जीबनर एहि बेलातटे मुहि पडिछि दुइर मुहे,
से मरण मुहिं बरिबाकु चाहे ए मरण नुहें नुहे ।

नित्यानन्द महापात्र

यह मृत्यु नहीं नहीं

वहाँ मैने देखा भूख-उपवास से पीठ और पेट एक होते हुए,
यहाँ मै देख रहा हूँ तौद की वृद्धि और उदर ही सर्वस्त्र है
वहाँ मैने देखा पजर के अदर से उनचास उठता हुआ
यहाँ साकी और सुरा के साथ अगुरु की मीर्नी-मीनी गध
वहाँ पर्व मे पेट जलता है
यहाँ देखता हूँ शत-शत दीपो की माला और विभिन्न रंगो के विद्युत्-
प्रकाश की जगमगाहट
वहाँ कितनो का जीवन जाता है कौडियो के मूल्य
यहाँ मानव-हृदय तोला जाता है मणि-माणिक्य से
वहाँ मांस के शरीर रोग, भूख और प्यास से तडपते है
यहाँ मानव-मन की लालसा अहर्निशि तृप्त होती रहती है
वहाँ खड-खड होकर गिर जाता है विशाल ‘ कोणार्क ’
यहाँ मदिर मे देवता नही केवल प्रवेश-द्वार की सजावट है
वहाँ भूखे पेट के साथ होता है मृत्यु का ‘ बादि पाला ’
यहाँ काल-कीट तिल-तिल करके हृदय-पुष्प की डाली को काट रहा है।
जिदगी वहाँ जिदगी बनती है तडप-तडप कर
यहाँ भय से पलातक विलास की शरण लेता है
जीवन-वेला के तट पर मै पडा हूँ दोनो के बीच
वरण करने के लिए मै उसी मौत को चाहता हूँ
यह मृत्यु नही नहीं ।

नित्यानन्द महापात्र

घासर कबर

दिल्ली सहरे कबरखानार गोलाप बणे,
हजार हजार कबर होइछि ठिआ,
गोटिए केवल अजणा भलि से अगणा कणे
खोला हाउआकु खोलि देइअछि हिआ ।

उर्ध्व भागरे सामिआना परि नेलिआ नभ,
बुकुरे सबुज घासर गालिचा टिए,
प्रकृतिर से सरस सराग मुकुला बुके
हजि जाइअछि मलिन माटिर देहे ।

विलास-छइल रजापुअ पाखे भिकारी परि,
माटिर कबर एइ जे जाउछि देखा,
ताहारि भितरे बिराम घेनिछि जाहान्नारा
बादशा-दुलाली अतुल रूपर लेखा ।

बंदी पितार सेबा पाइं जिए सकल छाडि
त्यागर जीबन बरिथिला काराबासे,
मृत्युर धूसर उष्ठ-पुटरे बुकुर बाणी
कहि जाइथिला बेदना-आतुर भाषे ।

धन दउलत मान संभ्रम बिलास शिरी
मणिष जीबन करि दिए केड़े हीन,
ताहारि भितरे बधने मते रखिब नाहि
तत्व मु तार बुझिअछि चिरदिन ।

घास की कब्र

दिल्ली शहर मे कब्रिस्तान के गुलाब-वन मे
हजारो कब्रे बनी हुई है,
केवल एक ने अनजान की तरह उस ऑगन के कोने मे
मुक्त हवा मे हृदय खोल दिया है।

ऊपर शामियाने-जैसा नीलाकाश
छाती पर हरी घास का गलीचा
प्रकृति के उस सरस सराग मुकुलित हृदय मे
खो गया है मलिन मिट्टी के शरीर मे।

विलासी राजपुत्र के पास भिखारी-जैसी
यह जो मिट्टी की कब्र दिखाई दे रही है
उसके अन्दर विश्राम कर रही है जहॉनारा
बादशाह की कन्या, अनुपम सुन्दरी।

बन्दी पिता की सेवा के लिए जिसने सर्वस्व छोडकर
त्याग का जीवन वरण किया कारावास में
मृत्यु-धूसर ओष्ठपुट से हृदय की बात
कह गई थी वेदना-आतुर भापा मे।

धन, दौलत, मान, सभ्रम, विलास-श्री
मानव-जीवन को कर देते है कितना हीन
उनके बधन मे मुझे मत रखना
मै उनके तत्त्व को समझती हूँ चिरदिन

मर्मर गढ़ा कम्र कबर लोडानि मोर
        मरण-लोके मु चाहुं नाहि कारागार
कामना मोहर मुकुला बणर मुकुला बाआ
        नील गगनर मुकुला आशिष-धार ।

बिद्युत् प्रभा देवी

उड़िया

मुझे नही चाहिए मर्मर-निर्मित कब्र
मृत्यु-लोक मे मै नही चाहती कारागार
मेरी कामना है मुकुलित वन की मुकुलित वायु
नील-गगन की मुकुलित आशीष-धार ।

बिद्युत् प्रभा देवी

इन्द्रमेघ

मेघ रागे नन्दिता ए धूसर नगरी
क्लान्त आजि छायार बिलासे :
आकाशे आकाशे तार आजि छायामेघ
कज्वलित छाया तार राज पथे पथे ।

से आकाश एइ नगरीर
अदमित बेदनारे बहु
कांदइ कि बहुविध ।
पुरे पुरे अयुत नटीर
चरणे कि बाजि उठे ताहारि से दरदी नूपुर ।

आजि तुम चन्द्रशाला पुरे
नर्त्तक मयुर चाहि तुम केश मेघ
छुटाए कि केका ।
तुमे कि सारंगी तारे तोल मेघनाद ।

बज्रर आघाते दूरे भूमपरे
लोटि पडे बृद्ध बनस्पति—
तुमे कि लाबण्यबती
हेट माथे सुक्त करि गभा
रक्तर करबी फिगि देइ भूमितले
करजरे काट तिनिगार ।
मुकि आजि मेघ हेबि अभ्रकला मेघ
ऐश्वर्य बिलासिनी ए नगरीर बहु हर्म्य शिखे
मुहि कि कान्दिबि बसि,
तुम अश्रुनीर धारे रखि समताल
मंचिबिकि कज्वलाभ नीर ।

इन्द्रमेघ

मेघ राग से नन्दिता यह धूसर नगरी
आज छाया के विलास से क्लान्त है।
आज उसके आकाश मे मेघ छाए है
उनकी काली छाया राजपथ पर पड़ रही है।

इस नगरी का वही आकाश क्या
अदमित विपुल वेदना से बहु विध रो रहा है ?
घर-घर मे अयुत नटियो के पैरो मे क्या उसके वही दर्दीले
नूपुर बज उठते हैं ?

आज तुम्हारी चन्द्रशाला मे
नर्त्तक मयूर तुम्हारे केश-मेघो को देखकर क्या केका-ध्वनि करता है ?
सारंगी के तारो पर तुम क्या मेघ-नाद झक्रंत करते हो ?

वज्राघात से दूर भूमि पर लौट पडती है वृद्ध वनस्पति
हे लावण्यमयी, क्या तुम
नत मस्तक से जूडा खोलकर
फेककर भूमि पर रक्त करबी
करज से काटती हो त्रिरेखा ?
क्या मै आज बनूँगा मेघ अभ्रकला मेघ
ऐश्वर्य विलासिनी इस नगरी की बहु हर्म्य-शिखाओ पर
बैठकर क्या मै रोऊँ ?
तुम्हारे अश्रु-नीर की धारा के साथ समताल रखकर
क्या मै कज्जल नीर बहाऊँ ?

निःशेषित करि आपणारे
तुम बातायन तळे बहि जिबि निकि
बेदनार आर्त्त अश्रुसम ।

तेबे मुहिं मेघ हेबि आजि इन्द्रमेघ
नगरीर बहुबिध आबिलता नेइ
मुहिं आजि बहिजिबि
कज्वलित छाया घेरा राज पथे पथे
आकाशे आकाशे हेबि आजि इन्द्रमेघ ॥

बिनोद्चन्द्र नायक

अपने को निःशेष कर क्या मैं बह जाऊँगा तुम्हारे वातायन के नीचे
वेदनार्त्त अश्रु के समान?

तब मैं आज मेघ बनूँगा, इन्द्रमेघ
नगरी की सारी गदगी लेकर
मैं आज बह जाऊँगा
काली छाया से घिरे हुए राजपथ पर
आकाश आकाश मे आज बनूँगा इन्द्रमेघ।

बिनोदचन्द्र नायक

संध्यातारा

सध्यातारा से जाए लुचि,
रजनी तिमिरे तार रुचि,
बिजन पथिक मरे झुरि,
अश्रु नयने उठे पुरि ।

क्षणकर से त रूप बिभा;
शारद शुक्ल मेघ किवा;
तरुण स्वप्न स्मृति छाया,
लुचइ क्षणके रचि माया ।

धूप काठि जलि ढाले बास,
भस्मे लभइ अवकाश,
हाट शेषे सबु हुए शून,
शून्यता बाधे शहे गुण ।

रगभूमिर नर्त्तकी,
अतरके स्मृति-दाग रखि,
दिशे नाहि आउ केउ पटे,
पिटि हुए ढेउ खालि तटे ।

क्षणकर से त मादकता,
कुहाइ न दिए मन कथा,
हसि हसि दूरे जाए सारि,
आलोक पछकु बिभावरी ।

जरा धरा दिशे नूआ परि,
नब बसन्त संचारि,

संध्यातारा

वह संध्यातारा छिप जाता है
नैशान्धकार मे है उसकी रुचि,
विजन पथिक मर जाता सूखकर
भर आते नयनो मे आँसू ।

क्षणभगुर है वह रूप-विभा
शारदीय शुक्ल मेघो-जैसी
तरुण स्वप्न स्मृति-छाया
छिप जाती है क्षण में रचकर माया ।

धूप काष्ठ जलकर फैलाता सुवास
भस्म होकर पाता अवकाश
हाट के उठ जाने पर सब हो जाता सूना
शून्यता देती है मन को शत-शत पीडा ।

रंगभूमि की नर्त्तकी
असावधानी में छोडकर स्मृति-चिह्न
दिखाई नही देती है कही पर
केवल तट पर तरंगे सिर पीटती है ।

वह है क्षण-भर की मादकता
कहने नही देती है मन की बात
हँस-हँसकर दूर सरकती जाती है
आलोक के पीछे विभावरी ।

जरा धरा दिखती नवीन
नव वसन्त के आने पर

जीइ उठे जीव शमशानु,
अधारे हसे बाल-भानु ।

कौस्तुभ बलि तारा-तेज,
दिबा राति कबि करे हेज,
सुदूर कानन-सगीत,
काब्ये ता ब्यथा इगित ।

क्षणिक रश्मि अनुभब,
धन्य जीबन अभिनब,
आलोक छायार खेल खेलि,
नाउरी ता तरी दिए मेलि ।

बैकुण्ठनाथ पट्टनायक

श्मशान से जी उठता है जीव
अँधेरे में हँसता है बालारुण।

कौस्तुभ से बढकर तारक तेज
चिन्तन करता है दिन-रात कवि
सुदूर कानन-संगीत
करता इंगित व्यथा-काव्य में उसकी।

क्षणिक रश्मि का अनुभव
धन्य है जीवन अभिनव
धूप-छाँह का खेल खेलकर
नाविक देता अपनी नौका खोल।

बैकुंठनाथ पट्टनायक

रूपतत्त्व

श्रीमती से राजगृहे रूपसी गणिका लालसा-निलय
नगरर बहु धैर्य ता रूपशिखारे लभिछि बिलय।
भिक्षु एक भिक्षार्थरे जाइथिला थरे ता रूप बिदग्ध
प्रभु बुद्ध जाणिले ता न कहिले किछि रहिले निस्तब्ध।
हठात् नगरे हेला बार्त्ता प्रचारित मृत्यु श्रीमतीर.
शुणि बुद्ध आदेशिले न हेउ विनष्ट ता मृत शरीर।
दिन तिनि परे बुद्ध चलिले सशिष्य नगर श्मशाने,
अणाइ श्रीमती शव रखाइले तहि सर्व अबधाने।
रूप मूढ भिक्षु सह राजा मन्त्री तुळे बहु नागरीक
बुद्ध बाणी श्रवणार्थ नगर श्मशाने सर्बे उपस्थित।
रूपसी श्रीमती एबे दिशे बिकटाल जघन्य कुत्सित,
मक्षिकार चराभूमि, दुर्गन्ध, बिभत्सफ्फित बिगलित।
कहन्ति से तथागत सकले अनाइ चित्रित पुत्तली,
एइ त मानब देह बसने भूषणे दिशे सुखकरी।
क्षतमय रोगाकुल ईर्षा, तृषामय पकिल भगुर
एइ करे मानबकु ब्याकुल, उद्भ्रान्त धैर्य करि चुर।
एहा कहि स्वल्प-भाषी स्थित प्रज्ञ प्रभु गले चलि धीरे
भिक्षु सह से जनता हेजे रूपतत्त्व मनर गभीरे

मायाधर मानसिंह

रूपतत्त्व

राजगृह मे वह श्रीमती रूपसी गणिका लालसा निलय
नगर का बहु धैर्य टूटा है उसकी रूप-शिखा मे
उसके रूप से विदग्ध एक बार एक भिक्षु गया था भिक्षार्थ
प्रभु बुद्ध को हुआ यह ज्ञान, कहा कुछ नहीं, रहे निस्तब्ध
हठात् नगर मे श्रीमती की मृत्यु की बात फैल गई
बुद्ध ने सुना, आदेश दिया विनष्ट न हो उसका मृत शरीर
तीन दिन के बाद बुद्ध शिष्यो सहित गए नगर के श्मशान को
मँगाकर श्रीमती का शव वहाँ रखवाया सबके सामने
रूपमूढ भिक्षु के साथ राजा मंत्री सहित बहु नागरिक
बुद्ध वाणी श्रवणार्थ उपस्थित हुए नगर के श्मशान मे
रूपसी श्रीमती अब दिखाई देती है विकराल, जघन्य, कुत्सित
मक्खियो की चराभूमि, दुर्गन्धित, बीभत्स, स्फीत, विगलित
सबको चित्रवत् देख कहा तथागत ने—
यही तो मानव देह वसन-भूषण से लगती है सुन्दर
क्षतमय, रोगाकुल, ईर्ष्या, तृषामय, पंकिल, भंगुर
यही तोड़कर धैर्य मानव को करते है व्याकुल, उद्भ्रान्त
यह कहकर स्वल्प-भाषी स्थित-प्रज्ञ प्रभु धीरे से चल दिए
भिक्षु और जनता लगी सोचने रूपतत्त्व मन की गहराई में।

मायाधर मानसिंह

रबीन्द्रनाथ

बिश्व आजि होइछि पथहरा
गर्भे तार अधकार भरा,
भिक्षा करे तुमरि पाशे कबि
आलोक-बारि ढालिब आसि परा
चन्द्र सम फगुण निशाकाशे,
ज्योत्स्ना ढ़ालि अमीय परकाशे,
सागर बुके खेलाइ मधुपुर
मन्द्रताने थराइ धरापुर
पागल सम कंठे भरि भाषा
आलोकमय चक्षे धरि आशा
प्रान्तरे फुटाइ नुआफुल
चित्रमय करि तटिनी कूल
आसिव तुमे परा
विश्व कबि, बसिचि चाहि
आखिरे मोर पलक नाहि
विश्व आजि होइछि पथहरा ।
विश्व कबि! तुम सागर तीर
गध फुल, तुंग गिरि शिर,
स्वास्थ्यबती तटिनी मृदुगति
दिनर शेषे चन्द्र ताराबती
सुनार धान-पल्लबित क्षेत
झरणा-नील, हाल्की मेघ श्वेत
दार्शनिक महामानब तुमे
तुमरि नामे पद्म आजि चुमे ।
बसिछु आमे धरि स्वर्ण थाला
पूर्ण दीप मली फुल माला

रवीन्द्रनाथ

विश्व ने आज पथ खो दिया है
अँधेरा छा गया है उसमें
हे कवि, भिक्षा माँगता हूँ मै तुमसे
आकर आलोक-वारि बरसाओ
फागुन के निशाकाश में चन्द्रमा के समान
अमिय प्रकाश से ज्योत्स्ना बरसाकर
सागर की छाती पर मधुपुर बसाकर
मद्र तान से धरा को थर्राकर
पागल के समान कठ मे भाषा भरकर
आलोकमयी ऑखो में आशा भरकर
प्रान्तर में नवीन फूल खिलाकर
तटिनी तट को चित्रमय करके
तुम आओगे न विश्व-कवि !
मै बैठा हूँ तुम्हारी प्रतीक्षा मे
अपलक आँखो से
विश्व ने आज पथ खो दिया है।
विश्व-कवि, तुम्हारा ही है यह सागर-तट
सुगधित पुष्प, तुग गिरि-शृग
स्वस्थ मृदुगति तटिनी
दिवस के अत में चन्द्र-तारको से परिपूर्ण
सुनहरे धान के लहलहाते खेत
नील झरने, हल्के श्वेत मेघ
तुम हो दार्शनिक महामानव
तुम्हारे नाम को आज कमल भी चूम रहे है।
हम बैठे हैं हाथ में लिये स्वर्ण थाली
पूर्ण दीप, बेले-फूलों की माला

जगत पाप चरण रेणु देइ
शान्त कर अंधकार फेड़
बकुल तले पूजार बेदी साजि
बिजने नदी पुलिने डाकु आजि
अर्द्ध मृत माणिषे दिअ प्राण
कंठे आम दिअ हे भरि गान ।

यदुनाथ दास महापात्र

पद-रज देकर, अंधकार को हटाकर
जगत् के पाप को शात करो!
मौलसिरी के नीचे पूजा की वेदी सजाकर
विजन नदी-तट पर हम आज तुम्हारा आह्वान कर रहे हैं
अर्द्ध-मृत मनुष्यों को प्राण दो
हमारे कठ में गान भर दो!

यदुनाथ दास महापात्र

दुर्मुख

शिला-बधुर दुर्गम पथे जेउ सरितर सुअ
बंधु हे गति करे,
सेकि गाए केबे मन्द मधुर कल सगीत स्वरे
से कि कहे केबे धीर मन्थर भाषे
से त छुटे तार गुरु गंभीर स्वने
से त चाहें तार घूर्णि आबर्त्तने
से त बिहसइ फेन उच्छ्वासे बिद्रूपभरा हासे ।

आजि बंधु हे अबिकल सेहिपरि
प्रबहमान मुं प्रतिहत एक प्राण
पादतले दलि
केते बाधा केते यन्त्रणा केते लांछना अपमान
चालिअछि अबिराम
चला-पथे मोर निशार तमसा राशि
चन्द्र-आलोके अम्बुद घोटि आसि
चित्त-प्रबाह परे,
बिषर कालिमा भरे, अबारित भरे ।
दीन ए दुनिया शाणित ताहार बाणे
छाति तले मोर अयुत आघात हाणे ।
छातिर शोणित देइ
मरमर स्मित देइ
चालिअछि मुहि छाइ आलुअर चित्रित अभियाने

बाधा बधर बंधुर मोर पथे
एकचक्र मुं
दुर्बार मनोरथे।
पथचारी दळ डाकि आणि गउरबे

दुर्मुख

शिला बंधुर दुर्गम पथ में जो सरित-स्रोत
हे बन्धु, बहता है
वह क्या कभी गाता है मन्द-मधुर-कल-संगीत-स्वर में?
वह क्या कभी कहता है धीर-मन्थर भाषा में?
वह तो छूटता है अपने गुरु-गंभीर स्वर से
वह तो देखता है अपने घूर्णि आवर्त्तन को
वह तो विहँसता है फेन उच्छ्वास से विद्रूपभरे हास्य से।

हे बधु, आज ठीक उसी तरह
मै प्रतिहत एक प्राण प्रवहमान हूँ
कुचलकर पॉवो से
कितनी बाधाएँ, कितनी यन्त्रणाएँ, कितनी लाछनाएँ एव अपमान
चल रहा हूँ अविराम।
मेरे पथ पर है निशा की गहन तमिस्रा
चन्द्रालोक पर घिरे हुए अम्बुद
चित्त के प्रवाह पर
विष की कालिमा भरते है अवारित भरते हैं।
यह दीन दुनिया अपने शोणित बाण से
मेरी छाती के नीचे अयुत आघात करती है
छाती का रक्त देकर
मर्म का स्मित देकर
मै चल रहा हूँ छाया-आलोक के चित्रित अभियान में

विघ्न बाधा के मेरे बधुर पथ में
मै हूँ एकचक्र
दुर्वार मनोरथ से।
राही दलो को बुलाकर गौरव से

निति निति मुहि उडाइ देउचि जाहा अछि मोर बासे
मात्र धरार शत शत मउछत्रे
आह्वानटिए आसे नाहि मोर पाशे ।
हृदय देइ बि हृदय पाए नि तिले
अश्रु बाढिले अश्रु त नाहि मिले :
मिले यदि किछि छलनार खालि खेला ।
दुःसह अबहेला ।
काहि अबा जदि हिआ मिलिथाए
जीवन-कुसुम फुटे
पाप पाप बोलि जनतार मुखे
शत अपवाद उठे ।
श्रम देले पुणि जगत दिए नि मूल
फुलर बगिचा लगाइले पुणि
आन तोलि निए फुल
कह वधु हे चित्ते अछि कि मधु ?
मधुरे जडाइ कहिबि बुकुर बाणी
चित्त-प्रकाश बाढिबि मु मोर आजि
शील सभ्रम शिष्टता मानि मानि ।
कथारे मोहर आहत मनर श्वास,
भाषारे मोहर शोणितर अरुणता
सुररे मोहर बकिम उपहास,
मु कहइ आजि अप्रिय सतकथा !
चारुवाक् हेबि केउपरि आजि कह आजि केउ छले ?
दुर्मुख मुहि रूक्ष ऐ धरातले !

राधामोहन गड़नायक

नित्य प्रति मै उड़ा देता हूँ जो-कुछ है मेरे पास
किन्तु धरती के शत-शत उत्सवो में
मेरे लिए एक भी आह्वान नही आता।
हृदय देकर भी हृदय नही पाता रंच-मात्र
ऑसू बहाने से ऑसू तो नही मिलते
यदि कुछ मिलता है तो केवल छलना
दु:सह अवहेलना।
कही यदि हृदय मिलता है
जीवन-कुसुम खिल उठता है
पाप-पाप कहकर लोगो के मुँह से
सैकडो अपवाद उठते हैं
श्रम देने पर भी जगत् उसका मूल्य नही देता
फूलो के बगीचे लगाने पर भी
दूसरे तोड लेते हैं फूल।
हे बंधु, कहो चित्त में क्या मधु है?
मधु मिश्रण कर कहूँगा मन की बात
मै आज अपना चित्त प्रकाश फैलाऊँगा
शील संभ्रम शिष्टता मानकर।
बातो में मेरी आहत मन की साँस
भाषा में मेरी शोणित की अरुणता
सुर में मेरे बंकिम उपहास
मै कह रहा हूँ आज अप्रिय सत्य की कहानी
चारुवाक् होऊँगा बोलो मै किस छलना से आज
दुर्मुख हूँ मै इस रूक्ष धरातल पर।

—राधामोहन गड़नायक

तर्पण

आकाशे अदिन मेघ ताण्डब, पबने झडर ताति
पश्चिम नभे उठुछि घनाइ ब्यर्थ आशार राति
        तटिनी पुलिने पथिक मुं एका
        खोजि बुले क्षीण आलोकर रेखा
बिद्रुपि मोर बिह्वलतारे झलसे बिजुलि भाति
आदुआले तार हुए आगभर ब्यर्थ आशार राति ।
शंका मगन सुप्त धरणी जागे मुं यात्री एका
शुभे नाहिं कार कंठ त काहिं, नीरब जे कुहु केका
        झड़र मादिर परशे केबल
        जल तरग उठे छलछल
बन धूलि कणा करे बाट बणा पथ जाए नाहिं देखा
त्रस्त नयने मत्त गगने चाहें मुं यात्री एका
सहसा बिदारि बिपुल प्रलय शुभे आनन्द ध्वनि
भग्न बीणारे किए झंकारे आलोकर आगमनी ?
        दुर्दिन भेदि धरि मोर हात
        किए आसि मोते बताउछि बाट
देखिनि काहाकु नयन मातर हृदय पारुछि चिन्हि
अमाबस्यारे बजाइलात से आलोकर आगमनी
पूर्बगामी से, प्रलय पथरे सारथी साजिब मोर
दुर्दिने मोर आश्रय तार निर्भय बाहु डोर ।
        दुर्बार तार चरण परशे
        रूक्ष शड़ले शतदल हसे
बजाए बसि से मरण बीणारे जीबनर कलरोल
आबोरि रखिछि मते आजि तार अभेद्य बाहु डोर ।

सुनन्द कर

तर्पण

आकाश में है असमय मेघ का तांडव, वायु में प्रभंजन का ताप
पश्चिम नभ में हो रहा है व्यथ आशा की गहन रात्रि का आगमन
तटिनी तट में मै हूँ अकेला पथिक
ढूँड रहा क्षीण आलोक की रेखा
मेरी विह्वलता को व्यंग कर बिजली का प्रकाश चमक उठता है
उसकी आड़ में व्यर्थ आशा की रात्रि आगे बढ़ रही है
शंका-मग्न सुप्त धरणी में मै अकेला यात्री ही जाग रहा हूँ
कहीं पर किसी का कंठ-स्वर तक सुनाई नही देता
कोयल की कूक भी नीरव है।
केवल प्रभंजन के मदिर स्पर्श से
जल तरंगे उछल रही हैं
घने धूलि-कणो ने पथ से भटका दिया है, मार्ग दिखाई नहीं देता है
मै अकेला यात्री त्रस्त नयन से मत्त गगन को देख रहा हूँ
सहसा विपुल प्रलय को चीरकर आनन्द-ध्वनि सुनाई देती है
कौन है जो भग्न वीणा पर आलोक के आगमन को झंकृत कर रहा है
दुर्दिन को भेदकर मेरा हाथ पकड़कर
कौन मुझे राह दिखा रहा है
आँखो से मै किसी को देख नही पाता, किन्तु हृदय पहचान रहा है
उसीने तो अमावस में आलोक के आगमन की रागिनी बजाई है
वह है पूर्वगामी, प्रलय पथ में वही होगा मेरा सारथी
दुर्दिन में उसकी निर्भय बाहु-डोर ही मेरा आश्रय है
उसके दुर्वार चरण-स्पर्श से
रूक्ष शैल मे शतदल हँसते हैं
वह बैठा हुआ मरण-वीणा पर जीवन का कलराग बजा रहा है
आज उसकी अभेद्य बाहु-डोर ने मुझे परिवेष्टित कर लिया है।

सुनन्द कर

उर्दू

चयन : **मौलाना अबुलकलाम आज़ाद**

कवि-नाम	**कविता**
'अर्श' मलसयानी	*निगारों का देस*
आले अहमद 'सरूर'	*मातम क्यों*
जगन्नाथ 'आज़ाद'	*ग़ज़ल*
'जोश' मलीहाबादी	*है कि नहीं*
नरेशकुमार 'शाद'	*काशें*
नवाब जाफ़र अली ख़ॉ 'असर' लखनवी	*ग़ज़ल*
'नाजिश' परतापगढी	*सामईन ने कहा*
'फ़िराक़' गोरखपुरी	*मौजे तग़ज़्ज़ुल*
'रविश' सिद्दीक़ी	*अफ़सानये-ख़ेश*
सिकंदर अली 'वज्द'	*कशमकश*

निगारों का देस

आबशारों[1] बहारों नज़ारों का देस
वादियों[2] नद्दियों कोहसारों[3] का देस

सर बसर नग्मों-चश्मों[4] की यह सरज़मीं
सर बसर सब्ज़ों[5] यह सब्ज़ाज़ारों[6] का देस

दर हक़ीकत है फ़िरदौसे-रूये-ज़मीं[7]
इंतख़ाबे-जहाँ[8] यह बहारों का देस

लालाकारी[9] है फ़ितरत[10] की हर बाग़ में
यह हसीं देस है लालाज़ारों[11] का देस

गीत गाती हुई नद्दियों की ज़मीं
शोर करते हुये आबशारों का देस

जगलों की सुकूँ-बख़्श[12] दिलकश ज़मीं
मुहर बर लब हसीं कोहसारों का देस

यह सियह-चश्म रानों[13] ग़ज़ालों[14] का घर
यह हसीं महजबीं[15] माह-पारों[16] का देस

यह पहाड़ों का ऊँची चट्टानों का घर
यह दरख़्तों की लंबी क़तारों का देस

१. जलप्रपात २. घाटी ३. पहाडी प्रदेश ४. गीत गाते हुए झरनो की ५. घास ६. घास के मैदान ७. जमीन पर स्वर्ग ८. विश्व का चयन ९. गुल्कारी १०. प्रकृति ११. गुलजार १२. शातिप्रदायक १३. सुन्दर १४. हिरनौटा, हिरन का बच्चा १५. चद्रमुखी १६. चॉद के टुकड़े, सुंदरियों का

चीड़, कैल और अखरोट की सरजमीं
देवदारों सफ़ेदों चिनारों का देस

तुंद[1] मौसम के हमलों की आमाजगाह[2]
कुदरती घाटियों के हिसारों[3] का देस

साज़ बजते हैं गाते हैं झरने यहाँ
है यही ज़मजमों[4] का मल्हारों का देस

सुर्ख़ फूलों से पैरास्तों[5] सरज़मीं
सब्ज़ पत्तो से पुर शाख़सारों का देस

रूये-दरिया पै इक तैरती ज़िंदगी
कश्तियों हाउसबोटों शिकारों का देस

जिनको तूफ़ाँ की तुंदी का कुछ डर नहीं
उन निडर माझियो पुख़्ताकारों का देस

जाफ़राँ[6] के ज़र-अफ़रोज़[7] खेतों का घर
यह ज़मुर्रद[8] भरे मर्ग़ज़ारों[9] का देस

जो वतन की मुहब्बत में क़ुरबाँ हुये
उन जियाले-जरी[10] जाँ-निसारों[11] का देस

जिनको दहक़ाँ[12] के ग़म ने ग़मगीं किया
उन हक़ीक़त-निगर[13] ग़मगुसारों का देस

---

१. तेज़ २. अभ्यास भूमि, अखाड़ा ३. क़िले ४. सगीत ५. सजी हुई ६. केसर ७. स्वर्ण रग ८. पन्ना ९. सब्जाजार, वह जगह जहाँ दूब उगती है १०. जीवट वाले और दिलेर ११. प्राण निसार करने वाले १२. गरीब किसान १३. सत्यद्रष्टा

मातम क्यों

अय दोस्त यह अफसानये-बरबादिये-दिल[१] क्यो
मातम[२] तो कभी शेवये-रिंदॉ[३] नहीं होता

कब सुबह की आमद पै सितारे नहीं ढलते
कब रात का हर ख्वाब परेशॉ नहीं होता

तजईने-गुलिस्तॉ[४] है कोई खेल नहीं है
किस किसका लहू सरफ़े-बहारॉ[५] नहीं होता

साहिल[६] का फसूँ[७] लाख खुश-आयंद[८] है लेकिन
साहिल से तो अंदाज़ये-तूफॉ नहीं होता

जज़्बात[९] का अजाम परेशॉ नज़री है
अफकार[१०] का शीराज़ा[११] परेशॉ नहीं होता

तू वक्त के असरार[१२] का महरम[१३] नहीं शायद
यह दौरे-तग़य्युर[१४] तेरा महकूम[१५] नहीं है

मस्तों के बहकने में भी इक रम्जे-जुनूँ[१६] है
यह रम्ज[१७] अभा तक तुझे मालूम नहीं है

यॉ कसरते-नज़्ज़ारॉ[१८] है खुद मानअे-ग़म[१९] भी
मसरूफ़[२०] है जो ऑख वो मगमूम[२१] नहीं है

---

१. दिल की बरबादी का किस्सा २. शोक ३. मस्तो की आदत ४. बाग की सजावट ५. बसंत के लिए काम आना ६. किनारा, तट ७. जादू ८. रम्य ९. भावनाओ का १०. विचारो का ११. व्यवस्था १२. रहस्य १३. जानकार १४. परिवर्तनशील ज़माना १५. तावेदार १६. पागलपन का इशारा १७. इशारा १८. द्रष्टव्य की अधिकता १९. गम को रोकने वाला २०. व्यस्त २१. दुखी, गमगीन

आँच आई जो दामन पै तो शोलों से हज़र[1] क्यों
"अुज़राओं[2]" की तख़लीक़[3] तो मादूम[4] नहीं है

तख़रीब[5] में तामीर[6] है, तामीर में तख़रीब
इंसाँ है कोई पैकरे-मासूम[7] नहीं है

तहज़ीब के फ़रसूदा[8] तसव्वुर[9] पै है नाज़ाँ[10]
हर गम्ज़ये-पीरी[11] में कहाँ हुस्न का जादू

रंगीन परों से कहीं उड़ना भी है मुमकिन
गर हमसरे-अफ़लाक[12] न हो कुव्वते-बाज़ू[13]

है जिंसे-अमल[14] पास तो नुक़सान नहीं है
इंसाफ़ की ख़ू[15] गर है ज़माने की तराज़ू

अफ़्कार सरअफ़राज़[16] हैं जज़्बात हैं पामाल
शेरों के लिए नंग[17] है ख़ूये-रमे-आहू[18]

है जिनकी जबीं[19] सअिये-मुसलसल[20] से गुहरताब[21]
ज़ेबा[22] है उन्हीं के लिए साक़ी का भी पहलू[23]

इस दौर[24] के सरबस्ता[25] हक़ायक़[26] नहीं खुलते
साया है अगर 'कल' का तिरे क़ल्बे-हज़ीं[27] पर

---

१. डर २. लैला-मजनू की तरह मशहूर वामिक अुज़रा की भी कहानी है। वामिक की प्रेमिका का नाम अुज़रा था। अनूढ़ा को भी कहते हैं। ३. सृष्टि ४. विनष्ट ५. विनाश ६. निर्माण ७. बेगुनाह हस्ती ८. पुराने-धुराने ९. खयालो १०. गर्वित ११. बढ़ापे के हाव भाव १२. आसमान की उड़ान का साथी १३. भुजाओं की शक्ति १४. कर्म की पूँजी १५. आदत, प्रकृति १६. विजयी १७. शर्म की बात, लज्जा १८. हिरनो की तरह भागने की आदत १९. मस्तक २०. अविराम प्रयत्नशीलता २१. मुक्ताभ २२. उपयुक्त २३. गोद २४. जमाना २५. मुँहबंद २६. हकीक़ते २७. शोकसतप्त हृदय

अश्कों[1] की गुलाबी[2] तो छलकती ही रहेगी
कुछ ख़ूने-जिगर से भी खिला फूल ज़मीं पर

यह गर्दे-कुदूरत[3] अभी हो जायेगी काफ़ूर
मेहनत का अ़रक़[4] आये अगर तेरी जबीं पर

हस्ती के ये आदाबे-रम-ओ-सोज ओ-तजल्ली[5]
मौक़ूफ़[6] नहीं तेरी चुनॉ और चुनीं पर

महसूर[7] थे जो दैर ओ हरम[8] में कभी असरार[9]
ह फ़ाश[10] वो इक रिंदे-ख़राबातनशीं[11] पर

रफ़्तारे-जमाना ख़ते-माकूस[12] नहीं हैं
बेदार[13] है जो जहन[14] वो मायूस[15] नहीं ह

आले अहमद 'सरूर'

१. ऑसू २. प्याली ३. गदगी की गर्द ४. पसीना ५. दीवानगी, दिल की जलन और सत्य के प्रकट होने के नियम ६. अवलबित ७. बंद ८. मंदिर और मस्जिद ९. रहस्य १०. प्रकट ११. मयख़ाने मे रहने वाले मस्त अवधूत पर १२. उल्टी रेखा १३. जाग्रत १४. मस्तिष्क १५. निराश

ग़ज़ल

क़फ़स-ओ-आशियाँ की बात न कर
करमे-बाग़बाँ की बात न कर

अपनी मंज़िल को ढूँढ़ने वाले
जरसे-कारवाँ[1] की बात न कर

मिरा हर साँस है नसीमे-बहार[2]
मुझसे दौरे-ख़िज़ाँ[3] की बात न कर

अय कि तक़दीर का यक़ीं है तुझे
यह गुमाँ है गुमाँ की बात न कर

वारदाते-जमीं को देख ज़रा
गर्दिशे आसमाँ की बात न कर

जलवये-ख़ाकियाँ[4] का दौर है यह
नूरे-अफ़लाकियाँ[5] की बात न कर

देख ज़र्रों की आज तावानी[6]
अंजुम[7]-ओ-कहकशाँ[8] की बात न कर

जादये-दर्दे-इश्क़ के[9] राही
देख सूद-ओ-ज़याँ[10] की बात न कर

फ़ाश हो राजे-दोस्ताँ न कहीं
सितमे-दुश्मनाँ की बात न कर

---

१. काफ़िले की घंटी २. वसंत की बहार ३. पतझड के जमाने की ४. मर्त्यवासियों का जलवा ५. स्वर्ग की दीप्ति या प्रभा ६. चमक, दीप्ति ७. सितारे ८. आकाश-गंगा ९. दर्दे-इश्क़ की राह १०. लाभ-हानि

बाग़बॉं का भरम न खुल जाये
क़फ़स-ओ-आशियॉं की बात न कर

जो मुझे छोडकर रवाना हुआ
मुझसे उस कारवॉं की बात न कर

न सही मैं वहॉं मगर ब बदी
तू मिरे गुलिस्तॉं की बात न कर

जिसने अपने चमन को बेच दिया
मुझसे उस बाग़बॉं की बात न कर

क़समे-जोरे-दुश्मनॉं तुझको
करमे-दोस्तॉं की बात न कर

आज सारे चमन की ख़ैर मना
इक मिरे आशियॉं की बात न कर

गुमरही भी तो एक मंज़िल है
शिकवये-गुमरहॉं[1] की बात न कर

सुस्तिये-मीरे-कारवॉं[2] की कसम
तेज़िये-कारवॉं की बात न कर

ज़िंदगी इम्तिहान है 'आज़ाद'
इश्क़ के इम्तिहॉं की बात न कर

जगन्नाथ 'आज़ाद'

---

१. राहभटके हुओं की शिकायत २. कारवॉं के मुखिया की सुस्ती।

है कि नहीं

पूछता हूँ कि तुम्हें पासे-वफा[1] है कि नहीं
कुछ कहो भी जो कहा मैंने सुना है कि नहीं

दैर[2] से काबे[3] को जाता हूँ यह मकसद[4] लेकर
देख आऊँ कहीं मेरा भी ख़ुदा है कि नहीं

कह चुका क़िस्सये-गम उनसे तो पूछा मैंने
एक दुक्खे हुए दिल की यह सदा[5] है कि नहीं

आपने और सज़ाओं से तो इंकार किया
बेरुख़ी[6] मेरी मुहब्बत की सज़ा है कि नहीं

अय सबा[7] तूने चमन की तो सुनाई रूदाद[8]
आशियाने का भी कुछ हाल बता है कि नहीं

इस ज़माने में तो रहज़न[9] ही से पूछो यह बात
भूले-भटके का कोई राहनुमा[10] है कि नहीं

थक गये ढूँढ कर इंसाफ़ को सब फ़रियादी
जिससे पूछा है, कि है, उसने कहा है, कि नहीं

ख़ौफ दुनिया का तो होगा मुझे क्या इससे ग़रज़
मैं तो यह पूछता हूँ ख़ौफ़े-ख़ुदा[11] है कि नहीं

---

१. प्रेम का लिहाज २. मंदिर, देवालय ३. शाब्दिक अर्थ अरब के मक्के शहर का वह स्थान जहाँ मुसलमान हज करने जाते हैं। लाक्षणिक अर्थ मस्जिद ४. इरादा, इच्छा ५. आवाज़ ६. नाराजी ७. सुबह की पुरवाई ८. आपबीती ९. बटमार १०. पथप्रदर्शक ११. ईश्वर का डर

चारागर[1] एक नया रोग हुआ जाता है
इस मरज़[2] की भी किताबों में दवा है कि नहीं

मेरे अहबाब भी अब पूछ रहे हैं मुझसे
तुझको ईनाम मुहब्बत का मिला है कि नहीं

ग़म दिये रंज दिये तुमको ख़ुदा ने अय 'जोश'
फिर भी यह पूछ रहे हो कि ख़ुदा है कि नहीं

'जोश' मलसयानी

---

१. इलाज करने वाला, चिकित्सक २. बीमारी ३. मित्र, दोस्त

क़ाशें

ज़िंदगी ! कितनी कज[1] अदा है तू
जाने किस जुर्म की सज़ा है तू
जिस कदर हूँ नियाज़मंद[2] तेरा
इसस बढकर कभी ख़फ़ा[3] है तू

चाल इसकी कहॉ नहा बिगडी
नाज़[4] इसका कहॉ नहीं टूटा
दिल ने क्या-क्या सितम[5] नहीं झेले
फिर भी यह सख्त जॉ[6] नहीं टूटा

नामुवाफ़िक़[7] हवा का ख़ौफ़[8] नहीं
इस अँधेरी फ़ज़ा[9] का ख़ौफ़ नही
नाखुदा[10] से बचा खुदाये-करीम[11]
वरना मौजे-बला[12] का ख़ौफ नहीं

दर्द ही दर्द भर गया दिल मे
इतना हस्सास[13] कर दिया गम ने
जब किसी ऑख से गिरे ऑसू
अपनी ऑखों पै ले लिये हमने

फूल-सा रग-ओ-बू नहीं लेकिन
फूल से बढक नर्म तीनत[14] है
इस हिक़ारत[15] से पायमाल न कर
घास भी गुलिस्तॉ की जीनत[16] है

---

१. टेढी २. अनुगृहीत ३. नाराज़ ४. गर्व ५. कष्ट, अत्याचार ६. कठोर हृदय ७. प्रतिकूल ८. डर ९. वातावरण १०. कर्णधार ११. दयालु ईश्वर १२. विपत्ति की लहर १३. कातर १४. प्रकृति १५. अवज्ञा १६. शोभा

ज़िंदगानी की ख़ुशमिज़ाजी[१] को
वाक़्या[२] है कि कम समझते हैं
वो भी रूठी हुई मसर्रत[३] है
जिसको हम लोग ग़म समझते है

मुतलक़न्[४] बा-असर नहीं होती
कैफ़[५] से बहरावर[६] नहीं होती
जिसमें हल्का-सा ग़म न हो जाये
वो ख़ुशी मौतबर[७] नहीं होती

अश्क[८] में सरख़ुशी[९] की मौज कहाँ
फ़ितरतन्[१०] यह तो ग़मरसीदा[११] है
मेरे हिरमाँ[१२] नसीब होटों की
मुस्कुराहट भी आबदीदा[१३] है

मैंने ग़म को ख़ुशी में ढाला है
मेरा हर इक चलन निराला है
लोग जिन हादिसों[१४] से मरते हैं
मुझको उन हादिसों ने पाला है

नरेशकुमार 'शाद'

---

१. खुशी २. हकीकत ३. खुशी ४. बिल्कुल ५. आनद, मस्ती ६. भाग्यशाली ७. भरोसे की, विश्वसनीय ८. ऑसू ९. मस्ती, शराब की मस्ती १०. स्वभावतः ११. पीडित १२. निराश १३. सजल, अश्रुपूर्ण १४. दुर्घटनाओ से

ग़ज़ल

सिवाय नाम के तेरा निशॉ नही मालूम
कहॉ झुकाऊँ जबीं[1] आस्तॉ[2] नही मालूम

हमारी ही तगो-दौ[3] का ग़ुबार[4] छाया है
जो यह नहीं तो है क्या आसमॉ नहीं मालूम

हयात[5]-ओ-मर्ग[6] का तूफॉं नफ़स नफ़स[7] में है
कहाँ पै दम ले यह मौजे-रवॉ[8] नहीं मालूम

यह चाहते है बदल दें निज़ामे[9] फ़ितरत[10] का
जिन्हें ख़ुद अपना ही सूद-ओ-जयॉ[11] नहीं मालूम

तेरे ख़याल की रानाइयों[12] मे गुम क्या हो
जिसे कि इश्क़ का राजे-निहॉ[13] नहीं मालूम

यक़ीं गुमॉ है कभी तो कभी गुमॉ है यक़ीं
मआले-कारे-यकीन-ओ-गुमॉ[14] नहीं मालूम

न हो क़फ़स[15] से जो मानूस[16] क्या करे वो ग़रीब
जिसे क़फ़स के सिवा आशियॉ नहीं मालूम

---

१. मस्तक २. चौखट्, दहलीज ३. दौड-धूप ४. गर्द-ओ-धूल ५. जीवन ६. मृत्यु ७. सॉस-सॉस मे ८. बहती हुई लहर ९. इंतजाम, व्यवस्था १०. प्रकृति का ११. नफ़ा-नुकसान १२. सुन्दरता १३. छिपा हुआ रहस्य १४. यकीन और गुमान का परिणाम १५. पिजरा १६. हिला-मिला

नियाजे-इश्क़[1] है नाआश्नाये-हर्फ़े-तलब[2]
अब इस क़दर भी हमें महरबाँ नहीं मालूम

'असर' उमीदे-वफ़ा और ऐसे काफ़िर से
नहीं नहीं के सिवा जिसके हाँ नहीं मालूम

'असर' लखनवी

१. प्रेम-कामना २. तलब से अपरिचित.

सामईन[1] ने कहा

अर्श[2]-ओ-सिदरा[3] की बुलदी से हटाकर नज़रें
आप पस्ती के मकीनों[4] में कहाँ आ पहुँचे

छोडकर अपने तख़य्युल[5] का फ़लकबोस[6] महल
आप हम ख़ाकनशीनों मे कहाँ आ पहुँचे

चूर हो जायेंगे सब आपके नाज़ुक सपने
तल्खिये-ज़ीस्त[7] के तूफ़ाँ से जो टकरायेंगे

हममें अहसासे गम-ओ-दर्द[8] ज़ियादा होगा
आप रगीन ग़ज़ल गाके चले जायेंगे

हाथ मैले भी है गुश्ताख भी हम लोगों के
क़िस्सये-दामने-जानाना कहाँ लाये हैं आप

किस क़दर गदे है हम लोगों के नगे तलवे
फर्शी-मख़मल का यह अफ़साना कहाँ लाये हैं आप

आप छेड़ें न यहाँ ख़ुल्दे-बरीं[9] की बातें
हम गुनहगार भी सुन लेंगे तो फिर क्या होगा

धज्जियाँ जेब-ओ-गरेबाँ की उड़ायें न हुज़ूर
बच्चे नंगे है जो चुन लेंगे तो फिर क्या होगा

देखिये ज़िंदों की फ़रियाद-ओ-फुग़ाँ[10] में आकर
आपके मुर्दों का महशर[11] न कहीं सो जाये

---

१. श्रोता २. आसमान . ३. नाम है एक बेर के पेड़ का जो सातवे आसमान पर है ४. रहने वाले ५. खयाल ६. गगनचुबी ७. जीवन की कटुता ८. दर्द-ओ-गम की अनुभूति ९. ऊपर का स्वर्ग १०. रोना-चिल्लाना ११. पुनर्जागरण का दिन

हमसे बचिये कि पसीने में हमारे मिलकर
आपकी बूये-गुलेतर न कहीं खो जाये

तेज है आँच यहाँ सपनों में सोज़े-ग़म की
शमअ़े-महफ़िल को पिघलने से बचाये रखिये

शोले भड़के है हवादिस के हमारे दिल में
'परे-तख़यील[1] को जलने से बचाये रखिये

बात आराइशे-महफ़िल[2] की न छेड़ें हज़रत
हम कि है मुफ़लिसे[3]-ओ-नादार[4] कहीं लूट न लें

है यहाँ जाड़े की शिद्दत[5] से ठिठरते हुए लोग
क़िस्सये-गरमिये-रुख़सार[6] कहीं लूट न ले

जहर भी हमको मयस्सर नहीं, क्या जिक्रे दवा
दीदये-नरगिसे-बीमार[7] को वापस ले जाँय

कोई तहज़ीब न अहसासे-लताफ़त हममे
आप इस यारे-तरहदार को वापस ले जाँय

जुर्म होता है अगर अश्क बहायें हम लोग
ज़िक्रे-शबनब जो छिडेगा तो क़यामत होगी

जिस जगह हम हैं वहाँ हुक्म तड़पने का नहीं
मुर्गे-बिस्मिल[8] न बनें आप इनायत[9] होगी

पेच-ओ-ख़म[10] दर्द के हैं भूक की अँधियारी है
लैलिये-फ़िक्र-रसॉ[11] राह भटक जायेगी

---

१. खयालो के पर २. महफिल की साज-सजावट ३. गरीब ४. दरिद्र ५. अधिकता ६. कपोलो की गरमी के क़िस्से ७. प्रेमिका की मस्त आँख ८. घायल पछी ९. महरबानी १०. तड़पन और ऐठन ११. पहुँचे हुए विचारो की लैला, Muse

देखिये कितना गिराँ-बार[1] है माहौले-हयात[2]
शायरी आपकी नाज़ुक है लचक जायेगी

ये चमकते हुए सपने, ये लहकती तानें
दिल के बहलाने को बेशक यह ख़याल अच्छा है

हम जिसे पा भी सकें और जिसे छू भी सकें
जामे-जमशेद[3] से वो जामे-सिफ़ाल[4] अच्छा है

'नाज़िश' परतापगढ़ी

---

१. भारी २. जीवन का वातावरण ३. जमशेद का प्याला, कहते हैं इसमें सारी दुनिया का हाल हस्तामलकवत् दिखता था ४. मिट्टी का प्याला

मौजे-तग़ज़्ज़ुल

हम एक बात कहेंगे नियाज-आ-नाज़[1] से दूर
अगर है हुस्न में नख़वत[2] तो इश्क ही है ग़यूर[3]

मुख़ातिब[4] अहले-तरब[5] से है नरगिसे-मख़मूर[6]
तमाम होश की बातें हैं और नशे में चूर

दिले-हज़ीं[7] में मिरे फुंक रहे हैं सदहाँ[8] सूर[9]
सुकूते-ग़म[10] में निहाँ[11] सद-हज़ार शोरे-नुशूर[12]

ये किसलिये उठे हंगामहाये-दार-ओ-रसन[13]
सदाज़ने-अनअल इसाँ हैं आज के मसूर[14]

तमाम कर नशये-नातमामे-मूसा को
वो जाम उठा कि झपक जाये चश्मे-शोलऐ-तूर

दिमाग़ ही नहीं मिलते तिरे फ़क़ीरों के
नज़र में जचती नहीं सतवते-के-ओ-फ़ग़फ़ूर[15]

मसलहत[16] ग़मे-दौरां[17] से हमने भी कर ली
कोई नहीं तिरा दुनिया में अय दिले-रंजूर[18]

---

१. लाग-लपेट २. ग़रूर ३. गर्व करने वाला ४. बातचीत में व्यस्त ५. आनद मे रहने वाले ६. मस्त ऑख ७. शोकसतप्त हृदय ८. सैकड़ों ९. शख १० शोक के सन्नाटे में, गम की ख़ामोशी ११. छिपे हुए ११. क़ुया-मत का शोर १३. सूली और फॉसी के हगामे २४. आज के मंसूर 'मै इसान हूँ' की आवाज़ लगा रहे हैं १५. ईरान और चीन के बादशाहों की जाहोजलाली या रोबदाब। ईरान के बादशाहो को कै और चीन के बादशाहो को फ़ग़फ़ूर कहते है १६. संधि १७. जमाने के गम से १८. दुखी दिल।

ये सानहे[1] दिले-ग़मगीं हुआ ही करते हैं
न इश्क़ ही की ख़ता है न हुस्न ही का .कुसूर

तअय्युनाते-ज़माँ[2]-ओ-मकाँ से क़ता नजर[3]
ये तजरबे भी रहे है कोई क़रीब न दूर

कुछ आज ज़िंदा दिलों का था ज़िक्र आपस में
कि याद आ ही गया यकबयक दिले-मगफ़ूर[4]

मैं हो चुका था दो आ़लम[5] को छानकर मायूस[6]
ग़रीबखानये-दिल[7] में कहाँ से आये हुज़ूर

मशीयतों[8] को बदलते है ज़ोरे-बाज़ू[9] से
बशर[10] जा चाहे क़ज़ा-ओ क़दर[11]-भी हों मजबूर

क़दम उठाते ही शिकवे रहे-मुहब्बत[12] के
अभी से पाँव में छाले हनूज़[13] दिल्ली दूर

बना दिया मुझे बाज़ीचागाहे-हिज्र-ओ-विसाल[14]
यह कौन है मिरे दिल के क़रीं[15] निगाह से दूर

चमक सी जाती है रह रह के नीम तीरा[16] फ़ज़ा[17]
गुज़र रहा है कोई झुटपुटे में बुक़अये-नूर

---

१. दुर्घटनाएँ २ देश और काल की विशेषताओ से ३. नजर हटाये ४. वह दिल कि जिसे ईश्वर के वरदान मिले हैं। ५. लोक ६. निराश ७. दिल के गरीबखाने मे ८. नियति ९. बाहु-बल १०. मनुष्य ११. कजा ओ कदर=भाग्य १२. प्रेम की राह की शिकायते १३. अभी १४. वियोग और मिलन की लीलाभूमि १५. पास, निकट १६. अर्ध काली १७. वातावरण

हज़ार बातों की इक बात दास्ताने-जमाल
अब इसमें ख़्वाह ज़बाँ भी कटे कहेंगे ज़रूर

यहाँ जो हुस्ने-बयाँ है वो बेतकल्लुफ़ है
निगाहे-नाज़ को इज़हारे-फ़न नहीं मंज़ूर

न ज़ोमे-फ़न न उसे दावये-ज़बानदानी
न जाने कर दिया किसने 'फ़िराक़' को मशहूर

'फ़िराक़' गोरखपुरी

अफ़सानये-ख़ेशं[1]

मदहोश हैं हम लोग न हुशियार हैं हम लोग
हैरत-ज़दये-जलवागहे[2]-यार हैं हम लोग

हँस बोल लिया कोई तो हैं बंदये-बेदामं[3]
आज़ाद हैं हम लोग गिरफ़्तार हैं हम लोग

तेरा ही तग़ाफ़ुलं[4] हो कि बेदादे-ज़मानां[5]
सद शुक्र, कि अय दोस्त सज़ावार हैं हम लोग

सदियों से हैं आशुफ्तये-गेसूये-निगारां[6]
असरार शनासे[7]-रसन-ओ-दारं[8] हैं हम लोग

हंगामागरी[9] महफ़िले-ख़ूबाँ[10] की है हमसे
शाम-ओ-सहर[11] काकुल-ओ-रुखसारं[12] हैं हम लोग

है चीं बजबीं[13] वक्त कि हम कोहे-गिराँ[14] हैं
समझा था कि गिरती हुई दीवार हैं हम लोग

अब तक वहीं सौदां[15] है हमें जिंसे-वफ़ां[16] का
बाज़ार में अपने ही ख़रीदार हैं हम लोग

---

१. अपनी कहानी २. प्रियतम के जलवागाह याने लीलाभूमि से आश्चर्यचकित ३. बेमोल के दास ४. गफलत या प्रमाद ५. जमाने के अन्याय ६. सुन्दरियों के बालों मे विकल ७. रहस्य जाननेवाला ८. फाँसी और सूली ९. चहल पहल १०. सौदर्यलोक ११. सुबह और शाम १२. अलके और कपोल १३. माथे पर सले पड़ना, चिंतित १४. भारी पहाड़ १५. पागलपन, जुनूं १६. प्रेम-पदार्थ

उस अंजुमने-नाज़ में क्या काम हमारा
तोहमत-ज़दये-शोख़िये-गुफ़्तार[1] हैं हम लोग

अब शेख़-ओ-बरहमन से 'रविश' दिल नहीं मिलता
क्या कीजिये, काफ़िर[2] है न दीदार[3] हैं हम लोग

'रविश' सिद्दीक़ी

---

१. कथन की धृष्ट चचलता से आरोपित २. धर्मविहीन ३. धर्मात्मा

कशमकश

फ़िक्रे-गुलरेज़[1] को ख़ूंबार[2] करूँ या न करूँ
शरहे[3]-रस्मे-रसन-ओ-दार[4] करूँ या न करूँ

एक मुद्दत से है दिल शानाकशे-ज़ुल्फ़े-जमाल[5]
उसको आमादये-पैकार[6] करूँ या न करूँ

जौहरे-सोज़े-तमन्ना[7] है मेरा ख़ूने-जिगर
सरफ़े-रंगीनिये-अशआर[8] करूँ या न करूँ

बिजलियाँ जिनसे बरसती हैं सितमज़ारों[9] पर
उन ख़यालत का इज़हार करूँ या न करूँ

मुश्तइ़ल[10] और भी हो जाये न सय्याद[11] कहीं
याद याराने-गिरफ्तार करूँ या न करूँ

हो रहा है अभी अपनों की जफ़ाओं[12] का बयां
ज़िक्रे-बेमहरिये-अग़ियार[13] करूँ या न करूँ

बाग़ में ख़ूने-शहीदां[14] से बहार आई है
जेबे-तन[15] जामये-गुलनार[16] करूँ या न करूँ

आज क्यों पूछ रही है गुले-खंदां[17] से नसीम[18]
ख़िदमते-नरगिसे-बीमार[19] करूँ या न करूँ

---

१. फूल बरसानेवाले विचार २. रक्त बरसानेवाला ३. व्याख्या ४ फॉसी और सूली की रस्म ५. सौदर्य की जुल्फों का सॅवारना ६. युद्ध के लिये तत्पर ७. कामनाओं की जलन का जोहर ८. गीतों की रगीनी मे खर्च ९. जालियो पर १०. भडकना ११. शिकारी १२. अत्याचार १३. दुश्मनों की या परायो की बेमहरबानी का जिक्र १४. शहीदो का खून १५. सुशोभित १६. अनार के फूल १७. विकसित फूल से १८. मलय समीर १९. प्रेमिका की मस्त ऑखो की सेवा

क़त्ल मासूम सितारों का हुआ है लेकिन
चाक दामाने-शबे-तार[1] करूँ या न करूँ

मुल्के-ज़रमस्त[2] से उट्ठी है ग़ज़ब की आँधी
अहले-आलम[3] को ख़बरदार करूँ या न करूँ

सिकंदर अली 'वज्द'

---

१. अंधेरी रात का आँचल २. स्वर्ण की मस्ती से मस्त मुल्क, धन के मद मे चूर मुल्क. ३. दुनियावालो को

कन्नड़

चयन : ए. एन. मूर्त्तिराव

वि. कृ. गोकाक

अनुवाद : बी. आर. नारायण

कवि-नाम	कविता
अम्बिकातनय दत्त (द. रा. बेन्द्रे)	आशीर्वाद
कुवेंपु (कि. वि. पुट्टप्पा)	सोहमस्मि
चेन्नवीर कणवि	पश्चिम समुद्र
जयदेवितायि लिगाडे	निरावरण से
नरसिंहमूर्ति, के.	वैशाख पूर्णिमा
नरसिंहस्वामी, के. एस.	मत बिठाओ मुझे अपने सिंहासन पर
नरसिंहाचार्य, पु. ति.	मलेदेगुल
मुगळि, रं. श्री.	नित्य निरन्तर
रामचन्द्र शर्मा	प्रश्न
विनायक (वि. कृ. गोकाक)	नवोदय

हरकॆ

मावु-मल्लिगॆ कूडि, ऒडमूडि
कण्दॆरविगॊन्दु काणिकॆयागि
कंगॊळिप कळशदा चॆन्द नल्गोपुरवॆ !
ममतॆ-समतॆयु कूडि निल्लिसिद मंटपवॆ !
ओ ! पुरातन वंशवृक्षवे !
चिगुरागु, हण्णागु, कायागु, पाडागु,
गॊनॆगॆ हण्णागु—अमृत बीजव काय्दु
हण्णॆलॆयनुदुरिसुत्तिरु नित्य
चिगुरॆलॆयु तलॆयॆत्ति
मत्तॆ कुणियलि निन्न शाखोपशाखॆयलि—
ऒन्दॆ बुडकट्टिनलि हलवु तॊंगॆगळागि
हूगळलि, हण्गळलि मत्तॆ हलकॆलवागि
(नाळिना बाळिनाचॆगॆ ऒन्दु
नाडिदिन नाडुंटु
अदु अपूर्वोद्भवद पुण्यक्षेत्र !)
आ देवबीजक्के भागवततेजक्के
याव रस विहितवो आ सु-साहित्यक्कॆ
नॆरवागु, हदवागु, कळित गॊब्बरवागु
भूत ऎम्बुदु मण्णु ।
वर्तमानवु मरवॆ !
आ भविष्यद सुद्दि ननगेकॆ ?
आदरू हरकॆ हाकुवॆ

आशीर्वाद

आम्र मल्लिका मिल एक होकर
ऑखों के लिए एक दृश्य बन
ज्योतित कलश के सुन्दर गोपुर !
ममता समता से निर्मित मंडप !
ओ ! पुरातन वंश-वृक्ष !
कोपल बन, फल बन, कच्चा फल बन, गीत बन,
डंठल के लिए फल बन, अमृत बीज की रक्षा करके
पके पत्तो को गिराते हुए नित्य
कोपल सिर उठाकर
फिर नृत्य करे तुम्हारी शाखोपशाखा मे—
एक ही जाति मे अनेक गुच्छे बनकर
फूलों में, फलो में और अनेक होकर
(कल के जीवन के परे एक
परसो का देश है
वह अपूर्वोद्भव का पुण्य क्षेत्र !)
उस देवबीज के लिए, भागवत् तेज के लिए
जो विहित रस है उस सु-साहित्य के लिए
सहायक बन, उचित बन, खाद बन ..
भूत मिट्टी है।
वर्तमान पेड़ है !
उस भविष्य की बात मुझे क्यो ?
फिर भी मानता करूँगा

मूड बॅळ्ळियु उलिव हालक्कि कालदलि :—
मक्कळाटद मॅनेयु मुन्दागि,
अद नोडि हिग्गबल्लुवर नॅरॅ ऑन्दागि,
अदर जोगुळ हाडि
उदयरागव हेळि
ऍच्चरिसुवर मेळ हिन्दागि
इन्थ वन-उपवनवु
आ राहु कॅतुगळ तॊण्डु तुटि-तोटि
निलुकदा निलुविनलि
कन्नडद तायि तवरिन
गन्धवारणरु !
आ नन्दि बसवगळु !
गिरि शिखर मॅट्टि हारुव गरुड-सिंगरु !
हुट्टि बरलिरलि चौसष्टि कलॆ कलॆतलॆ
ई चतुर्मुखद भुवनेश्वरिय विद्यारण्य !
एळॅनॆय माडदलि
किसु-दिट्टि नोडदलि
घनकृपेय मोडदलि
"यज्ञात् भवति पर्जन्यः
पर्जन्यात् अन्नसभवः
अन्नात् भवन्ति भूतानि
सर्वभूतेषु येनैकम् अव्ययम् ईक्षते "
ओ कमलमण्डलद ऊर्ध्वमुखदाकूले
नैर्मल्यदालि निन्न गन्ध गमगम गंपु—

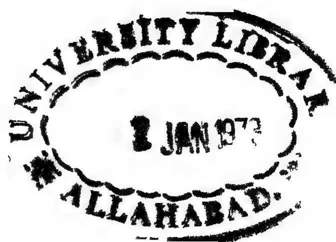
अरुणोदय में हालक्कि के कलरव के समय
बच्चो का क्रीडा-स्थान सम्मुख रख
उसे देख खिलने वालो का पडोस एक हो—
उन्हें लोरी गाये
प्रभाती सुनाए
जगाने वालो का समूह पीछे हो
ऐसे वन-उपवन में
जो है राहु-केतु उनके शरारती होठों की पकड से दूर
न स्पर्श कर सकने वाले स्थान से
कन्नड़ की माँ की मायके के
गन्ध वारुण !
वे नन्दी बसव !
गिरि-शिखर पर उड़ने वाले गरुड़ सिह !
जन्म लेकर आने दो, चौसठ कला मिलने पर
इस चतुर्मुख की भुवनेश्वरी के विद्यारण्य।
सातवे अन्तस् में
सुन्दर दृश्य के देखने पर
घन कृपा के घन में
यज्ञात् भवति पर्जन्यः
पर्जन्यात् अन्नसभवः
अन्नात् भवन्ति भूतानि
सर्वभूतेषु येनैकम् अव्ययम् ईक्षते····
ओ कमल मण्डल के ऊर्ध्व मुख के आकूल
नैर्मल्य में तुम्हारे गन्ध की सुरभि

रवितापु हरिसुव तंपु—
बावन्नवागिदेयेनो !
नेलदेदेय अर्पणवु गर्भगुडियलि मूडि
कलश-मोलेयागि, अदो, बयलिगुणिसुत्तिहुदु,
गाळि तेळुविन सेरग मरेमाडि
ओ तोरे बन्तु तेरे बन्तु
हालागि हक्कि सालागि
हींगेये अनुग्रहिसु ओ माते !
तायि हालिन रिणवु तोळेदुबिडुवददुंटे ?

अम्बिकातनय दत्त

रविताप को शान्त करने वाली शीतलता—
मलयानिल हुई !
पृथ्वी का हृदयार्पण गर्भ मन्दिर में मिलकर
कलश-स्तन होकर, देखो बाहर पिला रहा
पवन की झीनी अंचल की ओट में
ओ नदी आई, लहर आई,
दूध होकर, पक्षी-पंक्ति होकर
इसी प्रकार अनुग्रह करो हे माँ
मा के दूध का ऋण धो डालना उचित है ?

अम्बिकातनय दत्त



सोहमस्मि !

"अहमस्मि अहमस्मि अहम् अस्मि !"
आशीर्वादिसुतेतन्दनै महर्षि,
वैशाख उदय दिनमणि अरश्मि।
देवधैर्यामृतव जीवलोकक्केरेदु
मर्त्यके अमर्त्यद गवाक्षमम् कोरेदु,
केगेंडदुडेयोल्
दिव्याग्निकुंडदोल्
देवरोर् प्रत्यक्षरुंड दोल्
मूडिदन् !

मूडिदने ?
मैदोरिदनु महर्षि,
दिनमणि अरश्मि !
दिग्गजद बेन्नेरि
इन्द्रादियन्नेरि
शिखररूपद मुगिल तेरनेरि
"अहमस्मि अहमस्मि अहम् अस्मि !"
एम्ब आशीर्वादमम् लोकलोकके सारि
मैदोर्दनदो महर्षि दिनमणि अरश्मि !
सृष्टिदेविय वक्षमृदुतल्पदलि निन्तु
दृष्टिपूजेय सलिसुतिर्द कब्बिगनोळिन्तु
आघोषिसितु उपनिषत्तिन ऋषिय मंत्रसततन्तु
"ओम् पूषन्नेकर्षे

सोऽहमस्मि

"अहमस्मि अहमस्मि अहम् अस्मि!"
आशीष देते आए महर्षि,
वैशाख प्रातः के अरश्मि दिनमणि।
दैविक धैर्यामृत की जीवलोक में कर वर्षा
मर्त्य के लिए अमर्त्य का गवाक्ष चीर,
लाल अंगारे के समान
दिव्याग्नि कुण्ड के समान
देवता के प्रत्यक्ष रुण्ड के समान
उदित हुए'

उदित हुए'
दर्शन दिए महर्षि ने,
अरश्मि दिनमणि ने!
दिग्गज आरूढ
इन्द्रादि पर आरूढ
शिखर रूप रथ पर आरोहित हो
"अहमस्मि अहमस्मि अहम् अस्मि!"
यह आशीष लोक-लोकान्तर में घोषित कर
वह देखो दर्शन दिये महर्षि ने, कोमल दिनमणि ने!
सृष्टि देवी के वक्ष-मृदु सेज पर स्थित
दृष्टि पूजा अर्पित करते कवि से
उपनिषद् के ऋषि का सप्त-मन्त्र मंत्र आघोषित हुआ'
"ओम पूषन्नेकर्षे

यम सूर्य प्राजापत्य
व्यूह रश्मीन् समूह !
तेजोयत् ते रूपम्
कल्याणतमम्
तत् ते पश्यामि :
योऽसावसौ पुरुषः सोहमस्मि !"

कुवेंपु

यम सूर्य प्राजापत्य
व्यूह रश्मीन समूह !
तेजोयत् ते रूपम्
कल्याणतमम्
तत् ते पश्यामि :
योऽसावसौ पुरुषः सोहमस्मि !"

कुवेंपु

पडुगडलु

१

इदो कडलु
अदो मुगिलु
बाय्देरॆदिवॆ ऒन्दकॊन्दु अनन्ततॆय हीरुलु!
एनितॆनितो हगलु इरुळु
तॆरॆगळ हॆगलेरि बरलु
नॆलवनळलमळलिनल्लि हुगिदु मुन्दॆ सागिवॆ !
ऋतुऋतुगळु ओतु बन्दु
नदी मुखदि कूगिवॆ!
बॆट्ट बॆट्ट बॆम्बळिसिवॆ—
गुट्टनरियदन्तिवॆ;
घट्टेरि घट्टविळिदु हसिरु पट्टवेरिदॆ ।
बानिनॆदॆय भव्यतॆगिदो
कडलु हिडिद कन्नडि!
बॆड बॆरॆ मुन्नुडि!

२

अगो अल्लि!
उसिर्गट्टि द्वीप मेलकॆद्दिवॆ;
नीलनिद्दॆ गैदिवॆ ।
हायि विचि हायागिवॆ
दोणि तॆरॆयनेरिवॆ;
नीरिनल्लि रटॆ हॊडॆदु हडगु क्षितिजवडरिदॆ।
कॊरद हरिद नीर धाय

पश्चिम समुद्र

१

यह समुद्र
वह आकाश
मुँह खोले हैं एक-दूसरे की ओर, अनन्तता को निगलने।
कितने ही दिन-रात
लहरों के कन्धो पर चढकर
शोक के मरुथल में भूमि को डुबाते हुए बढते है।
ऋतु-ऋतु एकत्र होकर
नदी-मुख से नाद कर चुके है।
पर्वत-पर्वत पीछे खडे है—
रहस्य-से हैं अनजाने,
चढता है उतरता है यहाँ हरियाली का साम्राज्य।
यह देखो आकाश की भव्यता के लिए
समुद्र ने दर्पण धारण किया है।
दूसरी भूमिका नही चाहिए।

२

वह देखो वहाँ !
साँस रोककर उठा है द्वीप
नील निद्रा में है लीन
पाल खोलकर स्वतन्त्र हो
नारियाँ लहर चढी
जल-धारा को चीर क्षितिज पर चढ़ गई।
जलयान आघात से बना घाव

मटामायवागिदॆ ।
ई पडुवण तीरदल्लि
तीरदथ मॊरॆतवॊ !
आखातवॊ भूशिरवॊ
तेलुतिरुव तॆप्पवॊ
देशान्तरदाशॆवीचि इदरुदरदि बॆरॆतवॊ।
तॆरॆतॆरॆगळु बन्दरदलि नॊरॆय नूरितूरि
बरॆयुत्तिवॆ दिनचरि ।

३

अलॆअलॆअलॆ तेलिबरुवुदल्ल दोणि बिनद
अम्बिगरलि निनद
तुणुकु मीनु
मिणुकु मीनु
अणकिसि परादवेनु ?—
बिद्दवदो बुट्टिगॆ
राशिराशि ऒट्टिगॆ !
मींगुलिगन हक्कि कॊक्किनल्लि कच्चि हारितु
बलॆगॆ बिद्द मीनु मात्र विलिविलि ऒद्दाडितु
बॊक्कुदलॆय बरिमैय
मक्कळु मुगिबिद्दिवॆ
अवर पालिगष्टु इष्टु कडलु कॊट्ट काणिकॆ
मत्स्यगन्धि योजनसुगन्धियादळॆम्ब वाडिकॆ ।

४

मॊन्नॆ मॊन्नॆ युद्धवायितु मनुकुलदुद्धारकॆ
कळॆयलॆन्दॆ बन्दितॊन्नि

ओझल हो गया।
इस पश्चिमी तट पर
अनन्त निस्वन कैसा !
खाड़ी या अन्तरीप
या तैरता यान
देश-देश की आशा-वीचियाँ इसके उदर में संकलित
लहरें उलीच रहीं फेन, बन्दरगाह पर
लिख रही दिनचर्या !

३

लहर-लहर तैरकर आने वाली नाव की क्रीडा
मछियारों का हर्ष नाद।
उछलती मछली
नाचती मछली
मुँह चिढाकर फिसल गई ?—
देखो गिरी जाल में
राशि-राशि टोकरी में,
राम चिड़िया चोंच मे दबा उड़ गई
जो मछली थी जाल में पड़ी वह छटपटाई।
छटपटाना व्यर्थ
मछियारो के बच्चे टूट पड़े
उनका उतना ही दाय जितना समुद्र कर दे भेंट
है बात प्रसिद्ध मत्स्यगन्धा की सुगंध फैले योजनों।

४

कल ही मानो युद्ध हुआ मनु-कुल के उद्धार हेतु
आया वह हर लेने समझिये

देश-देशो की शान्ति तृषा !
पृथ्वी-आकाश न हो पाए पर्याप्त
समुद्र में भी पड़ी चिनगारी—
'उद्धरेदात्मनात्मानम्'
जल में सुरंग बिछी—
जहाजो में उथल-पुथल हुई
चारो ओर तोपो का समूह
सभ्यता ने आकाश पर चढ
बमो की वर्षा की
आकाश ही हिल उठा !
सागर-तट पर भी विस्फोट हुआ
स्वाद लिया जिह्वा ने
युद्ध के बारूद गोलो का
फिर भी वह अपर्याप्त ?

५

यह समुद्र
वह आकाश
मुँह खोले है एक-दूसरे की अनन्तता निगलने को !
भूगोल की आयु मिटाने;
डुबोने को वह देखो ।

चेन्नवीर कणवि

निरावरण-गे

ई भवद हुसियाट बरि बळिकेयाय्तु
सटॆ-सुखवु अतियाय्तु
परवस्तु मरॆयाय्तु
दिटवु दिटवी मातु
निज नॆनहु बयलाय्तु

नन्ननेतके तन्दॆ ई भुविगॆ ओ तन्दॆ
बेडि बयसलिल्ल काडि केळलिल्ल
इह सुखद सौख्यवॆल्ल
ई हुच्चु हॊळॆ सुळियॊळगॆ
कॊच्चि कैकालुडुगि
बॆच्चि दॆशॆगॆट्टु कनवरिसुतिहॆ
कनिकरवु बारदॆ ऎन्थ निन्नी मौन?
ओ नी सुप्रसन्ननॆ?

अरिवुगेडियु एन्न
मरवॆयदु तानुंटॆ
मरळ मरुभूमियलि
दुरुळान्धकारदलि
गरळ तुदि स्वरदल्लि कूगुतिहॆनु
किरुबॆळग तोरदिहॆ!
बॆळगॆ, नी महाबॆळगॆ?

दीनरॊळु बलु दीनॆ ना
दानिगळॊळु बलुदानि नी

निरावरण से

इस भव का मिथ्या खेल व्यर्थ हुआ
मिथ्या सुख अति हुआ
पर वस्तु अदृष्ट हुई
सत्य सत्य यह बात
सत्य का स्मरण हुआ दूर ।

इस जग में क्यो लाए, हे देव !
प्रार्थना कर चाहा नहीं, तग कर माँगा नही
इस जग का समस्त सुख
उन्मत्त सरिता की भँवर में
हाथ-पाँव सिकोडे
हूँ, दिक् भ्रान्त भयभीत,
दया नही आनी चाहिए, कैसा यह तुम्हारा मौन ?
ओ सुप्रसन्न तुम ?

मुझ असावधान को
मरुभूमि में
घनान्धकार मे
कर रही हूँ आर्तनाद
किंचित् भी दे नही रहे तुम प्रकाश
प्रकाश ! तुम महा प्रकाश ?

दीनो में अति दीन मै
दानियों मे अति दानी तुम

घनकॆ घनवागिरुवॆ
ऎनागिल्लवॆ ऒन्दणुविनासर निन्न विस्तरदि !
विस्तारवॆ नी विस्तारातीतनॆ ?

निन्नाळदॆत्तरव
निन्न निजदन्तरव
नानॆन्तु अरिवॆनो !
हे निरन्तर !

मातु मनगळाचॆ
चित्त बुद्धिगळाचॆ
कुरुहु अरिविन आचे—
निन्निरवु
नानॆन्तु बॆरॆवॆनो ?
नीनु निरवयलु !

एत्तलागद तुत्तु
कत्तिनलि इळिवुदॆ
काणलारद वस्तु
कै सेरलहुदॆ
ऎन्न भावद बॆळकॆ
नुडियॊम्मॆ नुडि साकु
"नडॆदु बा नन्नॆडॆगॆ—
नी नडॆयबल्लॆ" ऎन्दु

घन मे घनतर तुम
मेरे लिए नहीं क्या अणु भर भी आश्रय तुम्हारे विस्तार मे
ओ विस्तारातीत !

तुम्हारी ऊँचाई को
तुम्हारे वास्तविक अन्तर को
कैसे समझ सकती हूँ मै !
हे निरन्तर।

कथन मन से भिन्न
चित्त बुद्धि से पृथक्
चिह्न ज्ञान से दूर
कैसे समझूँ तुम्हारा अस्तित्व ?
कैसे खो पाऊँगी तुममे

न उठ पाने वाला कौर
कैसे उतरेगा नीचे कण्ठ के
अप्रत्यक्ष वस्तु
कैसे आयेगी पकड़ मे
मेरे भावो के प्रकाश
एक बार बोल बस एक बार
"चलकर आ मेरी ओर—
तुम चल सकती हो" इतना भर कह

करुणाळु भवहरनें
भवबॆन्न हारिसुदकॆ
नीडु नीडै अभय
नी निरावरणनॆ !

जयदेवितायि लिगाडे

तुम करुणामय, तुम भवबाधाहर
मेरी भवबाधा कर दूर
दो अभय दान
तुम निरावरण !

जयदेवितायि लिगाडे

वैशाख पूर्णिमा

राकासुधासूति भासासवोन्मत्त—
वैशाख पूर्णिमा रजनी नभोंबुधियु
क्षितिजाग्र श्वेताभ्र, डिण्डीर मालॆयलि
भुविय तीरगळन्नु मेल्वाय्दु कॊच्चुतिरॆ
नॆरॆद आराधकर नाळनाळगळल्लि
बडिबडिदु ऎडॆबिडदॆ बिसिनॆत्तरुक्किसुव
ग्रामदेविय गुडिय तमटॆ कह्ळॆ नगारि
कांरय ताळगळन्नु हिन्दिट्टु मुन्नडॆदॆ
हण्णु हेरिद मावु ऎळॆनीर कॊडगळॆ—
त्तिद तॆंगु तपु नॆळल तमाल चॆंचिगुरि—
नरळि करॆवी वनान्तरकॆ अहह एन् शान्ति !
सूर्यनध्यक्षतॆय विचल व्यापृत जगवु
यक्षिणी मायॆयॊळु करगिरलु शून्यदलि
तन्नन्नु तानरित अन्तरात्मन अक्षि
तॆरॆयॆ तोरुव तॆरदि पूर्णचन्द्रातपद
सुस्नेह वर्षदलि परिवर्तितवु पृथ्वि !
सर्वरू निद्रिसलॊर्व जाग्रतनागि
जीवनद द्रष्टारनागॆ दूरतॆयरसि
कर्मबन्ध संकेतवॆनिसि शाखोपशा-
खाबृहज्जटिलवादश्वत्थ छायॆयलि
बीज आसक्ति बेरू आशॆ रॆम्बॆय हरहु
मोह ऎलॆ मरॆवु हण् दुःखवादुदरिन्द
मैत्रिवृत्तदि लोक योग केन्द्रदॊळात्म-

वैशाख पूर्णिमा

राका-सुधा के प्रकाश से उन्मत्त
वैशाख पूर्णिमा की रजनी नभोम्बुधि
क्षितिजाग्र श्वेताभ्र डिडीर माला में
भूमि के तीरो को करती रहने पर आप्लावित।
एकत्र आराधको की नसो में
निरन्तर ऊष्म रक्त संचरित करने वाले
ग्राम देवी के मन्दिर के विविध वाद्य
त्याग आगे चले।
फलो से लदे आम, नारियल मानो घड़े लिये हुए,
शीतल तमाल की छाया, पीपल की कोमल पत्तियाँ,
दुखी को बुलाने वाले इस वन में कैसी शान्ति'
सूर्य की अध्यक्षता का विचल व्यापृत जग
ज्यो यक्षिणी की माया से घुले रहने पर शून्य में
अपने-आपको समझने वाली अन्तरात्मा की आँख
खुलने पर पूर्ण चन्द्रातप की
सुस्नेह वर्षा में परिवर्तित हुई पृथ्वी!
सभी के सोने पर एक जागृत हो
जीवन का द्रष्टार बन, दूर रखकर
कर्म बल संकेत
बृहत् जटिल शाखोपशाखा मे
बीज आसक्ति, जड आशा, शांखा मोह,
पत्ते भूल, फल दुःख होने से
मैत्रिवृत्त लोक योगकेन्द्र में आत्मा को

विरिसि निर्वाण निश्रेणियेरुत्तुदरित
बुद्धन कृपाकौमुदिय आशिषदल्लि
बद्धनेंनगू वर्षकॊम्मी इरुळ् मुक्ति ।

रखकर निर्वाण श्रेणी को चढ़ना सीखा।
उस बुद्ध की कृपा कौमुदी के आशीष में
मुझे भी वर्ष में इस रात मुक्ति प्राप्त हो।

नरसिंहमूर्ति. के.

इडदिरु नन्न निन्न सिंहासनद मेलॆ

इडदिरु नन्न निन्न सिंहासनद मेलॆ;
तॊडिसदिरु चन्द्र किरीटवनु ।
कॊरळिगॆ भार ननगॆ नक्षत्रमालिकॆ,
नानॊल्लॆ दॊरॆतनवनु

हगिसदिरु नन्न 'मगु मगु' ऎन्दु;
भंगिसदिरु नन्न बलवनु ।
निनगॆ दॊरॆतनविन्दु बेसरवायितॆन्दु;
वहिसदिरु ननगॆ अदनु ।

इडदिरु नन्न निन्न सिंहासनद मेलॆ;
काणलि बिडु निन्न पौरुषज्वालॆ ।
मुद्दिनलि हॆडितनवनु ऊडदिरु ननगॆ;
वज्रवागलि निन्न ऒलुमॆ ।

ऎष्टु कालद मेलॆ इष्टॊन्दु अभिमान ?
अर्थवागदु निन्न रीति !
अन्दु बेडद कन्द, इन्दु अदे आनन्द ?
स्वार्थतॆयॆ निन्न रीति ?

तायि हेळिदळु : नीनन्दॆ सॊकिदॆयन्तॆ
अवळ मोहन भुजवनु ।

मत बिठाओ मुझे अपने सिंहासन पर

मत बिठाओ मुझे अपने सिंहासन पर,
पहनाओ मत चन्द्र किरीट मुझे।
है भार यह नक्षत्र-मालिका,
नहीं चाहिए राज्य मुझे।

करो मत मेरा उपहास 'पुत्र, पुत्र' कह,
मत करो भंग मेरे बल को।
जो राज्य तुम्हारे लिए भार-स्वरूप,
मत सौंपो उसे मुझे।

मत बिठाओ मुझे अपने सिंहासन पर,
प्रकट होने दो अपनी पौरुष ज्वाला।
न बनाओ भीरु लाड में मुझे,
वज्र बने तुम्हारा प्रेम।

कितने समय उपरान्त इतना अभिमान ?
नहीं आती समझ तुम्हारी रीति।
उस दिन का अनचाहा पुत्र आज आनन्द बना।
स्वार्थ ही तुम्हारी रीति ?

माँ ने कहा : तुमने उस दिन स्पर्श किया था
उसकी मोहिनी बाँहों को

नानाग अच्चरिय नडुवे हुट्टिदेनन्ते,
मुत्तिडुत भू-ध्वजवनु !

मरुभूमियलि ननगे मुगिल तोट्टिल कट्टि
हिम बेंकि बिरुगाळि बीसि,
याव हरुषवो तायगे नन्नन्थ मग हुट्टि ?
पोरेदळन्तमृतवने सूसि !

मळे होळे कडलेल्ल हाडि नन्न करेये
बेळे बदुकेल्ल नेलद चेलुवे तेरेये.
तायि नन्ननु हिडिदु बेट्ट बेट्टद मेले
मुगिल मड्डलेगोलिदु कुणिदळन्ते !

देश देशद बिसिल नन्न केन्नेगे ताळ्लि,
कूसुमारिमाडि बान्दळदलि,
पर्वतारण्यगळ सिंह-शिबिरगळलि
नन्न बेळसिदळन्ते अग्निकुवरि !

नीनन्दु नन्न नोडिरबेकु; नसुनक्कु
कैबीसि-नानिन्न करेदे ।
निनगेन्थ राजाधिराजनेन्नुव सोक्कु !—
नन्न मै मुट्टदेये नडेदे ।

तब विस्मय में मैंने जन्म लिया
चूमते भू-ध्वज को।

मरुभूमि में मेरे हेतु आकाश का झूला बना
उसे डुलाया हिम, अग्नि, ऑधी ने,—
पाया कौन-सा हर्ष माँ ने मुझ-सा पुत्र-जन्म से ? —
पाला अमृत पिला-पिला मुझे।

वर्षा नदी समुद्र में गा-गा कर मुझे खिलाती,
समस्त जीवन में सौदर्य खिला,
मॉ मुझे उठा पहाड़-पहाड़ पर
आकाश के ढोल पर हर्षोन्मत्त हो नाची।

देश-देश की धूप ने किया स्पर्श मेरे कपोलो को
प्रेमातिरेक में घोड़ा बन बिठा पीठ पर,
पर्वतारण्यो के सिंह शिविरो में
मुझे पाला अग्नि कुमारी ने।

तुमने उस दिन मुझे देखा होगा, सस्मित
हाथ फैला मैंने तुम्हे बुलाया।
तुम्हें था कैसा राजाधिराज होने का अभिमान !—
बिना मुझे छुए ही चले गए तुम।

तायन्दळन्तें: 'पुट्टाणि, अवरनु कूगु;
अम्बेगालिडुत आ मुन्दें होगु'।
अद केळि केळदवनतें सरियलु नीनु;
बलु नोंन्दळन्तें : 'ऍन्थवरु इवरु!'

'तायि देवरु' ऍन्दु तारॆगळु हाडिदवु;
'आकॆ मायॆयॆ!' ऍन्दररियदवरु।
अवळ प्रेमद सविय नीनु कण्डिरबहुदु
आ वसुन्धरॆय मग नानु। केळिदनु :—

ना निन्न काणदॆयॆ बॆळॆदॆ; ना कण्डिहॆनु
ताय संप्रीतियनु, चॆलुवनु।
तन्न मग बॆळॆदु तन्दॆय बलव गळिसुवनु
ऍन्दवळु नम्बिरुवळु।

निन्न हंग्गिल्लदॆयॆ ना बाळुवुद कलिसु;
'नोंन्दु मागलि जीव' ऍन्दु हरसु;
निन्न कुरियद नन्न दारिगॆडरनु निलिसु;
नडॆदन्तें दारियनु बिच्चि बॆळसु!

मगन काडुव तन्दॆ नीनागु, हगॆयागु,
हण्णागिसॆन्नुसिरनु।
निन्न बण्डॆय मेलॆ नन्न नॆत्तर हरिसु;
काणलि निन्न हॆसरनु!

मॉ ने कहा : ‘ बेटा, उन्हें पुकार,
ठुमककर जा उनके आगे ’ ।
उसे सुना-अनसुना कर तुम्हारे खिसकने पर
अति दुखी हुई : ‘ कैसे नाथ ये ! ’

‘ मॉ ईश्वर है ’ कह तारो ने गीत गाया,
‘ वह माया है ’ बोले अज्ञानी ।
उसके प्रेम रस को तुमने चखा होगा
उस वसुन्धरा का पुत्र मै । पूछा :—

विन देखे ही तुम्हे बढा मै, मैने देखा
मॉ के प्रेम को, छवि को ।
अपना पुत्र बढ़कर पिता के बल को प्राप्त करेगा
ऐसा हैं उसका विश्वास ।

तुम्हारे एहसान बिना जीना सिखाओ,
दुःख के अभ्यस्त हो शक्तिशाली प्राण बने, दो यह आशीष
तुम्हारे सहारे बिन, तुम्हारे दिए यह विघ्न
पार कर सरलता से बढ जाऊॅ पथ पर

‘ तुम बनो पुत्र को दुःख देने वाले पिता, शत्रु बनो,
मेरी सॉसो को थका दो । ’
तुम्हारे शिखर पर बहे मेरा रक्त,
चमके तुम्हारा नाम ।

बन्द बागिलु मण्णु; बिडुव बागिलु मण्णु;
नडुवॆ कापाडुवुदु तायकण्णु।
ई कण्ण सॆरॆय कल्कोटॆयॆल्ला हॊन्नु;
नन्न कै बिडुवुदे निनगॆ चॆन्नु।

मुप्पिरद साविरद निन्न दॊरॆतनवॆन्दु
मुगिदीतु ऎन्दु कादिल्ल नानु।
'बॆळॆद मग हॊरालि नॊग, कॆळिबिडुवॆनॆ'न्दु
अ्रमॆगॊण्डु बन्दिरुवॆ नीनु।

नरसिंहस्वामी, के. एस.

आने का पथ मिट्टी है; जाने का पथ मिट्टी है;
बीच मे रक्षक हैं मॉ की ऑखे।
ये आँखे हैं रक्षा का स्वर्णिम दुर्ग
है उचित तुम्हारा छोड देना मेरा हाथ।

यह अजर अमर राजत्व कब प्राप्त होगा
करता नहीं प्रतीक्षा मै।
वय प्राप्त होगा अधिकारी, यह मॉगूँगा सोच
आये हो इस भ्रम में तुम।

नरसिंहस्वामी, के. एस.

मलॆदेगुल

१

सकल सन्देहगळु बळलि बळिगैतन्दु
बिडुव बयसुव तवॆरॆ, मलॆय देगुलवे,
वास्तवदॊळलॆदिरवु पडॆवरिविनरकॆयि-
दॊडॆवऽ शान्तिय मद्दे, मुनिहृदय फलवे,
ऒन्दॊन्दु निलविनॊळगॊन्दॊन्दु सॊगवळल
तॊरि तिरिवी भवद निश्चलकेन्द्रवे,
ऋजुअनृजु ऋतअनृत लेसुकॆडॆम्ब बॆलॆ—
गळवडद योगिगळ मुददि सान्द्रवे,

निन्तिहॆनु ना निन्न बागिलॆडॆ नम्रनागि
नुडि तुय्दु बवणॆगॊळे भावद भारदि तलॆय बागि।

२

अळिरलि इल्लिरलि ऎल्लिरलि तलॆबागि
ना तॆरॆद मलॆदेगुलद बागिलिदिरु,
निन्त तॆरवागुतिदॆ नन्न कंगळिगागॆ
अॆरॆ बानु मर हक्कि हॊळ्ळ हू हॊदरु।
अन्तरगद दैव मूलॊतिरुगिनॊळवितु
सन्नॆगैदन्तेये मैगरॆव परिगॆ
ऒन्दु नगॆयॊन्दु नुडियॊन्दु चलनादि हॊळॆदु
आवुदॊ नॆनवॊसगॆ मरळुवुदु मरॆगॆ।

आ नॆनहिनॊसगॆगळ निधिगॊळुत, गुडियॆ, निन्तॆ
नन्न मानस निन्न श्यामसुन्दर गर्भदॊळगवनु तडाकि तीरदन्तॆ।

मलेदेगुल

१

सकल सन्देह यहाँ थककर चले जाते
फिर उटते, यह वह मातृगृह, मलेदेगुल
वास्तविकता के सचार का स्थान, ज्ञान के अन्वेषण में
उत्पन्न होने वाली अशान्ति की औषधि, ऋपियो के हृदय का फल
एक-एक अवस्था मे सुख-दुःख दिखाने वाला
इस टेढ़े भव का निश्चल केन्द्र,
ऋजु-अनृजु, ऋत-अनृत, भले-बुरे के महत्त्व पर
ध्यान न देने वाले योगियो का घनानन्द,

खड़ा हूँ मै तुम्हारे द्वार समीप नम्र हो
निःशब्द हो आश्चर्य में; भावो के भार से नत ।

२

यहाँ रहूँ, वहाँ रहूँ, कहीं रहूँ सिर झुका
मलेदेगुल का द्वार जिसे मैने खोला था
दिखाई दे रहा निरन्तर मेरी आँखो को
अर्धाकाश, पेड, पक्षी, नदी, फूल, झाडी
अन्तरंग का देव कोने में छिपकर
एक हास, एक वचन, एक झाँकी दिखा
किसी स्मृति में विहँस अगोचर हो जाता है ।

उन स्मृतियों का सुख एकत्रित कर मन्दिर खड़ा है,
मेरा मानस तुम्हारे श्याम सुन्दर गर्भ मे खोज थक गया ।

३

अरसि तीरदॊलासॆ कॆरळॆ ना निन्तिरुवॆ
मलॆदेगुलद हॊरगॆ तुम्बने बयसि
अरिवरितु तीरादिह सॊगपट्टु तीरादिह
अळल ताळुत तीरदरकॆयने मॆरॆसि
‘अणु बृहत्तुगळल्लि कुग्गि हिग्गद तुम्बॆ
सृष्टियॆष्टण्डरू तीरादिह सॊदॆये,’
ऎन्दॊलुमे तुम्बिनॊळु, नलमॆ तुम्बनु सूसि
अरकॆ तीरिद्दरू नलवु तीरदॆयॆ

कण्ड देगुलदिदिरु निन्त मुनिसन्तरनु नॆनॆदु नॆनॆदु
नन्नरकॆतुम्बिगिदॆ इम्बॆम्ब तम्बुगॆयॊळे तॊनॆदु तॊनॆदु ।

४

मनॆयल्ल मठवल्ल राजनरमनॆयल्ल
इदु नाट्यमान्दिर छात्र सत्रवल्ल
जीव बयसुव भोगदुपकरणवल्लविदु-
आवर्थ घटिसितीतॆर मलॆय कल्ल ?
गोपुरद तुदियल्लि बाननॆत्तुव निन्तु
इराळिनोळु मिरुतारगॆय मालॆगॊळुत
मोड मुत्तुव जडॆगॆ जाह्नवियॆ जारिबरॆ
पक्कॆळवॆरॆसॆक्कि कण्ण सविगॊळुत

मॆरॆविदर दर्शनवॆ दुडुकिसुत्तॆदॆन्नॆदॆय नडॆय
मनुजगिदु नॆलॆयासेयो कट्ट कडॆय ?

३

इच्छा की पूर्ति न होकर आशा के उमडने पर मै खडा हूँ
मलेदेगुल के बाहर पूर्णता चाहते ।
ज्ञान पूर्ण न होने पर, सुख पूर्ण न होने पर
दु.ख सहन करता आशीर्वाद माँगता।
'अणु बृहत् में व्याप्त विस्तार
सृष्टि जितना भोग ले फिर भी असमाप्त अमृत'
प्रेम की अनन्तता मे सौंदर्य की अनन्तता को शोध
अन्वेषण पूर्ण होने पर भी प्रेम समाप्त न हुआ ।

ऐसे मलेदेगुल के सामने खड़े हो मुनि सन्तो का स्मरण कर
मेरी प्रार्थना आज भी विश्वास से परिपूर्ण है ।

४

घर नही, मठ नहीं, राज भवन नहीं,
यह मन्दिर नहीं, छात्र-सत्र नही,
जीव चाहने वाला भोग का उपकरण नहीं, यह
किस अर्थ से घटित हुआ यह मलेदेगुल
गोपुर के ऊपर विस्तृत आकाश
रात्रि में तारो की माला
मेघाच्छादित जाह्नवी का
सौदर्य यह अतुल अभिराम

मेरे हृदय मे संचारित अनन्त भाव
मनुष्य के लिए यह अन्तिम आशा का केन्द्र ?

५

करणवलयादि निन्तु विषय वैवाहिकादि
पडॆव सॊगगळनॊल्लदॆयॆ मुन्दॆ सरिदु
मै जरॆदु मन जरॆदु बुद्धितर्कव जरॆदु
अदनॊल्लदिदनॊल्लदावुदनॊ तिरिदु
ऊरिगॊन्दिरुळन्तॆ नॆलदि नॆलयिल्लदॆयॆ
तिरिव तिरुकर कणसे, निनगॆ नॆलॆ इल्ले?
जडदिन्द जीवक्के जीवदिन्दातमक्के
एरुतिह सत्ववे, निनगॆ बिडुविल्लॆ?

मुन्दैदु करणगळ मॊनॆ हॊळॆव गोपुरद गुडियॆ,
हिन्दॊन्दॆ मनद मॊनॆ मॆरॆव मुडिय कळसदॆडॆये!

नरसिंहाचार्य, पु. ति.

५

इन्द्रियो में स्थित विषय के सम्पर्क से

प्राप्त होने वाले सुख को न चाहते आगे चलकर

शरीर मन बुद्धि तर्क का मोह छोड़

इसे उसे न चाहते कोई वस्तु माँग

एक ग्राम मे एक दिन टिक स्थायी स्थान न बना

घूमने वाले साधुओ के स्वप्न, तुम्हारे लिए स्थान नही।

जड से जीव, जीव से आत्मा तक

चढने वाले सत्त्व, तुम्हें विश्राम नहीं

सामने पचेन्द्रियो से निर्मित ज्योतित गोपुर का मन्दिर

पीछे मन मे चमकने वाले कलश का केन्द्र है—मलेदेगुल

नरसिंहाचार्य, पु. ति.

नित्यनिरन्तर

अन्तरिक्षदा तॆरविन तॊरॆयलि
तॆरॆगळ सरियिसि सप्पुळ मरॆयिसि
महदाकारद भूमण्डलविदु
तूगिदॆ सागिदॆ नित्यनिरन्तरवु ।

सूर्यन सुत्तुव सवियाटदालि
कत्तलॆ बॆळकिन बॆरॆयद बेटदलि
बैगु बॆळगुगळनॆडॆयॆडॆगळालि
चणचण कुणिसिदॆ नित्यनिरन्तरवु ।

एनदु बण्णद बॆरगिन मायॆ !
नेसरनॆडॆ तॆरॆ तॆरळुव हॊरळुव
समयदि मुगिललि साविर किरणद
सॊबगदु सॊम्मिदॆ नित्यानिरन्तरवु ।

बिसिलॆराटकॆ नॆरॆकायुत जल-
राशियु मेलॆरुत सुरिसुरियलु
नेहद मळॆयनु तंपिन ताळियनु
हसुरिसुवुदु नॆल नित्यनिरन्तरवु ।

नसुनसु हॆच्चुत बिदिगॆय चन्दिर
हुण्णिवॆ हॊगरालि जन, मन मुळुगिसि
सॊरगुत करगुत कत्तलॆ बॆळॆयिसॆ
सागिदॆ सस्कृति नित्यनिरन्तरवु ।

नित्यनिरन्तर

अन्तरिक्ष के शून्य के प्रवाह में
लहरो को चीर ध्वनि को छिपा
यह महदाकार भूमण्डल
घूमता-झूमता चला है नित्यनिरन्तर।

घूमते सूर्य की सुखद क्रीड़ा में
तम और प्रकाश के अमिल आखेट में
रात्रि-दिवस के चरण-चरण में
नचाता है सबको प्रति क्षण नित्यनिरन्तर।

यह क्या रंगो की अद्भुत माया
सूय के चारो ओर घूमती
पृथ्वी में, आकाश में, सहस्रो रश्मियों में
उमड़ा कैसा सौन्दर्य ! नित्यनिरन्तर।

धूप की प्रखर तपन से जल-राशि
भाप बन ऊपर जा बरसती है
स्नेह की वर्षा और शीतल पवन से
धरती होती हरियाली नित्यनिरन्तर।

धीमे-धीमे बढ़ दूज का चाँद
पूर्णिमा पर मुदित करता जन-मन को
दुखित हो क्षीण होना जब
बढ़ाता तिमिर चलता नित्यनिरन्तर।

तिमिरवु तब्बिरॆ नॆलदगलवनु
मॆलदॆ बगॆयलि दिगिलनु बित्तुव
मीसल मोहिनि : तारॆय तिन्तिणि
कण्णनु तुम्बिदॆ नित्यनिरन्तरवु ।

बॆरॆतुवॆ मै-मन, जननकॆ सूचन,
अळुदनि कॆळितु तॊट्टिलु तूगितु
जन्मद यात्रॆगॆ हॊस पथिकनु बरॆ
बदुकिदु नडॆदिदॆ नित्यनिरन्तरवु ।

आसॆय सॆळॆतकॆ जीवगळॊलियुत
ऎननो बयसिरॆ ऎनो फलिसिरॆ
नोयुत बेयुत साविन बळि बरॆ
मुगियुवुदॆल्लवु नित्यनिरन्तरवु ।

सत्वव मुसुकुत सौख्यव हिसुकुत
नॆरॊदिरॆ असुररु रिगणगुणियुत
सुरलोकद सिरि तिरॆयलि बरिसुव
कनसिग जनिसुव नित्यनिरन्तरवु ।

ऎन्दिन सत्यवु इन्दिगॆ काम्बॊलु
तन्नदॆ सूत्रदि ताने नडॆयिप
माटकनवनिरॆ नोटक नानिरॆ
नाटक नडॆदिदॆ नित्यनिरन्तरवु ।

मुगळि, रं. श्री.

कालिमा है सब दिशाओ में व्याप्त
बोती आती है मानो भय को
अब तो मोहिनी-सी चमक तारों की
भरी है नयनो में नित्यनिरन्तर।

मिलन शरीर और मन का बना सृजन का प्रतीक
रुदन की नन्ही-सी ध्वनि, हिला संग पालना
जीवन की यात्रा को चल पड़ा नया पथिक
चलता है जीवन नित्यनिरन्तर।

आशा के आकर्षण में जीवन से करते प्यार
आशा कुछ, प्राप्ति कुछ, यही व्यापार
दुखित मन तप्त पहुँच मृत्यु के समीप
होता सभी समाप्त नित्यनिरन्तर।

डाल सत्य पर पर्दा, करके सुख को नष्ट
एकत्रित हो घेरे में असुर नाचने पर
सुरलोक का सौंदर्य सम्मुख बरसने का
स्वप्न देखने वाला लेना है जन्म नित्यनिरन्तर।

नित्य का सत्य आज दीखने पर
अपने सूत्र को आप ही चलाने वाला
मायावी उसके तथा मेरे दर्शक होने पर
नाटक चलता है नित्यनिरन्तर।

मुगळि, रं. श्री.

प्रश्न

ऒन्दल्ल ऒन्दु दिन प्रतियॊब्बनू बरले बेकाद काडु
लक्षकॊब्बनो इब्बरो आगॊम्मे ईगॊम्मे काडॊळगे होगदे
तुळियुवरु गिडद मग्गुल बळसु जाडु ।
याव पापिगु बेड इन्थवर पाडु !
मण्डॆयॊळगे सुरुवु पंजु बेळकिन केळि
गाजिनगाडियॊळगे जोडि गूळि !
तमटॆ मद्दलॆ तुडित इरुळ नेराळिन कुणित लक्ष रावणरिरुव यक्षगान
ऎलॆय सुप्पात्तिगॆय जेनु नोविन नरळु इरुळद्द बिदिर सिळ्ळु
मस्तियॆरिदे कणो दॊम्बराळिगॆ—पूर कुडिदु बन्दिद्दानॆ हाळॆकॊण्ड हण्डॆकळ्ळु
साकु माराय ई रस्तॆ सहवास—हॆज्जॆ हॆज्जॆगु चुच्चि नगुव गॊब्बळि मुळ्ळु
याव पापिगु बेड इन्थवर पाडु !

नूरकॊब्बन पालिगिदु ऒगटु काडल्ल हुट्टसाविन गुट्ट हुदुगिद्द माळिगॆ
मॊदल पब्लिक् परिक्षॆयिदु इन्थवर पालिगॆ
पाठवागिदे अमर—पॊदॆ बळ्ळि गिड मर—यस्यज्ञानद
मातु आडिदरॆ साकु इडिगट बिच्चुवुदु तॆळु नालगॆ
काडकप्पॆद्दिवर गबक्कनॆ गबाळिसिदाग ननगॆ अनिसिदॆ ऒळगॆ
खुद्दागि नायकनॆ हॊरटु निन्तिद्दानॆ ई हॊत्तु दाळिगॆ
शिलुबॆकॆम्पिन तट्टॆ तरुतानॆ बाळिगॆ
काडिनाचॆगॆ दारि कायोण बारो दुण्डुमल्लिगॆ दण्डॆ नूरु तारो
सर्वज्ञ बन्दाग हाकोण कॊराळिगॆ

प्रश्न

एक-न-एक दिन प्रत्येक को इस कानन में आना ही है
लाखो में एक-आध यदा-कदा वन में न जाकर पौधे के समीप घुमाव चलते हैं
किसी पापी को नही चाहिए ऐसे लोगो की स्थिति ।
सिर में चैले की प्रकाश की क्रीड़ा
शीशे की दुकान में सॉडो की जोड़ी ।
तासे-तबलो की ध्वनि, रात्रि की छाया का नाच, लक्ष रावणो का यक्ष-गान
पत्तो की सेज पर मधुमक्खी की पीड़ा, रात्रि-भर बॉस की सीटी
मस्ती चटी है डोम को—आकंठ पी आया है मटका भर तेज शराब
बस महाराज, इस पथ की मित्रता—पग-पग पर चुभकर हॅसने वाला तीखा कॉटा,
किसी पापी को नहीं चाहिए ऐसे लोगो की स्थिति ।

सैकड़ो में केवल एक के भाग में यह अबूझ बन नहीं यह तो जन्म-मरण का रहस्य-स्थान ।
पहली पब्लिक परीक्षा ऐसे लोगो के भाग्य में
कंठस्थ है अमर—झाड़ी, लता, पौधा, पेड, यस्यज्ञान की बात कहे तो बस खुल जाती लम्बी तीखी जबान ।
घनान्धकार उठकर इन्हें निगल जाने पर मुझे ऐसे होता आभास :
खुद नायक ही चला है आज धावे पर
रक्तिम सूली को लाता है जीवन के लिए ।
बन से बाहर प्रतीक्षा करे चलो मोतिये के सौ हार लाओ, सर्वज्ञ के आने पर डालेंगे उनके गले में

And the time is short but the waiting long. .

कायुवुदिदे नोडु बलु गोळु केलस
ऎद्दवळे मुखकिष्टु नॆन्नॆ तण्णीरॆरचि
होरटिद्दु कण्डेया हाळु कस मुसुरे केलस
मुन्दे मै चाचि मलगिद्द नॆरळॆद्दु कुळितु सुस्तागि बॆन्निन मेलॆ
मलगुतिदॆ बारो मनॆगॆ

सरियागिदानॆ आसामि ई मूढ जनकॆ· ·
बीदि दासय्य नुडिदुदु वेद—इवर तलॆ चिगुरदोनकॆ!
चॆन्नागॆ कैकोट्टनल्लवॆ मेसय्य
ऒप्पिको दासय्य ·
जन रेगुतिद्दारॆ—जीव सहित बिडरो नन्न नी बरदिद्दरॆ
हावु डामर तलॆय मणियागि बारो बा दोरॆ ····

अदो बन्तु मेरवणिगॆ केळु नन्दीकोलु झनक झल्लु
अलगु मोनॆ सिळ्ळु पोलीसू विसलु
नोडल्लि मोटारु बैसिकल्लिन मेलॆ बन्द समवस्त्रधारि
इन्नेनु बन्तु जम्बूसवारि!

ऎनिदॆन्थह मोस··
नावु नॆरॆदिद्दु चक्रवर्ति बरुतानॆन्दु, बन्दिद्दु बीदिदास
जोलु मुखदल्लि बॆरॆदिदॆ सोलु वारवॆ आयूतेनो इव कण्डु त्रास
ई दिगम्बर चक्रवर्तिगिल्लवॆ मैय मेलॆ परिवॆ?
उद्दु बन्दिद्दानॆ प्रश्नॆगळ अरिवॆ··

And the time is short but the waiting long ..

है प्रतीक्षा कष्टदायिनी अति

उठते ही मुँह पर बासी पानी के छीटे दे चली करने क्षुद्र काम

आगे शरीर फैलाकर सोई छाया, उठ-बैठ फिर अलस भाव से पीठ के बल
सो रही, आओ घर

उचित है आसामी इस मूढ़ जनता के लिए

रास्ते के भगत का वाक्य वेद, इनकी बुद्धि मूसल बोने के समान

खूब दिया धोखा मसीह

मान जाओ भगत...

लोग क्रोधित हैं। प्राण सहित मुझे न छोड़ेंगे यदि तुम न आओगे

साँप की शीश मणि हो आ राजा...

वह आया जलूस सुनो नन्दीकोल की झंकार

पुलिस की 'विसल' लोहे की धार से भी तीखी

उधर देखो मोटर बाईसिकल ! आया वर्दीधारी

अब क्या आई सवारी !

यह कैसा धोखा

हम एकत्रित हुए थे चक्रवर्ती आएगा सोच; आया पथ का भगत

लटके झुर्रीदार मुँह पर लिखी है हार मानो हफ्तो बीते हो बिन देखे एक ग्रास

इस दिगम्बर चक्रवर्ती के पास चेतना नहीं क्या ?

पहन आया है प्रश्नो का बाना ..

हलवरिगॆ इदु कप्पु काडल्लु हसिरु लालबागु
प्यांटु जोबिगॆ कैय तुरुकि बरुवरु इवरु, बायि कुरुकुवुदु सिनिमा हाडु
प्यांटुट्ट मोडगळु—बन्द हागॆ होरगॆ तेलुववु तॆळ्ळगॆ—
ओ इवरदॆन्थ मोजु ?
इवर कालिगॆ सिक्कि कॆडवलॆ इल्लवे दारिदारद गंटु गोजु ?
ओ इवरदॆन्थ मोजु !

किटकि गाजिगॆ मुखवनॊत्ति निन्तिह हुडुगि
अळुतलिरुवळु अदो हदिनारॆरॆदॆनोवनॊत्ति
किटकियाचॆगॆ काडु बॆक्कागि कादिदॆ—
जोकॆ बन्दीतु बाळि मनॆय मुन्दिन कम्ब हत्ति ।

रामचन्द्र शर्मा

कुछेक के लिए यह घना वन नहीं हरा-लाल बाग
पैण्ट की जेब में हाथ डाल आने वाले इनके ओटो में सिनेमा के गाने
पैण्टो के ये बादल—जैसे आते हैं वैसे बह जाते हैं हल्के में—
ओह इनकी कैसी मौज
इनके पाँवो को उलझाने को गिराये नही रास्ते में धागे ?
ओह इनकी कैसी मौज

खिड़की के शीशे पर मुँह टिका खडी लड़की
रो रही है, वह देखो, सोलहवें वर्ष के दर्द को छाती में छिपा ।
खिडकी के पार बन, बिल्ली बन ताक में लगा है—
सावधान आ न जाये पास घर के सामने का खम्भा चढ ।

रामचन्द्र शर्मा

नवोदय

ओ ! तरुण ऍद्देळु !
निन्न मोरॅयल्लि हुम्मस्सिदॆ;
निन्न कण्णिनल्लि असाधारण तेजस्सिदॆ ।
निन्न हणॆयल्लि भव्यतॆयिदॆ;
गद्दद कुणियल्लि दिव्यतॆयिदॆ ।
तुटिय तुदियल्लि आवेशविदॆ;
निडिदोळ्गळल्लि नवखण्डवन्नॆ तूगुव बलविदॆ ।
अडियल्लि बिडुगडॆयिदॆ :
ओ ! तरुण ! ऍद्देळु !
निन्न राज्यवाळु !

सर्वमयविदु निन्न सॊत्तु :
सर्वरिगॆ नीनु अडियाळु ।
ऍल्लरॆदॆय हॊंगनस नीनु;
ऍल्लु स्वर्णस्वप्नद राजबीज नीनु ।
मन्वन्तरवु बरलिदॆ :
ई युगद धन्वन्तरियागु !
सत्ययुगवु बरलिदॆ :
पारुपत्यगारनागु !
धनुर्धर पार्थनागु !
योगीश्वर कृष्णनागु !
एळु ! एळु ! एळु !

नवोदय

उठ रे तरुण !
विश्वास की कान्ति तेरे मुख पर;
नयनो में असाधारण तेज ।
ललाट पर भव्यता;
चिबुक पर दिव्यता ।
अधरो में आवेश;
शक्ति है इन दीर्घ भुजाओं में जो तोल ले नवखण्ड ।
उन्मुक्त है तेरे चरण :
उठ रे तरुण !
अपना राज्य कर !

सर्वमय है संपत्ति तेरी
सेवक है तू सबका ।
सबका नव स्वप्न तू;
बीज है तू सभी स्वर्णिम स्वप्नो का !
मन्वन्तर है आने वाला :
बन इस युग का धन्वन्तरि तू '
सत्ययुग अवतीर्ण हो रहा '
बन उसका संचालक तू !
धनुर्धर पार्थ बन !
योगेश्वर कृष्ण बन !
उठ ! उठ ! उठ !

फूँक शृंग ।
कर युद्ध घोषणा सभी अन्यायो के विरुद्ध ।
मूलोच्छेद कर दे सभी जाति-भेद ।
सनातन संकट,
विनूतन प्रवचना
परम्परा की असंख्य यातनाएँ
फेक दे उखाड ये समस्त !
हो प्रेम का विजय शत्रुता का ध्वंस ।
झाड-झंखाड का कर विनाश ।
बना दे राज मार्ग,
गगन में कर महलो का निर्माण,
छू ले आकाश,
कर दे धराशायी ये झोपड़ियाँ।
उतार भू पर ही आकाश !
बन नूतन जग का नव निर्माता !
नव राष्ट्र का बन हर्षवर्द्धक तू!
तेरी वाणी में हो गर्जन !
हो विद्युत् हाथो में,
उठ ! उठ ! उठ !

उठा, उठा अपने अभय कर ।
चक्रपाणि बन :
पृथ्वी मे, जल में,
वायु में, आकाश में,
जलधि के गर्भ में,
धरती के भीतर

ऎल्लॆडॆगॆ नडॆयलि निन्न यन्त्र !
कॊळिबरलि निन्न मन्त्र !
पूर्णजीवनद पथदल्लि मानवनु मुन्दुवरिदिह्वानॆ ।
अग्नियॆ ! अडुमनॆगॆ नडॆ !
वरुणनॆ ! ऒक्कलिगनागु !
कुबेरनॆ ! नाड बॊक्कसवागु !
इन्द्रनॆ ! कलाकेन्द्रनागु !
सरस्वतियॆ ! विद्यागुरुवागु !
बृहस्पतियॆ ! महाप्रधाननागु !
नडॆ ! नडॆ ! नडॆ !

एळु, धनुस्सन्नु सज्जुगॊळिसु !
ऒन्दु बाणक्कॆ अज्ञान,
इन्नॊन्दक्कॆ दुरभिमान;
ऒन्दु टंकारक्कॆ अहंकार,
इन्नॊन्दक्कॆ द्वेषद सार;
ऒन्दु झेंकारक्कॆ जन्मान्धतन,
इन्नॊन्दक्कॆ मन्दतन :
ऎल्लवु निर्नामवागि,
मानवन चित्त परिशुद्ध व्योमवागि
प्रज्वलिसुव परन्धामवागि—
रामचाप सीतॆयन्नु तन्दन्तॆ
गांडीविवु द्रौपदीयन्नु पडॆदन्तॆ
पूर्णजीवनद सुन्दरि बन्दु

नक्षत्र-मण्डल की सहस्रो वीथियो में
चले सभी ओर तुम्हारा यन्त्र !
गूँजे तेरा ही मन्त्र !
पूर्ण जीवन के पथ पर हुआ है अग्रसर मानव।
अग्नि ! गृह के भीतर आ !
वरुण ! कृषक बन !
कुबेर ! देश का कोष बन !
इन्द्र ! कला केन्द्र बन !
सरस्वति ! स्वयं विद्यागुरु बन !
बृहस्पति ! महा प्रधान बन।
चल ! चल ! चल !

उठ, सजा अपना धनुष !
एक बाण हो अज्ञान के लिए,
दूसरा हो दुरभिमान के लिए;
एक टंकार हो अहंकार के लिए,
दूसरी द्वेष के लिए;
एक झंकार हो अंधविश्वास के लिए,
दूसरी जड़ता के लिए;
इन सबका विध्वस हो
मानव का चित्त परिशुद्ध व्योम
प्रज्वलित परंधाम बन—
ज्यों राम चाप से आई सीता
गांडीव से प्राप्त हुई द्रौपदी
पूर्ण जीवन की सुन्दरी

माले हाकि गौरविसुवळु
स्वयवरिसुवळु !
एळु धनुस्सन्नु सज्जुगोळिसु !

नूतन युगद त्रिविक्रमने !
मर्त्य-व्योम पाताळगळन्नु व्यापिसि निल्लु !
मनुकुलद महेन्द्रने !
इन्द्रचापगळिन्द भू-व्योमगळिगॆ सेतुवॆ कट्टु ।
पंचप्राणवाद प्राणदेवरे
अशोकवनदल्लिय मातेयन्नु नाडिगे तोरिसु !
संजीवनियन्नाय्दु ता
ओ नन्न नाड पुत्थळिये !
नन्न ताय कण्गोम्बेये !
मानव जातिगे बिट्ट देवहूवे !
नीने युगपुरुष,
नीने बरलिरुव अवतार;
नीने अपौरुषेय पौरुष :
नीनल्लदे अन्यरिगॆ चैत्यसुन्दरियॊलियुवळे ?
एळु ! एळु ! एळु !

विनायक

डाल अजय माल गौरवान्वित करेगी
स्वयं वरेगी।
उठ सजा अपना धनुष।

नूतन युग के त्रिविक्रम!
मर्त्य व्योम पाताल मे व्याप्त हो।
मनु-कुल के महेन्द्र।
इन्द्र-चापो से बाँध भू-व्योम का सेतु।
पंचप्राण के प्राण देव।
अशोक वन की माता को देश ले आ!
संजीवनी को बीन ला।
ओ मेरे देश के पुतले!
मेरी माँ की आँखो के तारे!
मानव जाति के लिए विकसित देव फूल!
तू ही युग पुरुष,
तू ही आगामी अवतार,
तू ही अपौरुषेय पौरुषः
तेरे अतिरिक्त चेतना सुन्दरी अन्य को वरेगी?
उठ! उठ! उठ!

विनायक

कश्मीरी

चयन · गुलाम हुसैन बेग 'आरिफ़'

अनुवाद : प्रेमनाथ दर

कवि-नाम	कविता
अब्दुल रहमान राही	*ग़ज़ल*
ज़िन्दा कौल मास्टरजी	*मिलाप*
नूर मोहम्मद रौशन	*प्रीत*
दीनानाथ वली 'अलमस्त'	*निर्धन लड़की के उलाहने*
पीताम्बरनाथ दर 'फानी'	*गडरिया*
महिउद्दीन नवाज़ रतनपुरी	*हुशियार भी उससे बेख़बर*
मिर्ज़ा आरिफ़	*ग़ज़ल*
रसा जाविदानी अब्दुल कदूस	*ग़ज़ल*
शमसुद्दीन काफ़ूर	*नींद का माता इतना क्या*
श्यामलाल दर 'बहार'	*सिंघाड़े वाली*

गज़ल

मुदा हुस्नुक छु लोलस गोछ़ दोहई नोत्र इज्तिराब आसुन
निदा अश्कुन छु वोन्यि हुस्नस ति पज़िहे बेहिजाब आसुन

युथुई कलवालि वोन दस्तूर मयखानुक छु बदलावुन
समिथ मस्तानु वंथि वोन्यि आम गोछ जामो शराब आसुन

छि मंज़िल शोकु यिथ कदमन दिवान मीठि पानु राहगीरन
इरादन पज़ि थजर छारून वोभेदन गछ़ि शबाब आसुन

जमानन रांचु हुन्द गटकार डीशिन वोन संगरमालन
यि मा गव जान यथ अन्यिरस ति गोछ़ वोन्यि आफताब आसुन

छु गोमत तोल्यि मुकरर जिन्दगी हुन्द रंग बदलावुन
वोन्यि गव दंसलाबु दंसलाबस छु लाज़िम इन्कलाब आसुन

छु बदलय बुथ करिथ फरहाद आमुत प्रिछनि परवेजस
मे वनतम म्यानि तथ मेहनचु ति मा गोछ़ काहं हिसाब आसुन

गजल राछि राछि सोखन बावुन छु शोरस नार मिलनावुन
नज़र गछ़ि बेपनाह आसुनि दिलस गछ़ि पेचोताब आसुन

अब्दुल रहमान राही

ग़ज़ल

रूप के मन में यही कांक्षा कि प्रतिदिन हो प्रीत को इक नई बेचैनी
और प्रीत की यही पुकार कि अब रूप को हो जाना चाहिये अनावृत

जिस क्षण साकी ने यह कहा कि अब मधुशाला की रीति बदलनी है
मस्ताने सब एक हुए और यह प्रस्ताव किया कि मिल जाए सब को मदिरा
और पीने को जाम

अब मंजिल का यह उत्साह कि आ जाता स्वयं ही पथिक के चरण चूमता
चाहिये अब उद्देश्यो को नये शिखर खोजने और आशाओ को नया यौवन

समय ने रात का यह अंधकार जब देखा तो उसने प्रातः की पहिली किरण
से यू कहा
तनिक देखो नही अच्छा कि आ जाए अब इस अंधकार में स्वय दिनकर

बहुत पहिले हुई थी रीति निश्चित यह कि जीवन के बदलते जाएंगे रंग
यह आरम्भ हो गया अब, इस आरम्भ से अवश्य आना चाहिये इन्कलाब

इक नये अंदाज से अब फरहाद आया है यह पूछने इस परवेज से
मुझे कह दो कि मेरी उस मिहनत का कोई हिसाब होना चाहिये कि नहीं

ग़जल को निखारते भाव बतलाना है मानो आग शोरे में लगा देना
कि होनी चाहिये दृष्टि असीम और मन मे चाहिये बेचैनी

अबदुल रहमान राही

म्युल

पानय मे पान हॉविथ आशाय धारनॉविथ
तनहा चोलुख़ मे त्रॉविथ कस म्यानि ज़ूगिरायो

वुछनोवथस मनुक मल सोन म्योन द्राव सरतल
वुछमख न वारृ कोरथम चस म्यानि ज़ूगिरायो

ह्यकखे वुछिन चु तिम छोख़ मुचरित यि सीनृ हावय
चुई वन चे रोस बावई कस म्यानि ज़ूगिरायो

यवृ किनि बे सोम छे कोमल हृदयस कठोर वॉनी
ग्रावन दिमव यती छ्यन बस म्यानि ज़ूगिरायो

लोबमखत वोन्यि मे रोवुम बालन कोहन मे छोवुम
सत्संगृ प्यालृ चोवुम मस म्यानि ज़ूगिरायो

भगवान सोन बूजिन असि चॉनि आश रूजिन
हथ वॉसि माजि मॉलिस लस म्यानि ज़ूगिरायो

न्यत इष्ट दीवृ सुन्दयन पम्पोष पादनईतल
बोम्बुर बनिथ च्यवान गछ़ मस म्यानि ज़ूगिरायो

दयृ सुन्द प्रसाद सतज़न भगतन छि बागरावान
लोलुक च्यवुन त चावुन मस म्यानि ज़ूगिरायो

ज़िन्दा कौल मास्टरजी

मिलाप

तुमने अपनी झलक दिखाई और मेरी जागी आशाएं
फिर तुम मुझको छोड चले अकेले कौन मेरी सुध ले, मेरे योगीराज

तुमने मुझको मेरे मन की मैल दिखाई और मै जिसे समझा था कंचन निकला
वह पीतल
रहे अधूरे दर्शन तेरे बस छेड़ चले, तुम योगीराज

वह घाव अगर तुम देख सको मै उर को खोल दिखाऊ
तू ही कह दे कह दूं किसको तुझ बिन मन की बात, मेरे योगीराज

इस कारण कि कोमल होते हुए भी ह्रदय की निकलती है वाणी कठोर असीम
बस उलाहनो को यही हम काट दें, हे मेरे योगीराज

मैने तुझे पाया था, फिर खोया, और पर्वत पर्वत मारा मारा फिरा
संत संग रूपी प्यालो में मदिरा पी ली, मेरे योगीराज

भगवान विनती सुन ले मेरी तेरी रखे आश
जी ले तू शतवर्ष अपने माता पिता ही के लिये सही, मेरे योगीराज

नित इष्ट देव के चरण कमलो के नीचे
रस पीता जा भंवरा बन के, मेरे योगीराज

सत्‌जन बांटते हैं भक्तो में यह दैव का प्रसाद
यही पीना पिलाना प्रेम का, मेरे योगीराज

ज़िन्दा कौल मास्टरजी

अश्क

हुस्नुक शौदा अश्क: तोत छुस
सीनन सजवुन नार: सोत छुस
या मंजलूना: नंजदुक मोत छुस

नंन्यि पाठि नेरुन वंन्यि दिन्यि लोलस म्योनुई कारा
सन्यि तय वोगन्यन दोह रात फेरुन म्योन बापारा
मंन्यि फल्यनुइ हुन्द ह्मयोन ह्मुन करुनुई म्योन व्यवहारा

अज़लई ओसुस नार: दज़ुवुन
सगलातन मंज़ आब: वुजवुन
या तूफान: वाव: ग्रज़ुवुन

सोखू सान रोजुन दोख दोद ललवुन अजताम ज़ाना
मोखू किन्य ओसस तेज त्योगल: ह्मू रोगरदाना
छोकूलद गाछि गोछि हुस्नचि येलि ज़ाहं गेइ कनवाना

रेह अदू दिचना म्यांनी पानन ?
ब्रेह अदू वंछना आनन फानन ?
वुज़मलू हिश सोई खंच असमानन

गटि हुन्दि पर्दय लटि लटि जोलिन प्यव प्रागाशा
छटि अकि पजरुक ज़न अज़लोवुन ग्रोन आकाशा
हटिकुई रथ दिथ ज़िन्दू रोज़नि किछ़ ज़िन्दू रुज़ आशा

मेति बुछ गाशा दिल डंजि ब्यूठुम
पानस नखू येलि दिलबर ब्यूठुम
रंज़विथ सुइ येलि ज़ांह कालि रुठुम

प्रीत

रूप पुजारी प्रीत लिये दहकती सी
उर में जो गहरी उतरे वह ऑच लिये धीमी सी
मानो आया हो नजद से स्वय उन्मत मजनू ही

मेरा काम है खुले बन्दो निकलना और प्रीत को खोजना
गहराइयो में ऊँचाइयो पै मेरा व्यापार मारे मारे फिरना
मेरा व्यवहार इन्ही अपने मोतियो का लेना देना

भाग्य से ही मै था एक जलता हुआ अनल
पथरीली धरती से मानो फूटा आता जल
गरज गरज के चलता हो तूफ़ानो में अनिल

सुख से रहना दुख को सहलाना अब तक कब जाना
दर्शन से ही लाल अगारा नही किसी की सुनता
घायल हो हो जब जब सुन्दरता की सुन ली गाथा

मेरी देह ने एक ज्वाला जलाई
फिर सहसा लपटें उठ आई
विद्युत सी वह आकाश तक चढ आई

क्रमशः जले पद तिमिर के और एक नया प्रकाश हुआ
सत्य के एक झोके से मानो आकाश प्रज्वलित हुआ
जीवित रहने के लिये अपना जीवन-रक्त दिया और जीती रही आशा

मैने भी फिर एक प्रकाश का अनुभव किया और हृदय को चैन मिला
जब मैने अपने प्रियतम को देखा
स्वीकार करके जब वह रूठ गया

क्यूढ कोता गोम हन्यि हन्यि बेड़ अद़् लई अनून्नावुन
ज़्यूठ अख़ सफरा प्योमना चालुन त बेई मनून्नावुन ?
म्यूठ यावुन प्योम यावनरायस नज़राऩ् थावुन

पननुई सर मे फरशा : कोरमस
अशि कुई मोक्ता हलमन बोरमम
खूनच्यव च्यून्यव नाला : जोरमस

जिगरिच वस तान्यि पाटि मस्तस मे फलिला मालि मालि
ही पोषन जन लोलकि कोकल कड़िमस हालि हालि
जोश म्यान वुछिथई गंयि अद़् हारस थन्यि ज़न गलि गलि

वालि वलि आयम यावन मंच हिश
यिन्द्रै प्यठची नच़वुनि प्रेच़ हिश
गच़ ज़न गोमुच आरय कंच हिश

मेति अद़् केरिमस लोलि मज ललविथ लोलूमत़् लाये
लई मे लोस्यम थलि थलि वुछि वुछि तस पोत छ़ाये
येलि वुछ वक्तन हुस्नुचि त़् अश्कुचि विज़मा आये

दिल़् की गुल फलि शालामारन
दोद़् की छुकि जन खोरि फव्वारन
बालव हेरि किन छिव लोग आरन

यारन म्यानि अद़् दोन कनूदूरन ग्राया मारून
बागव मंजि मंजि बाला दरि प्यठ छाला खारून
वनचे विगिने दिलूकिस साज़स तारा चारून

कुकिलन हूंज लय रंठ सेतारन
कन्द तै नाबद प्यव मंज शारन
हबूबुखोतूना खच दरबारन

कितना कठिन था मेरे लिये उसको धीरे धीरे फिर मनाना ?
मानो एक नई लम्बी यात्रा करना था उसको मनाना
अपना प्यारा यौवन उस यौवन के राजा को देना पडा नजराना

शीश को अपने आसन वना दिया
अश्रु के मोतियो से उसका ऑचल भरा
उसके गरेबां को अपने रक्त बिन्दुओ से जड़ दिया

मेरे उर की वसा बनी फुलैल जो कौशेय कुन्तल में मैने मल दी
'ही' पुष्प की मानो मैने प्रेम अलक टेढ़ी टेढी बना ली
जब उसने मेरा जोश निहारा हाड़ के मास में नवनीत सी पिघली

जल्दी जल्दी आई वह फिर यौवन-उन्मत्त सी
नाच नाच के मानो चरखे की अटेरन सी
निढाल सी और दयामयी सी

फिर मैने भी ले गोद में उसे गले लगाया
उसकी छाया देख देख मै कुम्हलाया
फिर जब समय ने देखा कि रूप प्रीत का शकुन आया

फिर मन के पुष्प खिले शालामारो में
छुटे फव्वारे दूध के बाग़ो में
पर्वत के उपर से नाले मचल आये

प्रियतम ने फिर दो झुमको को तनिक झुलाया
उपवन में से उछल उछल कर बारादरी पर चढ़ आया
बन की अप्सरा के हाथो दिल के साज का तार कसवाया

लय फिर सितार ने कोकिल से ली
कन्द मिसरी झरनो में घुल गई
हब्बा ख़ातून दरबारो मे गई

सोन्दरे वुछमस ललि हुन्दि अन्दरै छिस खत्तोखालय
बंति आस जोशै अरिने पोषन करिमस मालय
हुस्नुचि हारे यूसूफा जन वोलनस जालय

मालै तेहंजै वलनै आये
जूना : हिश येलि नेन्यि सोई द्राये
वंसि पेई सोरी अजलन्यि न्याये

खिन्द क्या ह्यच अद बालय पानय करने बाले
गिन्दने द्रायम हालि मैदानस मंज ज़न हाले
नागीरायस विह जन हाविन ह्येत हीमाले

फम्ब व्यछनोवुन ज़ोविजि तारे
यन्दरस गुं गुं कोर आछिदारे
नज़रा : करनम जन तोलि टारे

रिन्द मेति लोगुस तुजि पशमीना वोनान गोसस
टेन्डि पुचनाविथ कोसु गुलकारी करमस तोसस
चेश्मन हुन्द गाश डोलि ह्यथ गोसस अकिसुई बोसस

डाला : दिथ तमि व्यूह बदलोवुम
बालव प्येठि किन मोख तीम होवुम
क्रूच कोरे ज़न वोचि ह्यू थावुम

मेतिलोग पोहला जब ह्यथ गोसस दिचमस आगाह
कोहनी प्येठि में पलु नुई छाये हेचमस ज़ागाह
नयि नयि फीरिथ दर्दुचि नयि हुन्ज़ त्रावमस रागाह

उस सुन्दरी को मैने देखा तो लल्ला ही की जैसी मैने उसकी रूपरेखा देखी
मै भी फिर एक उत्साह मे आ गया और " अरिनि " पुष्प की मैने माला गूंथी
मानो यूसुफ ने घेरा उसको जो रूप की मैना थी

उसके गजरे जैसे मुझे घेरने लगे
जब वह चन्द्रमा सी प्रकट हुई
भाग्य के सारे झगडे वहीं मिट गये

बालापन मे उस बाला ने फिर क्या क्या खेल किये
चढ़ घोडे पर निकली मानो मैदान में चौगान खलने
नागराज को ही दिखा रही हो हीमाल पैतरे

उसने रुई कात कात मानो बारीक तार निकाले
चरखे में से गू गू करके गुडिया ने हो सुर निकाले
मेरी ओर फिर उसने देखा झुकी पलक से नज़र उठा के

फिर मै भी मस्त होकर उसी के धागो से मानो पशमीना बुनने लगा
अपनी उंगलियो के पोर घिसा घिसा कर उसी के सूक्ष्म तोस में फूल
बुनने लगा
एक चुम्बन की भेट में अपनी आँख की ज्योति लेकर गया

मटक के उसने नये नये रंग निखारे
मानो चढ गई पर्वत पर्वत और वहीं से मुख के दर्शन कराये

मै भी फिर एक गडरिये की भाति उसके पास गया और उसे खबर दी
पहाड के पत्थर की ओट में मै भी चला गया और छिप कर उसे देखने लगा
हरी घाटियो में भटक भटक कर मैने भी अपनी बंसरी बजाई और एक
दुख का राग छेडा

नागाह तमि अदृ वचना होवुन
गामन गछि गाछि खाह मचुरोवुन
जन्नतृचि हूरे डूर कमनोवुन

मेति अदृ न्यन्द करि सोन वोपदोवुम ग्रीष्मस त हारस
दोन हून्दि गुमृ येलि डारस मज़ खति मोक्त अम्बारस
यामत येच कालि म्युल दोन गछिहे यारस त यारस

तामथ दोद ज़न हसदुक नारा
दोन मंज त्रावुन ननि तलवारा
गोसिब प्यठृ प्यव ज़न शहमारा

जागिरदारा गव ज़न नहवित बेरृ त बोन्ये
सूदृरि येलि जन रोनि दामानस नियितस चून्ये
ज़ुल्मृचि गटि सुति लोग ग्रोहना म्याने जूने

हाय हिश लजि जन संगरमाले
माघ ह्यू पोयोव मज़ रेतकाले
चोंग ज़न छ्यवरोव वावे हाले

सावेनि म्याने सोनृ ज्येक साज़स गई ना सरतल ?
श्रावृनि हीयि जन हन्यि हन्यि रोपतन्यि गईना अरतल ?
ज़ुल्मा डीशित जिगरस म्येनिस पेई ना करतल ?

रेह अद गंडनम ज़न लाशिनारस
पननुई पान अदृ खोरुम दारस
गट ज़ोल तुल मे तथ गटकारस

पलनुई सुति अद ठौल में करना प्रिछ फरहादस
शेख सनहस वन जाहं मा डोलसस पननिस वादस
नारस मंज़ येलि थाह लायिथ गोस यारस नादस

अकस्मात फिर उसने भी एक गीत शुरू किया
वह ग्राम ग्राम घूमी और खेत मचल उठे
मानो स्वयं स्वर्ग की अप्सरा (जन्नत की हूर) क्यारी को संवारने लगी हो

मैने भी फिर ग्रीष्म ऋतु और आषाढ में श्रम से खेत में से सोना उपजाया
खेत में से ही फिर दोनो के स्वेद के मोतियो के अम्बार लग गये
और ज्यो ही अब चिरकाल के पश्चात यार यार से मिलने लगा था

उसी समय ईर्ष्या की एक आग भड़क उठी
जिसने दो के बीच में एक नगी तलवार डाल दी
ईर्ष्या करने वाला दोनो पर काले नाग की भाँति झपटा

मानो एक जागीरदार खेत की मुँडेर तक मिटा के ले गया और पेड तक उखाड ले गया
जब मानो साहूकार ने उसके चमकते हुए आँचल से सितारे तक उतार दिये
उस समय अत्याचार के अधकार से मेरे चन्द्रमा को ग्रहण लग गया

प्रातः की पहली किरण पर मानो धुएँ के जाले चढ गये
ग्रीष्म ऋतु पर मानो माघ की शीत का अधिकार हो गया
मानो वायु के एक तेज झोके ने दीपक बुझा दिया

मेरी दुलहन के सोने के टीके को पीतल नही हो गया क्या ?
सावन के 'ही' पुष्प का रजत शरीर माँद न पडा क्या?
यह अत्याचार देख कर मेरे जिगर में एक कटार न चली क्या ?

चमक उठी फिर अग्नि मानो स्वय 'लश' लकड़ी से
मानो चढ़ाया अपना आप मैने सूली पे
खूब चलाई आधिया मैने स्वयं अधकारो में

फिर पाषाण से नही टकराया मै, जा फरहाद से पूछ ले
फिर क्या मै अपने प्रण से हटा जा शेख "सन्नाह" से पूछ ले
और जब मै आग की गहराइयो मे डुबकियाँ लगा कर प्रीतम को बुलाने गया

परि फुचि जल्मस लरि फ्यूर यावुन
वोलसन बेयि आव सोत तई सावुन
मेति ह्मोत हुस्नुक नूरा छावुन

पननुई जवदिथ ज़िन्दगी ज़ीन्यिम वोन्यि क्यथ रावे
योदवई रौशन ड्यक फुट रोविथ कांह ब्रोमरावे
अश्कस गई वोन्यि हुस्नूचि हॉकल छ़्यन कुस त्रावे

नूर मोहम्मद रोशन

थकथका के अत्याचार टूट गया और यौवन ने करवट ली
मेरा वसंत और मेरा सावन फिर से मचलने लगा
मैंने भी फिर रूप प्रकाश का रस लेना शुरू किया

अपनी जान देकर मैंने जीवन को पाया—अब कैसे खो जाएगा?
यदि कोई "रौशन" के माथे को तोड कर भी उसे भ्रम देना चाहे
प्रेम अब अटूट शृंखला में जुड़ गया अब इसे कौन तोड सकेगा?

नूर मोहम्मद रौशन

गरीब कोरि हुन्ज़् ग्राव्

चे़ द्युत्थम कथ क्युतुई खसुवुन यि यावुन—
मे यिथ ज़न्मै दयो क्या ओस भ्रावुन
यि ओसुई वक्त पननुई राव् रावुन
मे यिथ ज़न्मै....

चे़ फोलरोविथ सहरावस अन्दर गुल—
कोरुथ पोज कूत फोलरोविथ तगोफुल
न छुम सग येति न छुम सायस क्युतुई कुल—
न छुम कांह बागवान माज़ान न बुलबुल
गोडन्यि गछ़ि बुलबुलन येति माल हावुन
मे यिथ ज़न्मै ...

बु आमि खोत आसुहै चेई पादमलने—
गुलन ज़ालान छि येति मज़ नार् खलनुई
चढ़ावान पोष छी प्यठ कन्यि पलुनुई—
बहावान जोजारिथुई पत यारबलनुई
यिमन कुन्यि पोठि छु मन येति रज़ुनावुन
मे यिथ ज़न्मै ...

बनोविथ जून हिश वोन्यि क्या मे ग्रोवुम—
कमालस याम यावुन वातनोवुम
ख़्यालन वारिविक छेनरिथ मे पोवुम—
त नादारी हुन्दुई दाग़ ललनोवुम
सु यावुन क्या फिरे यथ दाग़ ललवुन
मे यिथ ज़न्मै ..

निर्धन लड़की के उलाहने

यह रूप, यह उठता हुआ यौवन, किस कारण दिया था तुमने मुझको—
हे देव लेना क्या था मुझे जन्म लेने से ही
नष्ट करना था अपना समय मुझे जन्म देना
हे देव लेना क्या ··

मानो मरुस्थल में तुमने पुष्प खिला दिया—
पुष्प खिला दिया परन्तु उसे फिर भुला दिया
सिचाई कहां है और छाया तरु की ?—
न माली है कोई न बुलबुल कही है
यहॉ दिखाना पड़ता है पहले माल बुलबुल को
हे देव ····

इससे अच्छा यही था कि रखा होता मुझे अपने चरणो की सेवा के लिए—
यहा पुष्प अर्पित किये जा रहे है अग्नि-कुण्डो में
और चढाए जाते है पत्थर के टुकडो पर—
और जब कुम्हला जायँ बहाए जाते है बहती नदी में
इन्हें मन बहलाना है किसी प्रकार
हे देव ···

शशि सा मुझको बना दिया पर मुझे उससे मिला क्या—
और ज्यो ही मेरा यौवन निखर आया
मै ससुराल के विचार मे घुलने लगी—
और निर्धनता के दाग को सहलाने लगी
यह यौवन क्या दिलाया जिसमें हो दाग सहलाना
हे देव '

मे अमि ख्वोत थ्वजिहे चुई तारकन मंज—
ब वुछहा मोज जगतुक मारिकन मज
न ओसुम वारिव्युक न मालिन्युक तन्ज—
न ओसुम कुन युनुक न गछनुकुई संज
बिहिथ अछिनाट कर है जगतसूई कुन
मे यिथ ज़न्मै ···

मगर अन्यिथस चे बो संसारसूई मज—
में अमि ख्वोत त्रावहक कुन्यि नारसूई मज
पेयस बो डोठजन बहारसूई मंज—
छुनुम बेयि माजि मोल आजारसूई मज
वोन्यि ओसू यि म्यानि रंगू ईजाह तिमन छुन
में यिथ जन्मै दयो क्या

गोडन्यि मा म्यानि ज्यनू येति कांह ति ख्वोश गव—
वोशी वोश पेई त गोरि गरसई दुयुन प्यव
ब आसूस न्येचुव खसि ह्यक पूरि किन रव—
गयख गोड कूर नाव ह्यनसूई गलि ज्यव
वुजारि पनन्यि हुन्द आख नक्श ब्रोहं कुन
में यिथ जन्मै

जोखुक ज़न आसि लगिमूति दांदवानई-
पनुन सोख गोख राविथ आनू मानइ
हटिस दिथ कांटू सोम्बरुख वेरिम्याने-
दोम्बरि दोम्बरे त रचि रचि दानदानै
पतो येति काहं गोछुक मुजराई छुन
में यिथ जन्मै

इससे अच्छा यही कि रखा होता मुझे तारको में—
मै देखा करती लेती मौज इस जगत के झमेलो का
न मायका न ससुराल कोई झझट न रहता—
न आने का ही न जाने का जजाल रहता
मै अपनी वहीं बैठ जाती और जगत की ओर ऑख मिचकाती
हे देव ·

परन्तु खीच लाये तुम मुझे संसार मे—
यह अच्छा था जो फेका होता मुझे अग्नि में
बरसी वसत में मै ओले की भाति—
माता पिता को ऐसे ही डाला कष्ट मे
इनको देना था कष्ट मुझे साधन बना दिया
हे देव

मेरे जन्म से ही कोई खुश न हुआ—
आहे निकली चारो ओर से और घर उदासी में डूब गया
होती बेटा मै तो चढता रवि पूरब से उनका—
यह सुन कि अब लड़की है उनकी बँध गई घिग्घी
कि देखा चित्र इसमें अपने उजडने का
हे देव ·

जान जोखम में उन्होंने डाली फिर जुत गये है बैल से—
खो गया इक आन मे उनका सुख चैन
पेट अपना काट कर मेरे लिए करने लगे संचय—
दमडी दमड़ी का, रत्ती रत्ती का, दाने दाने का
परन्तु उनके इतना करने पर भी कोई तुष्ट न हुआ
हे देव

लोकुट आंसूमख बो ज़न गुलजार फोलवुन—
बडिथ बासेयसख ज़न नार ज़लवुन
लोकुट आंससख बो जन कनदूर अलबुन—
बड़िथ पेयिसख बो जन नोसूर ललवुन
सु लोकचार म्योन ओसुम हांजिबावुन
में यिथ ज़न्मै ·

गलान छस कोतसनाह गछि़ पारसल मे—
गंछिम न आसनी तिम नाअहलमे
दपान छस गंछि़न तिम अननी वद्ल में—
गलान छस कर गछ़यम मुश्किल यि हल मे
गोछुम न मोल कुन्यि मन्दछावनईयुन
मै यिथ जन्मै ····

नेचिव संन्जि विजि छि गोड नरि जेठरावान—
न याद इन्सानियत रोजान न भगवान
छि क्यथ क्यथ पांठि अपज़ुई शान हावान—
छि कमिरगू शिकारस फांसनावान
पतो छुक म्याने विज़ि फेरान मोतुन
में यिथ जन्मै ·

दयो कर पननि दस्तै चारू म्योनुई—
अनुख वोन्यि लालू वाल्यन आर म्योनुई
नतः यतरावि कुस येति कारम्योनुई—
छ ब्रोंठुई मांजि मोलुई खार म्योनुई
बिच्यारन गर तिछुक वोन्यि रेहन थावुन
में यिथ ज़न्मै ··

दीनानाथ वली 'अलमस्त'

जब मै छोटी थी उनको लगता था हूँ मै फुलवारी खिलती सी—
हुई बडी जब मै लगी जलती अग्नि सी
जब मै छोटी थी उनको लगता था हूँ मै कान में हिलती बाली सी—
हुई बड़ी जब मै लगी उर का नासूर सी
टल गया मेरा शैशव मानो बिजली की चमक-सी
हे देव····

घुलती हूँ मै चिन्ता से कहाँ भेजा जाये मेरा पारसल—
चिन्ता यह है कही वह न हो उजड्ड
मै कहती हूँ सताएँगे वे मुझे न जाने कैसे—
मैं घुलती हूँ कि यह मुश्किल मेरी कैसे हो जाए हल
मै घुलती हूँ पिता मेरा कही लज्जित न हो जाए
हे देव ·

ब्याहना अपना बेटा हो तो करेगे वह कर लम्बे—
न मानवता न भगवान का रहेगा उनको स्मरण
यह कैसे कैसे झूठी ही शान दिखाते—
यह कैसी कैसी चालो से शिकारो को फँसाते
परन्तु मेरी बारी आती जब मुर्दनी सी छा जाती
हे देव ·

हे दैव अपने हाथ से मेरे लिए कोई रास्ता निकाल—
बेटे वाले के हृदय मे मेरे लिए दया उत्पन्न कर
नहीं तो यह मेरा बोझ कान उठाएगा—
मेरे माता पिता पहले से ही अपमानित है
असहायो को अपना घर भी अब रहन रखना है
हे देव··

दीनानाथ वली 'अलमस्त'

गबि राछ

गबि राछा न्यूर कुन द्रावै—गबि राछा द्रावै न्यूर
लूर आलूवान न्यूर कुन द्रावै—गबि राछा द्रावै न्यूर

रवि रूदस दब ह्यनि द्रावै—खोचि मा जांह गगरायन
नटि मा गटि छटि त्रटि वावय—गबि राछा

खोत वुडरन सफरूनि चावय—दोरान जन पादर सूह
तापू क्राये कारून् आवय—गबि

कुनि रुदस मज ह्यनू आवय—कुनि डोठन ओनुनस न्यूर
कुनि वुडि वुडि गव विजिवावय—गबि

विजि वावय लायिनू आवय—वोल आबन यीरुन नाव
दकू खेई खेई ब्रकूवन आवय—गबि

कन्यि खम्बरयन तलकुन चावय—संभलावुन्यि पननुई दम
मरि मरि जन माजि नोव जावय—गबि

ब्रोहं गव पकान कमि चिकचावय—आसमा कुनि कमरस खम
दम खम छुस सफरूनि चावय—गबि

सदमन मंज तंग मा आवय—कदमन छस जोरवारी
लोकचारय सफरन द्रावै—गबि

अमि सफरनि तावू त चावय—अज़लई छिस वति हून्दि यार
जून तारक सिर्यं त वावय—गबि

ज़ून्यि वोनुनस मशालू हावय—गट पछनुई तारकन हूंज़
ज़ूनू पछनुई वत शोलनावई—गबि

गडरिया

चल पडा गडरिया दूब भरी घाटियो की ओर घुमाता हुआ अपनी लठिया को
चल पड़ा गडरिया दूब भरी घाटियो की ओर

निकला लडने कुश्ती वर्षा और कीचड़ के साथ, नही खाता भय
आँधी से अँधियारी से, विद्युत और तूफ़ान से—चल पड़ा गडरिया....

चढा पठारो पर यात्रा के लिए एक उत्साह लिये दौड़ता हुआ बबरशेर की भांति
पसीनो से तरबतर चिलचिलाती धूप में—चल पड़ा गडरिया...

घिर गया कहीं वर्षा मे, चकराया कही सिर इसका ओलो की मार मे
उडा लिया कही इसे पश्चिमी झक्कड़ ने—चल पडा गडरिया

गिर पडा औंधे मुंह पश्चिमी झक्कड में और जल इसे वहा ले गया
एक नौका की भॉति
हुआ घायल खा खा कर धचके, झटके—चल पडा गडरिया

जो छिपा नीचे चट्टानो के सॅभालने अपने आप को
मर मर के मानो कई बार जन्म लिया इसने—चल पड़ा गडरिया

बढता गया आगे ही आगे किस चाव से पडा नही बल इसकी कमर में
यात्रा के उत्साह में स्थिर है जा रहा—चल पड़ा गडरिया

तग नही हुआ आघातो से, इसके पग में बल है और तीव्र गति
क्योकि निकला है शैशव ही से सफ़र करने—चल पडा गडरिया....

यात्रा के इस उत्साह पर निछावर है इसके साथी आरम्भ से ही
यह सूर्य चांद तारे और यह वायु—चल पड़ा गडरिया

कहा यह शशि ने जलाऊँगा तेरे लिये मशाले तारो की अँधियारी रातो में
और प्रज्वलित करूँगा पथ तेरे लिए चॉदनी रातो में—चल पड़ा गडरिया....

"वति ज़ोलमख कमि तति तावय"—सिर्यन वोनुस करिज्यम न ग्राव
शीन्‌ वावय तन शह्लावय—गबि राछा द्रावै न्यूर

वावन वोनुस सफ़्रानितावय—यिन्‌ ग्रावख पकनुक दम
रुम्‌ रुमनूई गुम्‌ शह्लावई—गबि ·

खोर ननवोर करान आवई—कन्डि ज़ारन खून्‌ छिरकाव
सोन मर्गो केरन द्रावै—गबि ·

तीर फ़्रफ़्रवन हकवान आवै—खोत खम्ब्रयव ख्राशव किन्य
मीर शीकार जन नयि चावय—गबि ····

होल्‌ अमि सुन्दि कुम्हलन आवय—शीन मान्यन लोल्‌ हन्दरेर
ड्यक बालन मुचरन आवय—गबि राछा द्रावै न्यूर

पां चादर्‌ वोनान आवय—पान्‌ अजलुक कारीगर
न्यथननि सुन्द ओस आव आवई—गबि ····

जायज़ाये वथरन आवै—सब्ज़ारुक फ़र्शि मखमल
दूर्यि थोकमुत मेहमान आवै—गबि ··

शोक्‌ अमि सुन्दि लारान आवै—पांचालई आर्‌ ग्रज़वुन
दज्‌ दज्‌ छुस सफ़्रनि तावय—गबि ···

तीर छावल छावृजि गावय—जंगलस मज़ व्यस तै यार
दोह यिमनूई मज़ भरान आवै—गबि राछा ····

कहा यह रवि ने न देना उलाहना मुझे कि जलाया तुझे मैंने पथ पर
कड़कती धूप से
(विश्वास रखो) पहुँचाऊँगा ठडक (दूब भरी घाटियो में) हिम की शीतल
वायु से तेरे शरीर को—चल पड़ा गडरिया ····

कहा यह वायु ने सफर के ताप में हारना नहीं दम, करूँगी ठंडा तेरे रोम
रोम के पसीने को—चल पड़ा गडरिया ··

आया गडरिया नंगे पैर करता छिडकाव पैरो के रक्त का शूल भरी झाड़ियो में से
सोनामर्ग केरन और द्रावा की घाटियो में से—चल पड़ा गडरिया ···

आया हाँकता हुआ हाँफती हुई भेड़ो और बकरियो को तीखी चट्टानो पर से
टीलो पर से, और हुआ प्रवेश इसका एक मीर शिकारी की भांति दूब
भरी घाटी में—चल पड़ा ····

लगी पिघलने जमी हुई प्रीत हिम-खंडो की इसी के प्रेम में
और खिल उठा माथा पर्वतो और पहाडो का—चल पड़ा गडरिया ····

आया स्वय भाग्य का शिल्पी मानो बुनता हुआ चादरे प्रपात की
क्योकि सूचना थी आने की नंग धड़ग गडरिये की—चल पड़ा गडरिया ····

बिछ गया फर्श मखमल का स्थान स्थान पर हरियाली का क्योकि आया है दूर से
अतिथि एक थका हारा—चल पड़ा गडरिया · ·

आई नदी भी इसी के अनुराग से गरजती हुई उछलती हुई
पांचाल पर्वत के हिम शिखरो से परन्तु जल रही देह इसकी
थकान से—चल पड़ा ····

बन में इसके मीत इसकी सखियाँ यही भेडे यही बकरियाँ यही गाये
बिताता रहता दिन साथ इनही के—चल पड़ा गडरिया ····

बाल थंगुनुड़ प्यठ ब्यहनि द्रावय वाजखाना अशुकि ज़न
राज़ अज़लुनि बावान आवै—गावि रोछा ·

नयि अभिसुन्ज़ि वन लयि आवै, कन दारि दारि यारि दिवदारि
रायिलन नोव यावुन आवै—गावि

लूर गिलवान ख्योल ह्यथ द्रावै—वैसंगरन प्यठ बोड़ सालार
मद बालन वालान आवै—गावि रोछा · · ·

बरु छावुजि वुछि वुछि आवय रामु होन्यन त सुहन पोन्य
तिहिन्दि अजनई वन लरज़्यावै—गावि · ·

ब्यूठ ज़ालि ज़ालि कंग त अलावई—मोलि सिन्द पाठि ज़न शुर्यन रोछि
हापतन सुति दब ह्यनि द्रावै—गावि

बेफिक्रन आराम आवै—तीर मस्तोयि नीरस मंज़
गावि रोछस गरु याद आवै—गावि · ·

सोन्तु फुलये दर्द नयि द्रावय—हर्द कालय वापस आव
गर वातिथ माजि नोव ज़ावै—गावि

फानी ति मंज़ नयि आयावै—साजि दर्दुक बोज़नि सोज़
नयि कमिसुंजि यूत लयि आवै—गावि

पीताम्बर नाथ दर फानी

बैठ गया चोटी पर जैसे एक वाइज़ (उपदेशक) जो उतरा हो सातवें आकाश से
और मानो बना रहा हो भेद भाग्य के—चल पड़ा गडरिया''

झूम उठा वन सारा इसकी मुरली की तान से और सुन रहे हैं कान देकर
यह चीड और यह देवदार मानो एक नया यौवन आया हो पेडो में—
चल पड़ा गडरिया''

चढ़ा सेनापति टीलो पर मानो सेना लेकर अपने रेवड़ की घुमाता हुआ
अपनी लठिया को
और तोडता हुआ गौरव पर्वत का—चल पड़ा गडरिया'

मुँह में पानी भर आया भेड़ियो और चीतो के देख कर भेड बकरियो को
उनकी गरज से सारा बन काँप उठा—चल पडा गडरिया

फिर बैठ गया गडरिया एक अलाव जलाकर रखवाली करता
एक पिता की भाँति अपने बच्चो की ओर से लड़ता रहा कुश्ती रीछो से—
—चल पडा गडरिया

जब आया चैन सा निश्चिन्तता सी और हुई मस्त दूब भरी घाटी मे
यह भेडे और बकरियाँ, आई याद गडरिये को अपने घर की—
—चल पडा गडरिया

चल पड़ा था प्रेम की घाटियो की ओर जब फूल खिल रहे थे वसंत में
और लौटा घर को अब पतझड में, पहुँचा घर जब मानो फिर से जन्म
लिया माँ की कोख से—चल पडा गडरिया''

आया कवि "फानी" भी प्रेम की घाटी में सुनने संगीत दर्द के साज का
आया लय में सुनकर तान किसी मुरली की—चल पड़ा गडरिया

पीताम्बर नाथ दर फानी

हुशियार तमि निशि बेख़बर

युस छौक सु दिलबर गोम दिथ—अफगार तमि निशि बेख़बर
युस कुफ्र तमि कोरनम कनन—जुन्नार तेमि निशि बेख़बर

अन्दर सदफ दुर्रे अदन—त्युथ छू मे कोता दरवदन
लाले बदख्शां हैरतन—शाहवार तमिनिशि बेख़बर

मय ख्यन त च्यन युस कोर में नोश—बाहोश रूज़िथ करतृ गोश
सहरस दितुम खसनै न बोश—इफ्त्यार तमि निशि बेख़बर

युस कोहितूरस नूर प्यव—पनन्यव अछिव तथ सूर गव
तथ मंज़ यि ओसुई रम्ज़ि नव—दीदार तमि निशि बेखबर

युस गुल मे फोलमुत वारिमज़—डलगेट दर्शन दारि मंज़
बुलबुल रलिथ वन हारिमज़—गुलज़ार तमि निशि बेख़बर

असवुन त गिन्दवुन दोदम्योन—हर रोज नोव मेशरान प्योन
युस ज़ख्म छुम मे दराजिगर—बीमार तमि निशि बेख़बर

नय आह नय ज़ांह कोर मेवाह—रातस दोहस मे हिशकथा
में लोल मरहम छुम दवा—बलगार तमि निशि बेखबर

छनृ ओलिमस मेनिस सो ज़्यव—वन हा बु गुदरुन नव ब नव
दपहक यियिव तोहि बूज़ितव—हुशियार तमि निशि बेख़बर

लालो जवाहिर प्यथवन्दस—छिम सोथि जेरिथिय हावकस
युस नफा थोवमुत छुम चन्दस—बापार तमि निशि बेख़बर

हुशियार भी उससे बेख़बर

उस प्रीतम ने जो घाव किया—स्वयं घाव भी उससे है बेखबर
जो कुफ्र उसने मेरे कानो में पढा—स्वयं यज्ञोपवीत भी उससे है बेखबर

अदन का मोती सीप में होता है—वैसे कई मोती मेरी अपनी देह में हैं
बदख्शां का लाल भी चकित है—परन्तु कानो का मोती स्वय उससे बेखबर

मै खाता रहा मै पीता रहा—सतर्क होकर तू सुन ले
सहर[1] के खाने को मैने कोई महत्व दिया नहीं—स्वयं इफ्तयार[2] भी उससे बेखबर

जो दूर पर्वत पर प्रकाश पड़ा—अपनी उसको नजर लगी और वो राख हुआ
उसी में एक नया भेद था—स्वयं दर्शन भी उससे बेखबर

जो पुष्प मेरी फुलवारी में खिला है—जो डलगेट के झरोखे से दीखती है
बुलबुल बन मैना के साथ मिला हुआ है—स्वयं फुलवारी भी उससे बेखबर

मेरा हँसता हुआ खेलता हुआ दर्द—नित नया है पुराना भूल जाता है
जो घाव मेरे जिगर में है—स्वयं बीमार भी उससे बेख़बर

न मैने कभी आह की न मैने कभी वाह किया—दिन रात मेरा एक जैसा है
प्रेम का मरहम मेरे लिये दवाई है—बलगार भी उससे है बेख़बर

मेरे पंडित की कहाँ वह भाषा—नही तो मै आपबीती नये नये ढंग से कह देता
उनसे मै कह देता कि आ जाओ और मेरी रामकहानी सुनो—
हुशियार भी उससे बेखबर

मेरे हर आभूषण में लाल और जवाहर जड़े हैं—परन्तु मै किसके
सामने इनका प्रदर्शन करू
जो लाभ मेरी अपनी जेब में सुरक्षित है—स्वय व्यापार उससे हैं बेखबर

---

१. रोज़ो मे प्रात का खाना २. रोजों में शाम का खाना

छुस पानि पानस बरमला—या छुस रहा या मुब्तला
इनकार दर काबू बला—यकरार तमि निशि बेख़बर

हस्ती यि म्यानी ज़ान्यि कुस—हैरान गछि अद् आसि युस
येमि ख़िरमनुक बो दान् छुस—अम्बार तमि निशि बेख़बर

हैरान करामन कातिबीनं[1]—हम अहले आलम अज़मईन
युस रम्ज़ ज़ानी महीदीन—अज़कार तमि निशि बेख़बर

महिउद्दीन नवाज़ रतनपुरी

---

१. इस्लामी विचार के अनुसार कर्मों का लेखा जोखा करनेवाले मानव के दो कंधों पर बैठे रहते हैं। उन्हीं को करामन कातिबीन कहते हैं।

मै जो कुछ हूँ अपने सामने प्रकट हूं—कभी स्वतंत्र हूं कभी ग्रसित
अस्वीकृत करने में आपत्ति का आवेश है—स्वयं स्वीकृती उससे बेखबर

मेरे अस्तित्व का मर्म कोई क्या जाने—कोई भी हो चकित हो जाएगा
जिस भडार का मै एक दाना हूँ—स्वयं भंडार उससे है बेख़बर

मेरे कर्मों का लेखा जोखा रखने वाले भी हैरान—सारा संसार हैरान
जिस मर्म का महिउद्दीन को ज्ञान है—नाम जपने में भी वह मर्म नही

महिउद्दीन नवाज़ रतनपुरी

ग़ज़ल

पहने रंग बिरंगे वस्त्र पुष्पों ने—मेरा वसंत आया वसंत आया
मन का चैन आया वह प्रियतम आया—मेरा वसंत आया वसंत आया

यह नरगिस या यास्मिन यह "विरिकिम"—रंग बिरंगे फूल खिले है
भर भर बादाम भी खिल आया—मेरा वसंत आया वसंत आया

यह पंछी कस्तूर बुलबुल से कह रहा—इस फुलवारी के प्रेमी बस हम दो
यह वायु किस के लिये ले जाता है संदेश—मेरा वसंत...

बुलबुल जब उड जाता फुलवारी की ओर—पाकर पथ में ही सुगध
वह शीश हिलाता
मानो उसको अनुभव होता कि यह संदेश किसी और के लिए—मेरा वसंत....

एक संसार प्रेम करता इस फुलवारी से—क्या कहें इस लाला को
जो दाग़ लिए है
क्या जाने मेरे पुष्पो को भी यही रोग लगा हो—मेरा वसंत आया

वह जो चलाता गुलेल उसका वैर माली से—यह जीवन का घोर संघर्ष
लो फूलो वाला भी पुष्प तोड़ तोड़ कर भर टोकरी ले कर निकल आया
—मेरा वसंत...

दीवारो में जहा कहीं हो दरार—वही नीड़ अपना बनाता बुलबुल
पडा रहता वहीं करता विश्राम—मेरा वसंत ...

मधुमक्खियां चकराती जातीं—छत्ता अपना बनाती मधु भंडार भरती
पर अत में मधु को है लुट जाना—मेरा वसंत आया....

मस्त यौवन के बालो में मानो फूल खिले हैं—यह शरीर ही फूल के रंग का है
इस पर सुम्बल पुष्प जैसे बाल क्या शोभा देते हैं—मेरा वसंत....

कुनुई छुम लागृ कत्यि कत्यि दिल—छु महशार हुस्नकुई मंजिल
क़यामत सुबहु तय शामै—बहार आमै

मशीदन मन्दरन दिथ बर—छु मय कलृवाल ह्यथ वरसर
मत्योमुत खास क्यो आमै—बहार आमै

पतृ प्रुछि ओरिफुन रिन्दन—गुलन तिपृनुई अन्दर गिन्दन
चन्दस बोतल अथस जामै—बहार आमै बहार आमै

मिर्ज़ा आरिफ

दिल है एक अपने पास लगाऊँ कहाँ कहाँ—-रूप की मंजिल एक, वह है प्रलय
प्रातः प्रलय सांझ प्रलय—मेरा वसंत आया

है मस्जिदो के मन्दिरो के द्वार बन्द हुए—इधर साकी सिर पर मदिरा लिए हुए
है खास है आम सभी टूट पडे हुए—मेरा वसंत आया ....

पता 'आरिफ' का फिर रिन्दो से ही पूछ ले—वह खेल रहा पुष्पो के
बीच उन्हीं से
लिये जेब में बोतल आर हाथ में प्याला—मेरा वसंत आया

मिर्ज़ा आरिफ

ग़ज़ल

बेयि फ्यूर सोंतुक वाव—बहार आव बहार आव
वोथ वोन्द्, स्यंज़र त्राव—वहार आव

लोग हुस्न बेयि अज मालू करनि हीयि त गुलाबन
अश्कस नोवुई चिकचाव—बहार आव

बादाम कुलयन नालि छ़निख खलुते नवरोज
परियन कोरुख पहराव—बहार आव

तन दास्लालो वारू अज़ बारानि बहारस
दोदमुत जिगर शेहलाव—बहार आव

कवू सनाह छु बुल बुल नालू दिवान पोशि चमनन मंज़
तिम रम्ज़ जान्या काव—बहार आव

कोर शानू मसवालि आयि त्राविथ ज़ुल्फे परेशान
गुल जाम चटिथ द्राव—बहार आव बहार आव

मंज़ गुलशनन कम मोचि अपेमुति गुल चे पेयि याद
मो शबनमो ओश त्राव—बहार आव

वन ऐ रसा क्या मांगि सु बाग़स त बहारस
यस हंगू ज़ोज़ुर च़ाव—बहार आव

रसा जाविदानी अब्दुल क़दूस

ग़ज़ल

फिर वसंत की वायु मुड आई—बहार आई बहार आई
उठ छोड़ यह जाडे की सुस्ती—बहार आई बहार आई

फिर रूप लगा गूँथने 'ही' पुष्पो और गुलाबो को गजरो में
प्रीत का यह नया उत्साह—बहार आई ' '

बादाम के पेडों को देख पहनाये गये नव वर्ष के मान में नये वस्त्र
मानो परियो को ही लिया सजा—बहार आई ' ' '

ऋतुराज की वर्षा को अपने तन पर ले लो ऐ लाला के फूल
कर लो ठंडा अपना हृदय और उसकी अग्नि—बहार आई ' '

यह बुलबुल किस कारण नाला करता फिरता फुलवारियो में
यह मर्म क्या जाने कौआ—बहार आई ' ' '

उस रूपसी ने कघी फेरी और आयी बाल बिखराये हुए
पुष्प ने अपने कपड़े फाडे—बहार आयी ' '

फुलवारियो की मिट्टी में जो मिल गये हैं पुष्प क्या तुझको उनकी आई याद
ओस तू ऑसू न बहा—बहार आई ' '

पर यह बता "रसा" क्या लेगा वह फुलवारी से या बहार से
जो सूख गया आरम्भ ही में—बहार आयी ' ' '

रसा जाविदानी अब्दुल क़ुद्दूस

न्यन्द्रे होतये यूत कोता

मस दिथ ग्रीसतिस ह्यस यूमुतये—न्यन्द्रे होतये यूत कोता
मेहनत करि करि मौय गोस छोतये—न्यन्द्रे

पुत्रतस वुछितस खम गोमुत्ये—श्रावुन्यिक्रायन न्यन्द्र् करान
न्यथ्र् नोन पान तस ताप दोदमुतये—न्यन्द्रे

रश्वत खारौ त्यूर ज़न न्योतये—पत्र् छिस लारान सोहूकार
वंडदारौ तस रथ च्योमुतये—न्यन्द्रे

ज़ालिम डीशित तम्ब्रल्योमुतये—ओलिम छिसकरान वाज़खानी
जहनम हावि हावि छिस करान गोत्ये—न्यन्द्रे

वुछ त्र् कमनाविथ छुस गछ़ान कोतये—हर्द छिस ख़िरमन लूट्र् निवान
पानस छुयि च्यवान टयठ चाय सोतये—न्यन्द्रे

मज़दूर वुछतन कोत गोमुतये—नफ्च्र् दादि फेरान कोचि बाज़ार
बौछि होत छुयि रव्यवान बत होतमुतये—न्यन्द्रे

नींद का माता इतना क्या

यह कृषक—बेसुध किया हो इसे मानो मदिरा पिला के—
नींद का माता इतना क्या
श्रम करते ही बीता जीवन हो गये बाल श्वेत—नीद का

सावन की कडकती धूप में झुक झुक धान के खेतो में—
देखो तो उसकी कमर दोहरी हुई है
बिन कपडो की यह काठी घाम ने ही जला डाली—नीद का…

मानो उतारी हो इसकी ऊन भेड ही की भांति इन घूसखोरो ने—
मानो भेड़ ही के पीछे दौड़ा आ रहा हो साहूकार
इसका रक्त भी चूस लिया है उन्होने जो लेते हैं इसे और इसके
धान को मोल जब धान अभी खेतो में फूटा ही न हो—नीद का…

अत्याचारी को देख देख घबराया सा—पंडित आकर इसे
पकडकर व्याख्यान सुनाते
नरक दिखाते प्राण सुखाते—नीद का…

देख कमाता कितना है पर जाने सब कहाँ जाता—लुट जाती
इसकी सम्पत्ति फसल खिलते ही
बस खाने भर को रह जाता है इसके घर में सत्तू और
बिन मीठे की चाय—नीद का….

देख यह श्रमिक कहाँ कहाँ पहुँचा है—इस पेट के मारे किन
गलियो बाजारो में मारा मारा फिरता है
भूख के मारे नही देखता खाता वह भात जो गला
पड़ा हो सडा हो—नीद का….

खर् सुन्दि पाठि छुस बोर खोत मुतये—अर् सर् केरि केरि छुन ह्यकान
सुति ओस खान् मोल कौछि रोछ मुतये—न्यन्द्रे

मेछु तस सुतिन वाद् कोरमुतये—ग्रूस त मजूर बनि आलीशान
तोतताम कोफूर फेरि कर पोतये ?—न्यन्द्रे

शमसुद्दीन काफूर

इसका जीवन बोझ चढा हो जैसे खर की ही पीठ पर—
नहीं समझ में आता मै करूॅ क्या नही कर पाता कुछ
था यह भी लाडला किसी की गोद में पला—नीद का....

इसको मैने वचन दिया है कि हो यह कृषक या हो श्रमिक—
इक दिन इसको होना बड़ा
तब तक मुड़ जाएगा पीछे कैसे कवि "काफ़ूर"—
नीद का माता इतना क्या ?

शमसुद्दीन काफ़ूर

गॉरि वाजेन्य

संद्र मज़ अज़ ताज़ अॅन्यिमय गॉरि माज़ूव गॉरि माज़ूव
च्यानि बापत राज अॅन्यिमय गॉरि माज़ूव गारि माज़ूव
वुछ मे कमि अन्दाज़ अॅन्यिमय गॉरि माज़ूव गॉरि माज़ूव
दिथ पनुन रथ माज़ अॅन्यिमय गॉरि माज़ूव गॉरि माज़ूव
गॉरि माज़ूव गॉरि माज़ूव गॉरि माज़ूव गॉरि मा

हारॖने तचि तापॖ क्राये गुलि दॅदिम वुठ हायि गॉम
प्रॉन्यि अरमान लोकचारॖकि यावनस मज़ जायि गॉम
यावनुक गुल फोलनॖ ब्रोठुई वावॖ हर्दनि जायि गाम
हाय तकदीरस खोदायन जाह ति मुचरिम तॉरि मा
गॉरि माज़ूव

ज़ोल दी दी हिलितॖ मगोलस मे पूयाव मा ज़हंड़
ख्यावि ख्यॉवि लूकन पननि यड क्युत मे ज़ूर्योवमा जहई
लान्यि अजलन्यि कानॖ फुटरिथ ख्योम शुर्यव मा जहॖई
यड बॅरिथ दोन कालॖनई ख्यनसॖई मे आयम वॉरि मा
गॉरि माज़ूव

लोक चारस नवबहारस थॅथरि नारस म्युल कोरुम
निश गयम पानस तॖ अॅश्कुई मोक्त दामानस जोरुम
वहि गमुत बख्ता ड्यकस प्यठ वॅहि तई वाय ह्यथ ज़ोरुम
सूर कोर मे लारि कर्ज़चि दूर गयि बेगॉरिमा
गॉरि माज़ूव

सिंघाड़े वाली

जल की गहराइयो से ताज़ा ताज़ा ले आई—लो सिंघाडे लो
लो मेरे राजा मै तेरे लिये लाई—लो सिघाडे लो
देख मै किस अदाज़ से लाई—लो सिघाडे लो
इसमें मैने रक्त बहाया अपना—लो सिघाडे लो

हाड़ की कडकती धूप में मेरे जल गये कर ओठ कुम्हलाये
और पुरानी कांक्षाएँ शैशव की यौवन में हो गई नष्ट
इस यौवन के पुष्प खिलने से पहले ही पतझड की वायु में मुरझाये
हाय भगवान ने कभी मेरे भाग्य पर से कुडी खोली नही
लो सिघाडे लो

झील के पानी में उसकी घास और काई मे नित खोजते खोजते
कब मुझे पेट भर मिला
औरो को खिला खिला के कब मुझे अपने पेट के लिये पूरा मिला
भाग्य की खान तोड कर कब मेरे बच्चो ने खाया
कब दो जून की रोटी खाने को मेरी बारी आई
लो सिघाडे लो

अपने शैशव को नई बहार को और दहकती आग को मैने एक किया
घुल गई मै आप और अपने ऑचल को मैने ऑसुओ के मोती जड दिये
मस्तक में मेरे हाय पडी, हाय हाय करते मैने सह ली
ऋण के पीछे ने मुझे राख किया ओर विन दामो का श्रम न टला
लो सिंघाडे लो

कद्र म्यान्यन मेहनतन हंन्ज़ ज़ानि कति सु द्यार् वोल
फाक् क्या गव जानि कव् सुई युस न जांह ऑमि नार् जोल
आर्स नूचि मस्ती छे बेपरवाह पकुन दिथ गोश त दोल
ज़ांह ति अज़ताम जर परस्त द्राव तावनूनि बाजॉरि मा
गॉरि माज़ूव गॉरि माज़ूव गॉरि माज़ूव गॉरि मा

श्यामलाल दर बहार

मेरे श्रम का मूल्य क्या जाने वह धनवान
भूखा रहना किसको कहते वह कब जाने जिसे क्षुधाग्नि ने न जलाया
वह अपनी संपत्ति की मस्ती में बिन ध्यान दिये चलता बेपरवाह
धन का यह उपासक कब पडा विपत्ति के बाजारो मे
लो सिंघाडे लो

श्यामलाल दर बहार

गु ज रा ती

चयन : गुजराती सलाहकार समिति

अनुवाद : रणधीर उपाध्याय

कवि-नाम	कविता
उमाशंकर जोशी	हेमन्त की धूप
दुर्गेश शुक्ल	मन से
नलिन रावल	एक स्वनामधारी वृद्ध से मिलते हुए
निरंजन भगत	फाउण्टेन बस-स्टाप पर
प्रियकान्त मणियार	चलते-चलते देखा
बालमुकुन्द दवे	पुराना घर खाली करते हुए
मनसुखलाल झवेरी	मृत्यु से
राजेन्द्र शाह	भूलेश्वर में एक रात
रामनारायण पाठक (स्व.)	साल मुबारक
सुन्दरम्—त्रिभुवनदास लुहार	पुष्प बनकर आऊँगा
सुन्दरजी बेटाई	पूरे पचास के पीछे
हरिश्चन्द्र भट्ट	राईनर मारिया रिल्के
हसमुख पाठक	चल हँसें इस वसन्त में

हेमन्तनो शेडकढो

हेमन्तनो शेडकढो तडको सवारनो
पीतां हतां पुष्प;
पीतां हतां घासतृणो
हीराकणी शां हिमचक्षुए मृदु,
ने चक्षुनी
अबोल हैयाचमके कही रह्यां :
छे क्यांय ग्लानि
के लागणीनी असंतोष-अतितोष म्लानि ?
डोकुं हलावी रही संमतिमां
पुष्पो फोरे सौरभप्रश्न मूक :
पृथ्वीजायां तोय प्रसन्न शां अमे !
केम छो तमे ?

सरी गयो बाग थकी त्वराभर्यो,
पीठे रहु अनुभवी नव होय जाणे
भोंकाती शुं स्वर्गजासूस पुष्पो
केरी आंखो.

उमाशंकर जोशी

हेमन्त की धूप

गाय के थन से निकले ताज़े दूध-सी यह हेमन्त की सुबह की धूप
पीते थे पुष्प !
पीते थे घास के तिनके
हीरा-कनी से मृदु हिमचक्षु द्वारा,
और चक्षु के
मौन हृदय-प्रकाश में (वे) कह रहे—
है कहीं भी ग्लानि
या भाव की असंतोष-अतितोष म्लानि ?
सिर हिलाकर सम्मति में,
पुष्प सौरभ-प्रश्न को
फैला रहे
पृथ्वी-जाये हम, फिर भी प्रसन्न !
तुम हो कैसे ?

सरक गया बाग से जल्दी ही मैं,
अनुभव करता
स्वर्ग-जासूस पुष्पों की ऑखे
भोंकी न जा रही हों पीठ पर
मेरी !

उमाशंकर जोशी

मनने

चक्षुश्रवा मन !
विश्व उपवन
तृण-छोड-तरु-वेल-वाद्यनां
सुणो मधुर गुंजन,
चक्षुश्रवा मन !

रंगबेरंगी आ फूलो
रागिणी विध विध शीलो,
परिमल-वारुणी छली
मजुल रागनी हेली ।
ऋतुसमयोचित कलिरागिणी
खीली रेली रंगवाणी ।
रंग ने रागनी अभिनव केली ।
चक्षुश्रवा मन ।
माणो मधुर गुंजन ।

पर्णखूंटीशी खेंचाइ
तार डाळी ध्रूजे कांई !
दिनकर गायक केरी
किरणांगुली रही फरी ।
वाह फूलरागिणी
शी रवमंजुल झरी,
दशे दिश भरी !

मन से

चक्षुश्रवा मन !
विश्व-उपवन में
तृण-वृक्ष-पौधे-बेल के वाद्य का
सुनो मधुर गुंजन !
चक्षुश्रवा मन !

रंग-बिरंगे इन फूलो की
रागिनी विधविध गाओ ।
परिमल-वारुणी छलकी,
हुई मजुल राग की वृष्टि ।
ऋतु-समयोचित कलि-रागिनी
खिली बहा रंगवाणी ।
रंग-राग की अभिनव केलि ।
चक्षुश्रवा मन
गाओ मधुर गुंजन ।

पर्ण-खूँटियाँ क्या ही मरोड़ी,
तार-सी डाली क्या ही काँपे ।
दिनकर-गायक की (उस पर)
किरणांगुलि फिर रही ।
वाह, पुष्प-रागिनी क्या ही मजुल
राग अलापे
दसो दिशाएँ भरकर !!

श्रवणे झूलंत सूरनां फूल रंगीन,
दृष्टिपथे फूल सूरनी बाजत बीन.
रहो लयलीन,
चक्षुश्रवा मन ।

दुर्गेश शुक्ल

श्रवण में सुर के रंगीन फूल झूलते,
दृष्टि-पथ में फूल के सुरो की बीन बजती ।
रहो लयलीन,
चक्षुश्रवा मन ।

दुर्गेश शुक्ल

एक नामेरी वृद्धने मळतां

खीली समी खोडाई गई मारी नजर
मारा उपर
  वृद्ध आंखोमां भरी मण एक घेरी ऊंघनी ऊडी असर
(ज्यां अग्निनुं अंजन स्वयं हु आंजतो)
अंधारना मखमल मुलायम पोत शा
मारा सुंवाळा वाळ
आजे रूखडा
सुका तणखला घासना टुकडा समा
अहीं तहीं जरी फरकी रह्यां
जाडी कशी बेडोळ कै रे दोरडा जेवी डठर
मारी नसो सौ सामटी ऊपसी रही
(जेनी महीं वेगे वहेता मत्त मारा रक्तमां
शत सूर्यनी उष्मा हती)
'मळशु कदी' कही ते नलिन चाल्यो गयो ..
कोलाहलोनी भींसथी तूटु तूटु थइ आ रह्या रस्ता परे
'मळशुं नकी' बबडी कशु हु मूढ
वर्षो वीस मूकी क्यांक मारां भूलमां
हु भलमां आगळ अने आगळ कशो चाल्यो जतो

नलिन रावल

एक स्वनाम-धारी वृद्ध स मिलते हुए

कीली की तरह गड़ गई यह मेरी नजर
मुझ पर
मै वृद्ध-ऑखो में भरे मन एक भारी नींद का गहरा असर
(जिसमें अग्नि का अंजन स्वयं मै ऑजता था)
अधेरे की तरह मखमल-मुलायम पोत-से
मेरे सुकोमल बाल
आज रूखे
सूखे हुए घास के तिनको सरीखे
इधर-उधर हैं उड रहे ।
मोटी और बेडौल, अरे किसी रस्सी-सी निर्जीव
मेरी नसे सब एक साथ उभर रही है ।
(जिनमें तीव्र गति से बहते हुए उष्ण मेरे रक्त मे
शत सूर्य की उष्मा भरी थी)
'फिर मिलेंगे' कहकर वह नलिन चला गया '
कोलाहलो की भीड़-भाड से टूटने के करीब इस मार्ग पर
'जरूर मिलेंगे' बड़बड़ाते मै मूढ़
बीस साल पीछे छोड, कही मेरी भूल मे,
मै भूल में आगे-ही-आगे कही चलता चला '

नलिन रावल

फाउण्टनना बस-स्टॉप पर

अहीं वही रही हवा महीं अनन्य ग्रास,
एक तो लई जुओ जरीक श्वास !
अनन्य के अजाण डेन्टिने न'ती, हती न पारकी,
हतो प्रवास एहनो य ते (सुभाग्यवंत !) नारकी.
अहीं न होस्पिटल, न स्लोटर हाउस, ने वळी नथी स्मशान,
ते छतां अहीं हवा छ उष्ण म्लान.
खीलतां अहीं न फूल,
एटले ज तो कदीक एमनां प्रदर्शनो
भराय, एक साथ फाल ज्यां वर्षनो;
छतां य मोसमो बधी कळाय छे, न थाय भूल,
फूलथी नहीं, न शीत-लू थकी.
परन्तु स्मोल पोक्स, टाइफोइड, फ्लू थकी.
ऊग्यां छ एम तो अहीं य (भूलथी ज ?) जूज वृक्ष,
व्यर्थ ? ने विचित्र ? ना, कदाच ए ज एक आश
के हजु थयो न सर्वनाश;
किन्तु सर्व संगनो सुयोग लाधतां विरूप, रूक्ष,
शून्य म्हेफिलो समां, जहीं न गुंजतां वसंतना स्वरे
विहंगवादको (अहीं कशुं न मुक्त, सौ वसे छ चीडियाघरे);
सदाय निःसहाय ने लजाय किन्तु क्यां लपाय ?
एमने मळ्या नहीं मनुष्य जेम पाय,
जो मळ्या ज होत, क्यारनां थयां न होत चालतां !
शिला सिमेन्ट लोह काच कांकरेट पास बामणा, विशेष सालतां.
अहीं जनावरो करे न आवजाव एम स्पष्ट छे नियम,
अपार एमनी भणी सहानुभूति स्नेह, झू रच्युं, रच्युं छ म्यूज़ियम.

फाउण्टेन के बस-स्टॉप पर

यहाँ बह रही हवा में अनन्य वास,
जरा-सी साँस तो ले देखो !
"दान्ते" को यह अनन्य या अज्ञात न थी, न थी पराई !
उसका भी वह प्रवास तो (सौभाग्यशाली !) नारकी था ।
यहा है न हॉस्पिटल, न स्लाटर-हाउस, न स्मशान,
फिर भी यहाँ हवा है उष्ण, म्लान !
खिलते यहाँ न फूल,
इसीलिए तो कभी-कभी उनकी होती है प्रदर्शनी,
जहाँ एक साथ पूरे साल-भर की फसल प्रदर्शित की जाती है ।
फिर भी यहाँ सारे मौसमो का लगता है पता, जरा भी गलती नहीं होती,
न फूलो से, न शीत से, न लू से;
किन्तु स्मालपॉक्स, टाइफाइड, फ्लू से ।
उगे है यो तो यहाँ भी (भूल से ही ?) कुछ वृक्ष,
व्यर्थ ? और विचित्र ? नहीं,
शायद इसी एक आशा से कि
अभी हुआ नहीं है सर्वनाश ।
किन्तु सर्व-संग का सुयोग पाकर ये हुए है
विरूप, रूक्ष, शून्य महफिल-से ।
यहाँ वसंत-स्वर में विहंगवादक नही गूँजते,
(यहाँ कोई नही है मुक्त, सभी रहते है चिडियाघरो में)
सदा निःसहाय और लज्जित, किन्तु छिपे कहाँ ?
उन्हे मनुष्यो की भाँति पद प्राप्त नहीं,
यदि प्राप्त होते तो कब के ये चल दिए होते ।
शिला, सीमेंट, लौह, काँच, ककरीट के समीप ये बौने ज़्यादा खटकते हैं ।
यहाँ जानवर आवागमन न करे—ऐसा स्पष्ट नियम है ।
उनके प्रति अपार सहानुभूति-स्नेह है, (तभी तो) जू रचे हैं, म्यूज़ियम रचे है ।

छतां अहीं वही रही हवा महीं अनन्य वास !
आ हवा नथी, अगण्य आ निसास.
जे अहीं तहीं सदा भमे, नमे न निर्गमे,
ग्रसे विशाळ जाळ ट्रामना अनेक तारना, कदीय ना शमे.
निसास ? हा ? असख्य लोकना निसास मात्र,
साथ तीव्र आर्तिना स्वरो नहीं, न चीस के न बूम,
जे बधुं सुण्युं हतुं ज ज्येष्ठ पांडवे,
सुणाय एवुं ना कशुं य आ अनन्य तांडवे,
अवाक वाहनो य, मौन ह्यां विराटरूप; शीत शांत सर्व गात्र
ग्रीष्ममां य, स्वेदसिक्त, अग्नि ना
छतांय धूम !
कोण आ असंख्य लोक नित्य जाय हारबध ?
पूडले पड्यो शुं प्हाण ? मक्षिका सशस्त्र शुं घूमंत क्रोधमां ?
'थवा अलोप अग्रणी थतां सदाय एहनी ज शोधमां ?
हशे शुं सर्व अंध ?
नेत्रमां विलाय तेज ?
एकमेकनी पूठे थता, जता खभेखभा घसी;
छतां न कंप, स्पर्शथी न सेतु एक बे ज वेंत दूर बे उरो रचे,
समीपमां ज तार ऑफिसे रचाय जे क्षणेकमां हजार माइलो वचे.
भर्यो छ अंतरे अपार भेज;

(क्रमशः)

फिर भी यहाँ बह रही हवा में अनन्य वास ।
यह हवा नहीं; ये अनगिनत निसाँस हैं,
जो इधर-उधर सदा घूमते हैं, नभ में और निर्गम में,
जिन्हे ट्राम के अनेक तारो का विशाल जाल ग्रसता है। कभी नही रुकता।
निसाँस ? हाँ, असंख्य जनो का सिर्फ निसाँस,
जिनके साथ तीव्र आर्तता के न स्वर, न चीख, और न टेर;
जिसे सुना था ज्येष्ठ पांडव ने ही एक बार,
वैसा कुछ भी यहाँ इस अनन्य तांडव में सुन नहीं पड़ता ।
वाहन भी अवाक्, यहाँ मौन का विराट् रूप; शीत-शांत सर्व
गात्र में भी, स्वेदसिक्त;
अग्नि नही, तो भी धुआँ ।
ये असंख्य कौन लोग हैं जो नित्य जाते हैं पंक्तिबद्ध ?
क्या छत्ते पर पत्थर फेका गया है कि सहस्रों मधुमक्खियाँ घूम रही हैं
क्रोध में ?
या अपनी रानी के अदृश्य होने पर ये सदा उसीकी खोज मे लगी हैं ?
अरे, यह क्या ? सब ओर अँधेरा ?
नेत्रो में से तेज विलीन होने लगा ?
(लोग) एक-दूसरे के साथ कंधे-से-कंधा
रगड़ते हुए चले जा रहे हैं, पर
फिर भी न कंप; स्पर्श से दो हृदयो के मध्य प्रेम-सेतु न निर्मित,
यद्यपि दो हृदय निकटतम ।
समीप ही तार-घर में तो वह हजारो मीलो के बीच बन जाता है।
(लोगो के) हृदयों में अपार आर्द्रता है ।

धुम्मसे छवायलु, न ऑंधी ना तूफ़ान,
चित्तनुं हजु य मद वायुमान.
सर्व आ कई दिशा भणी रह्या धसी ?
सवेग शी गति !
तमिस्रलोकनी प्रति ?
हजु न सूर्य अस्तमान, मंद मंद पश्चिमे शमे,
प्रलंब होय छांय सांजने समे,
छतांय कोण आ सदाय जेमनी ज छांय ना पडे ?
न सूर्यनी य एम तो कदी य सांपडे !
प्रकाशबिम्ब, दर्पणे न, पथ्थरे पड्यु शमे, कदीय पाछुं ना फरे,
पसार पारदर्शके पड्युं सळग आरपार जै सरे.
हशे स्वयं शु छांय ?
प्रेत सर्व, जेमने न काय ?
के पछी सदेह किन्तु नग्नता न वस्त्रथी निवारता,
हशे शु एटले सदाय जे सुलभ्य ते स्वछांय धारता ?
जणाय सर्वनो जुदो स्वभाव,
कोईने मुखे न भाव,
कोईने क्षणेकमां अनेक भातभातनो,
अभिन्न कोईने सदाय एक जातनो;
अशब्द किन्तु सर्व, एकमेकमां न भेद,
वारिना प्रवाहनो छरी थकी न शक्य छेद;
सोगठां समान शेतरंजना, समान चाल,
हो भले ज कोई श्वेत कोई लाल.
आभथी धरा परे शुं अभ्र होय ऊतर्यु

(क्रमशः)

कुहासा छाया है, पर न ऑधी, न तूफ़ान,
चित्त का वायुमान अब भी है मद।
ये सब किस ओर धँसे जा रहे हैं?
गति भी क्या सवेग है!!
तमिस्र लोक की ओर?
अभी सूर्य अस्त नहीं हुआ है, मद-मंद पश्चिम में विलीन हो रहा है,
संध्या-समय छाया लम्बी होती है,
पर ये है कौन जिनकी छाया कभी पडती ही नही?
यो तो सूर्य की कभी नही पड़ती।
प्रकाश-बिम्ब, दर्पण पर नही, पत्थर पर गिरकर विलीन हो जाता है;
फिर कभी नही लौटता।
और पारदर्शक पर गिरकर सीधा आर-पार निकल जाता है।
तो क्या ये स्वयं छायाएँ है?
सभी प्रेत हैं, जिनकी कायाऍ नही?
या फिर ये है सदेह, किन्तु अपनी नग्नता वस्त्रो से निवारण नहीं करते,
पर सदा सुलभ स्व-छाया ही पहनते हैं।
मालूम होता है : सबका स्वभाव भिन्न है;
किसी के मुँह पर भाव नही,
किसी के क्षण-भर में अनेक प्रकार के भाव,
किसी के सदा ही एक-सा, अभिन्न भाव,
किन्तु सर्व मौन, परस्पर भेद-हीन,
वारि-प्रवाह-सम, जिसे छुरी से भेदना संभव नहीं।
शतरंज के मोहरो-से, एक-सी चाल,
भले ही उनमें कोई सफेद हो या लाल।
आकाश से पृथ्वी पर कोई अभ्र तो नही उतर आया

स्वरूप गोळ लंबगोळ कै प्रकारनु क्षणे क्षणे धर्युं.
समग्र आ समूह शो स्मशानयात्रिको समो सरे,
अवाज मात्र पायनो, गभीर मौन सौ मुखे धरे;
रहस्य मृत्युनु न होय शुं पिछानता,
न शोक, शब्दना विरोधनो य, मृत्युने पवित्र दुर्निवार मानता;
परतु लाश तो नथी खभे, छतांय लागतुं वजन,
विदेह को थयुं नथी सगु स्वजन;
परंतु हा, सुहामणी सुरम्य स्वप्नथी भरी भरी
अतीतमां विलुप्त आज गै सरी !
स्वय हजु जीवंत ए ज एक मात्र सर्वने प्रतीति,
किन्तु जन्म तो थयो न वा थयो य होय ए ज एक भीति,
एटले सदाय जन्मनुं प्रमाण पत्र साथ राखता,
न अन्य कोई एमनी कने मता !
न आम तो कशु य एकमेकमां समान
तो य सर्वने उरे विषादवारुणी,
न नीद, शांति, हेतु, हाम के स्वमान;
जिन्दगी अनंत शुं कथा न होय कारुणी !
अधन्य शु कदीक क्यांक आचर्या अधर्मथी ?
अहीं प्रचड शोकपावके पडया अघोर वासना कुकर्मथी ?

(क्रमशः)

जो क्षण-क्षण में अपना आकार विविध प्रकार का, गोल, लब-गोल
बनाता है ?
यह समग्र समूह स्मशान-यात्रियो की भॉति बढता जा रहा है,
सिर्फ पैरो की आवाज, मुँह पर सभी गभीर मौन धारण किये हुए;
मृत्यु का रहस्य इन्हे ज्ञात नहीं क्या ?
न शोक, न विरोध का एक शब्द, मृत्यु को पवित्र, दुर्निवार मानते हैं ?
किन्तु कंधो पर लाश नही, फिर भी वजन लगता है;
कोई सम्बन्धी, स्वजन विदेह नहीं हुआ है।
परन्तु हॉ, सुन्दर, सुरम्य स्वप्न से भरा-पूरा
"आज" अतीत में फिसलकर विलुप्त हो गया है।
ये स्वय अब भी जीवित हैं, बस, एक-मात्र उसीकी सबको प्रतीति है।
किन्तु जन्म हुआ हो, या न भी हुआ हो—एक मात्र यही भय है।
इसीलिए सदा ये अपने साथ जन्म का प्रमाण-पत्र रखते है।
उनके पास और कोई सम्पत्ति नही;
यो तो इनमे परस्पर कोई समानता भी नही,
तब भी सबके उर में विषाद वारुणी है।
न निद्रा, न शांति, न हेतु, न शक्ति या स्वमान;
जीवन मानो अनन्त करुण-कथा बना है।
क्या ये अधन्य हैं जिन्होने कभी कहीं अधर्म का आचरण कर लिया है ?
—घोर वासना एवं कुकर्म के कारण—ये यहाँ प्रचंड शोक-पावक में
आ गिरे हैं ?

सदाय यातना दहे, सहे छ सर्व दीन,
पापत्रस्त, शापग्रस्त, सर्व नामहीन.
कोईनुं न नाम जाणतो,
परन्तु एक वात तो प्रमाणतो :
कदीक बेपता जहाजना मुसाफरो तणी थशे प्रसिद्ध नाम-आवलि,
हशे ज एमनां य विषे समस्त आ धराय ते थशे समुद्रमां बालि;
कदीक आ विराट ग्रन्थ विश्वनो समाप्त तो थशे,
जरूर एमनां य नाम 'छापभूल' मां हशे.
समग्र आ समूह स्वप्नमां लहुं सरी जतो ?
शुं एमनुं विचारतां हु मारुं नाम विस्मरी जतो !
अशक्य ह्यां स्मृति,
अहीं नरी ज विकृति,
मने ज हुं अजाण लागतो,
न ख्याल ने रहुं पुकारतो : निरंजन !
थतो न अर्थ; मात्र अक्षरो, कई स्वरो कईक व्यंजन;
सविस्मय प्रतीक्षतो, रहुं जवाब मांगतो;
न स्वप्न के न जागृति,
हवे रही नहीं धृति;
सुणाय शब्द 'छे भरो !'
जरीक वार रही सुणाय 'दो कमी करो' !
अहीं थकी य बस अनेक छूटती;
छतां य क्यू न खूटती;

(क्रमशः)

सदा यातना जलाती है, सब कुछ सहते हैं
ये दीन, पापत्रस्त, शोकग्रस्त, सर्व नामहीन
किसी का नाम ज्ञात नहीं,
पर एक बात निश्चित है—
किसी दिन लापता जहाज़ के मुसाफिरो की प्रसिद्ध होगी नामावली,
उसमें इनके भी होगे नाम, यह समस्त धरा समुद्र में धँसेगी,
कभी-न-कभी यह विराट् विश्व-ग्रन्थ समाप्त तो होगा,
निश्चय ही इनके भी नाम "मुद्रण-भूल" में होगे।
यह समस्त समूह स्वप्न में तो नही फिसला जा रहा?
इनका विचार करते-करते मै अपना ही नाम भूला जाता हूँ;
यहाँ तो स्मृति असम्भव,
यहाँ निरी विकृति,
मुझे ही मै अज्ञात-सा लगता हूँ,
ध्यान नही रहता और पुकार उठता हूँ : निरंजन!!
कोई अर्थ नही; मात्र अक्षर, कुछ स्वर, कुछ व्यंजन;
सविस्मय प्रतीक्षा करता हूँ, उत्तर माँगता हूँ,
न स्वप्न, न जागृति,
अब रही नही धृति,
शब्द सुनाई देते हैं—"है, भरो!"
थोड़ी देर बाद फिर सुन पड़ता है—"दो कम करो!"
यही से कई बसें हैं छूटतीं,
फिर भी "क्यू" कम नहीं होती;

मने हुं मूकतो पूंठे, अचेत अन्य फूटपाथपे ढळी जतो,
असंख्य लोकना समूहनी (न चित्तनी ?) भूतावळे भळी जतो.

निरंजन भगत

मै "मुझको" पीछे छोड़, अचेत दूसरे फुटपाथ पर दौड जाता हूँ।
असख्य लोगो के समूह की (चित्त की नही ?) भूतावलि मे खो जाता हूँ!

निरंजन भगत

चालतां चालतां जोयुं

शहेरनो रात्रिनो मार्ग; विचारोथी भर्यो भर्यो,
तेजीला वीज दीवानी वच्चेथी हु वह्यो जतो.
ओचिता नीरखुं मारी छाया शी सरकी जती,
वेगीली आवतां कार दोडती तीक्ष्ण दृष्टिए !
चांपेली चरणे मारी छाया शी सरकी जती—
(अदृश्य हाथथी जाणे हवामां कोई फेंकतुं);
सामेथी आवतां अन्य वळी त्यां कोई वाहन
घूमती शीघ्र तो एवी मकाने को चडी जती;
पथना दीपना तेजे ढोळायां जळनां समी;
घडीक ठींगणुं रूप लावती तो प्रमाणमां,
ओचिंती वधती किन्तु लांबा को साळिया समी,
एक्की साथे धरे रूप त्रण के चारथी वधु.
मुख्यत्वे आकृति मात्र इन्द्रियोनुं कशुं नहीं.
पुलपे चालतो तोये नदीना पटमां वहे
तीरनां वृक्षनां पर्णो चोंटीने उपरे चढे;
ओचिंती व्योमथी वर्षा पाणी तो पगथी लगी
जळना बिन्दुए बिन्दु आवी तो गेलमां जती.
थभु हुं क्यांक तो केवी जावाने तडपी रहे
व्हेता ए व्हेणनी साथे मूकीने मुजने अरे !
दृष्टिए मेळवी जेनी साथे ना क्षण एक ते
अजाणी नारीना आछा साळुंमां जईने रमे;
आखाये पथने रोके एटली पुष्ट थाय ए,
क्षणनुं सघळुं रूप क्षणमां लुप्त थाय ए;
विरूप रूपनो प्रश्न ? अन्य साथे मळी जवुं;

चलते-चलते देखा

शहर का रात्रि का मार्ग, विचारो से भरा-पूरा,
तेज़ बिजली के दीयो के बीच से मै गुज़र रहा ।
अचानक देखता हूँ—मेरी छाया क्या ही फिसल रही !
तेजी से कार के आते, दौडती तीक्ष्ण दृष्टि से ।
मेरे चरणो से चिपकी ये, मेरी छाया क्या ही फिसल जाती ।
(अदृश्य हाथ से मानो कोई हवा में फेकता है ।)
सामने से उधर फिर किसी दूसरे वाहन के आते ही
वह शीघ्र ऐसी मुडती है कि किसी मकान पर चढ़ जाती है ।
मार्ग के दीपक के प्रकाश में तो वह गिरे हुए पानी की भॉति ही
दीखती है ।
घड़ी-भर ठिगनी बनती है, अचानक किसी लम्बे छड़-सी बढ जाती है ।
एक साथ रूप धरती है तीन-चार से भी अधिक,
मूलतः वह आकृति-मात्र है, इन्द्रियो का पता नही ।
पुल पर मै चलता हूँ तो वह नदी के पट में बहती है ।
तट के वृक्ष के पत्तो से चिपककर ऊपर चढ़ जाती है ।
अचानक व्योम से वर्षा हुई, पानी पगडंडी तक चढ़ गया,
जल के प्रत्येक बिन्दु के साथ वह होती हर्ष-विभोर !
रुकूँ मै कहीं तो जाने के लिए कैसी तडपती है !!
बहती हुई धारा के साथ वह हो लेती है । अरे, मुझे भी छोड़ जाती है ।
ऑख नहीं मिलाई जिससे एक क्षण के लिए,
उस अज्ञात नारी की महीन साडी पर जाकर खेलती है ।
कभी सारे मार्ग को रोक ले ऐसी चौड़ी हो जाती है ।
पर क्षण का वह सारा रूप क्षण में ही विलुप्त हो जाता है ।
विरूप रूप का प्रश्न ? दूसरो के साथ घुल-मिल जाना,

सभी संयोगो के अधीन होकर टेढ़े-मेढ़े मुड़ जाना।
गाड़ी के मंद चक्र में वह घुल जाती है, और सभी चक्रो में भी !
चलते हुए रहॅट का दृश्य दृष्टि सम्मुख खड़ा होता है।
लक्ष्य पर पहुॅचने में मुझसे पहले पहुँचती है।
अंधेरे किसी कोने में वह देखते-ही-देखते लुप्त हो जाती है।
इसके भिन्न-भिन्न रूप देखते-देखते मै अब क्लांत हो गया हूॅ।
ऑखे मींचकर मै रुकता हूॅ तो वे सभी दृश्य एकत्रित होते हैं।
फिर से ऑखे खोलता हूॅ तो नया कुछ नहीं दीखता।
अनन्त विविध रूपो में "वही मै, वही मै";
छाया को मै मात्र छाया-रूप में ग्रहण नही करता।
ये तो मेरे यथार्थ चित्र छाया-रूप में चलते है।
चलते-चलते मैने अपना ही चल-चित्र यह देखा!!

प्रियकान्त मणियार

जूनुं घर खाली करतां

फंफोस्युं सौ फरी फरा अने हाथ लाग्युंय खास्सुं :
जूनुं झाडुं, टूथब्रश, वळी लक्स साबुनी गोटी,
बोखी शीशी, टिननुं डबलुं, बालदी कूखकाणी,
तूटयां चश्मां, क्लिप, बटन ने टांकणी सोय-दोरो!
लीधुं द्वारे नित लटकतुं नामनुं पाटियुं, जे
मूकी ऊंधुं, सुपरत करी, लारी कीधी विदाय.
ऊभा छेल्ली नजर भरीने जोई लेवा ज भूमि,
ज्यां विताव्यो प्रथम दसको मुग्ध दांपत्य केरो,
ज्यां देवोना परम वर शो पुत्र पाम्यां पनोतो,
ने ज्यांथी रे कठण हृदये अग्निने अंक सोप्यो !
कोलेथी जे नीकळी सहसा ऊठतो बोली जाणे :
"बा-बापु ! ना कशुय भूलियां, एक भूल्यां मने के ?"
खूंची तीणी सजल दृगमां काच केरी कणिका !
उपाडेलां डग उपर शा लोह केरा मणिका !

बालमुकुन्द दवे

पुराना घर खाली करते हुए

फिर-फिरकर सब ओर टटोला और खासा हाथ भी लगा ·
पुराना झाड़ू, टूथब्रश और लक्स साबुन की बट्टी,
टूटी शीशी, टिन का डिब्बा, कानी बाल्टी,
टूटा चश्मा, क्लिप, बटन और आलपीन-सुई-धागा।
द्वार पर लगी अपने नाम की रोज़ लटकती तख्ती उतार ली,
औंधी रख दी ठेले में; (सब कुछ) सौंप कर विदा किया।
रुके आखिरी बार नजर दौड़ाकर देख लेने वह भूमि—
जहाँ बिताया प्रथम दशक मुग्ध दांपत्य का;
जहाँ देवों के परम वर-सा पुत्र पाया अत्यंत प्रिय
और जहाँ पर ही कठोर हृदय होकर (उसे) अग्नि के अंक में सौंपा।
आज वह कोने से निकलकर मानो सहसा बोल उठता है—
"बा—बापू। और तो कुछ भी नहीं भूले, एक मुझे ही भूल गए?"
मेरे सजल दृग में काँच की एक पैनी कनी चुभी और
उठाये हुए इन कदमों पर ये लोहे के मन-वजन कैसे!

बालमुकुन्द दवे

मृत्युने

मृत्यु रे ! आववुं तारुं मने आज गमे नहि !
न के जीवनना मारा अधूरा रस छे रह्या.
अधूरा ज रहे ए तो सौना : सद्भाग्य मारु के,
नवे रस हुं चाखीये शक्यो जीवनना जरा.
मान थोडुक ने थोडुं धन, थोडोक प्रेम ने
थोडो धिक्कार ये, थोडुं झूलणुं हर्ष शोकने—
हींचके : आ बधु हुं तो पामीये अहीं छुं शक्यो !
एटलुंय मळ्युं, भाई, केटलांने ? नहि, नहि,
असंतोष नथी मारे हैये एनो जरा पण.

कोटि कोटि मनुष्यो ह्यां जडचित्त अचेष्टता
अखंडित महीं देता वितावी निज आयखुं,
मने तहीं मळ्यु, छोने घडीकेय, तथापि आ
निज चैतन्यनुं ओहो ! केवुं स्फुरण माणवा !
अने चंचळ विश्वे आ सदा निश्चळ निश्चिति
एक मात्र ज तुं : तेने टाळ्युं टाळी शकाय शें?
अने शक्य ज न्होय जो तने टाळवु तो पछी,
केम रे शांतिथी तारी संगमां"नहि चालवुं?

छतां ये कहुं के आजे आववुं तारुं ना गमे
जरा पण मने; ज्यारे युगोना युगने तजी,
अनंत जेवी निद्राने, तजी आळसने वळी,

मृत्यु से

मृत्यु री, तेरा आना मुझे पसंद नहीं,
इसलिए नही कि मेरे जीवन के रस अभी अधूरे है,
अधूरे ही रहते हैं वे तो सभी के। मेरा तो सौभाग्य है कि
नवो रस जीवन के मै चख भी सका हूँ ज़रा ज़रा—
थोड़ा मान और थोड़ा धन, थोडा प्रेम
और थोड़ा धिक्कार, थोड़ा हर्ष-शोक के झूले में झूलना—
यह सब मै तो यहाँ पा भी सका हूँ।
पर भाई, इतना भी कितनो को मिला?
नहीं, नहीं, असंतोप नहीं है मुझे हृदय में इसका तनिक भी!

कोटि-कोटि मनुष्य यहाँ जड़चित्त, अखडित अचेष्टा मे
अपनी आयु बिता देते हैं।
फिर भी मुझे तो यहाँ मिली, भले ही घडी-भर के लिए,
अपने इस चतन्य के स्फुरण की कैसी सुखानुभूति!
और री मृत्यु, इस चंचल विश्व मे सदा
निश्चल, नि चित एक-मात्र तू ही है।
तू टाली टल ही कैसे सकती है?
और अगर तुझे टालना संभव ही नहीं,
तो फिर तेरे संग शांति से क्यो न चला जाय?

फिर भी मै कहता हूँ आज तेरा आना रुचिकर नही तनिक
भी मुझे!
जब युगो के युग को छोडकर,
अनन्त-सी निद्रा और आलस्य को त्यागकर,

थयो बेठो अने पूर्वे न दीठो, नव वा सुण्यो,
मानवीजातिए, एवो प्रयोग विरलो करी,
मथी देश रह्यो मारो, काजे नवविधानना,
निजना ज नहि, किंतु अहो! जग समस्तना,
त्यारे निज निचोवीने आयखुं जवुं रे गळी,
मळी सिद्धि विषे, भाई, भगीरथ प्रयोगनी :
अहोहो! भाग्य आ केवुं मळ्युं विरल रे मने!

अहीं मनुजने साचा मनु जेम जिवाडवा,
नथाई नदीओ केवी रही आ! धरतं तणे
पडेली अंतरे सुप्त सिद्धिओ प्रकटावीने,
रचवा केवुं वेराने मथी नंदन सा रह्यां!
देशनी पलटावी आ आखी सूरत नाखवा!
अहो! जगत केवुं आ मीट मांडी रह्युं अहीं
अमारी पर! जेवो आ घडीशुं घाट सौ अमे
अम, घाट घडाशे हो तेवो जग समस्तनो!
आवुं कवणने भाग्य सांपड्युं भूतकाळमां?
अने सांपडशे कोने वळी अव भविष्यमां!
सांपड्यो अमने आ तो काळ एक त्रिकालमां!

लोककल्याणना यज्ञे अमारुं अणुए अणु
होमी दई, मळ्यो मोको पामवा कृतकृत्यता!
मने तो उरमां थातुं : हते नवजवान हुं
अत्यारे तो? अने आंखे पडदो आंसुनो ढळे!
अने भीतरमां हैयुं चचणी आगमां जले!

उठ बठा और पहले कभी न देखा और न सुना मानवजाति ने,
एसा विरल प्रयोग कर आज मेरा देश
नवविधान के लिए प्रयत्न कर रहा है,
अपने ही लिए नहीं, किन्तु समस्त जगत् के लिए।
भाई, अपने को निचोडकर, इस भगीरथ प्रयोग की सिद्धि में
जुटकर
आयुष्य को क्षीण करना है।
अहो हो! कसा विरल भाग्य मुझे प्राप्त है यह!

यहाँ मनुष्य को सच्चे मनु की भाँति जिलाने के लिए
ये नदियाँ कैसी नाथी जा रही हैं!
धरती के अनस्तल की सुषुप्त सिद्धियो को प्रकट कर
वीरान में नदन वन रचने को सब प्रयत्नशील है।
देश की सूरत बदलने के लिए सब कटिबद्ध है।
अरे, विश्व हम पर आस लगाये बैठा है
हम यहाँ अपने को जैसा आकार देगे,
समस्त जग का वैसा ही आकार होगा।
ऐसा साभाग्य भूत काल में किसे प्राप्त हुआ था?
और आगे फिर भविष्य में किसे प्राप्त होगा?
यह तो हमें त्रिकाल में ऐसा काल यहाँ मिला है।

लोक-कल्याण के यज्ञ में अपने अणु-अणु को
होमकर कृतकृत्यता पाने का यह मौका मिला है।
मेरे मन मे होता है: काश मै आज नौजवान होता!
और आँखो पर आँसुओ का पर्दा गिर जाता है।
और भीतर-ही-भीतर हृदय-दाहक अग्नि से जलता है।

तदा केम गमे तारी संगमां आज चालवुं ?
तने मरण ! तेथी हुं कहुं के ना मने गमे
जराये आववुं तारुं अत्यारे, मित्र तुं भले !
जाणुं छुं तोय के भाई, तारुं धार्युं ज तुं करे;
आववुं ज हशे त्यारे आवशे तुं अवश्य रे !
तेथी तो भइला ! आजे आटलु एक वीनवुं;
के भले आवजे, धार्युं आववानुं ज होय तो;
पण ना आवजे तारा धाममां चिर शांतिना
मने लइ जवा : आजे शांति ना खपती मने !
आवजे, किन्तु, नेपथ्ये घडी एक लइ जइ,
नवा नाम अने रूपे सज्ज पाछो मने करी,
नवा जोबनना बहारे, तन ने मन संभरी,
मने तरत मैयाने फरीथी अंक मूकवा !

मनसुखलाल झवेरी

तब री मृत्यु ! क्योंकर पसंद आये तेरे संग आज चलना ?
इसीलिए मै तुझसे कहता हूँ कि ज़रा भी मुझे पसंद नहीं है
तेरा अभी आना, भले ही तू मित्र हो !
फिर भी मै जानता हूँ कि तेरा चाहा ही तू करेगी ।
जब तुझे आना ही होगा तब तू आयेगी अवश्य री !!
इसीलिए तो बहिनी, आज इतनी एक विनती करता हूँ—
कि भले ही आना, अगर तूने आने का ही तय किया हो तो;
पर न आना मुझे अपने चिर-शांति के धाम में ले जाने को,
मुझे आज शांति नहीं चाहिए;
किन्तु तू आना, नेपथ्य में क्षण-भर ले जाकर
नये नाम व नये रूप से सुसज्जित कर
फिर से मेरे तन-मन को
नव-यौवन की बहार से परिपूरित कर
मैया के अंक मे पुनः रख देने को !

मनसुखलाल झवेरी

भूलेश्वरमां एक रात

केवी अहो मसृण सेज!
(रेशमी संस्पर्श)
शीळी लहरी समुद्रनी!
आवासमां एकल
बंध पांपण ...
अने प्रतीक्षा लय-ला' सुषुप्तिनी।
वाजे टकोरा दश....
शेन आरति—
—तणां ददामां चहु ओर मदिरे।
तहीं पूरे-वोल्युम रेडियो ध्वनि.. .
भूकंप....
(ना शेष चळ्यो छतांय ते)
निशीथ (ते शी दलिता)
घरघर
ज्यां लोहनां चक्र भमंत
(कामना) .
आस्फाल्टने मारग अश्व-डाबला ...
अरे कुरुक्षेत्रनी सौ भूतावळ!
क्षणेकनी शांति?—नहीं
न भाग्यमां....
आ ओरडो ते—
अपक्व खोराक भरेल होजरी
समो—
जहीं उंदरनी दडादडी ...
शो रात्रिनो आ अवशिष्ट याम!
छींडी महीं बे रडतां बिडाल. .

भूलेश्वर में एक रात

कैसी अरे मसृण शया !
(रेशमी संस्पर्श)
शीतल तरंगे समुद्र की !
आवास में अकेला ।
बद पलके
और प्रतीक्षा लय-ला' सुषुप्ति की ।
बजते घटे दस....
चारो आर मंदिरो में शयन-आरती के नक्कारो की आवाज
उसमें रेडियो की ध्वनि पूरे 'वोल्युम' पर.
भूकम्प
(शेप नाग तो अभी हिला नहीं, फिर भी)
यह निशीथ (कितनी दलित)
घर्र्-घर्र्—
जिसमें लोहे के चक्र घूमते है
(कामना)
आर आस्फाल्ट की राह पर घोड़ो की टापे
अरे कुरुक्षेत्र की यह सारी भूतावलि है !
क्षण-भर की शाति ?—नहीं
भाग्य में नहीं
यह कमरा—
अपक्व अन्न से पूर्ण उदरसम.
—जहा चूहो की दौड़-धूप....—
कैसा रात्रि का यह अवशेप याम !
गली में दो बिल्लियाँ रो रही है ..

अने जनारां जन
‘ला इलाह. ’
रे निंद मोरी !
ऊभी बजारे करी जाय भ्रम
एवी न मोडर्न
शी लाज ! भीरुता !
आलोक ना, शब्द नहीं,
अबोल
अधार एने गमतो अकेल
रे निद मोरी
आ तो हवे ब्रह्ममुहूर्त
नेपूर
आरे थकी आवती दूधवाळीना....
ने भैरवी तर्ज विषे वणाय
जे उघडेला दर शाकभाजीना....

माथे लउं ओढण
यत्न अंतिम ..
(आंखे दीधा हस्तथी ना टळे भय)
त्यां
बारणे बेल....
जरा उघाडथी
टाइम्स....
तारीख नवी....
नवो युग....

राजेन्द्र शाह

और आते-जाते लोग....
        "या इलाही   "
रे नीद मेरी !
खुले बाज़ार में प्रेम कर ले
ऐसी नहीं मौडर्न
        क्या लज्जा ! क्या भीरुता !
आलोक नही, शब्द नहीं, अबोल
अकेला नीरव अंधकार इसे पसंद....
रे नीद मेरी....
लो, अब तो ब्राह्म-मुहूर्त
नूपुर-झंकार आरे से आती दूध वाली की
और भैरवी की तर्ज में जुड जाते है
शाक-भाजी के खुले भाव

सिर पर ओढ़ता हूँ मै—
        अतिम प्रयत्न....
(ऑखो पर रखे हुए हाथ से भय नहीं टलता)..
इतने में....
    दरवाजे पर बेल् ...
        जरा-सा खोलते ही—
टाइम्स. ..
    तारीख नई....
        नया युग

राजेन्द्र शाह

साल मुबारक

"साल मुबारक, अभिनंदन!" अभिनंदन केरो आवो
वरसगांठनो शुभ प्रसंग तम अनेक वरसो आवो."
"एमां अरे साल मुबारको शी?
अने वळी आ अभिनंदनो शां?
फरी फरी आवती वर्षगांठ तो
जहीं सुधी आ जीवीए तहीं सुधी."
अने, अनौचित्य समक्ष सौनी
छतां, मने आ जनना जीव्याना
मिथ्यात्वनो भाव विषाद आव्यो;
व्यापी रह्यु मौन अने विषादनु.

अमारी त्यां आवी पडोशी व्हेन
ओचिती, अल्पाभरणा, शुभ्रवस्त्रा,
सौभाग्य जेनु हजी अल्प मासथी
स्मृति महीं सीमित थै रह्यु 'तु,
आवी जरा सत्वर पाय मांडी
मारी समक्षे गुलगुच्छ मूकी,
पासे उभेली सजनीनी पूठे,
जड़, खसेडी जरी शीर्षवस्त्र,
प्रफुल्ल पुष्पो तणी वेणी बांधी,
वेरी शुभेच्छा कुसुमो समां स्मितो,
अमो हजी जाणुं न जाणुं सर्व
त्यां तो सिधावी निज घेर सत्वर.

साल मुबारक

—"साल मुबारक ! अभिनदन ! अभिनंदन का,
यह बरसगॉठ का शुभ प्रसंग
अनेक वर्षों तक आये।"
—"अरे, इसमे साल मुबारक क्या ?
और यह अभिनंदन क्या ?
जहॉ तक यह जीना है, वहाँ तक बरसगॉठ तो
वार-बार आती ही रहती है।"
और सबके सम्मुख अनौचित्य के होते हुए भी
मुझमें—इस जन के जीने का मिथ्यात्व का—
विषाद-भाव पैदा हुआ।
और वहाँ विषाद का मौन परिव्याप्त हुआ।

तभी हमारी एक पडौसी बहन अचानक आई,
शुभ्रवस्त्रा, अल्पाभरणा,
जिसका साभाग्य अभी कुछ ही मास से
स्मृति में सीमित हो रहा था।
वह तनिक सत्वर गति से आई;
मेरे सामने गुलदस्ता रखकर,
पास ही खडी सखी के पीछे जाकर,
शीपवस्त्र को जरा खिसकाकर,
प्रफुल्ल पुष्पो की उसने वेणी बॉधी,
फिर शुभेच्छा के सुमनो की भॉति उसने स्मित बिखेरा।
हम इस सबको समझ न समझे—
तब तक तो वह शीघ्र अपने घर चली गई।

मने थयुं : आ मुज वर्षगांठ
न शुं अमारा सहजीवननी य गांठ,
व्हने करी व्यक्त जे पुष्पकाव्ये ?
न तो शु ए अभिनंदन योग्य गांठ ?
ने धन्य ने पुण्य न जीववुं ए,
ज्यां मानवी ढांकी निज व्यथाने
नंदे-'भिनंदे अन्यनां स्नेहसौख्ये ?

ने हुं विचारुं : सहजीवन मात्र लग्ने
छे शक्य, ने अन्य सबंधमां ना ?
आ पुष्पनुं काव्य नथी वणाई
गयुं अमो बेउनी जिदगीमां ?
ने एम तो हुं कदीए न जाणुं
एवी रीते कैंक जनोनी गांठ
हशे वणाती मुज जिंदगीमां !

मुज जिन्दगीमां ?
रे रे कशुं आ अभिमान 'हुं'नुं !
जाणे बधो लोक, समस्त विश्व
फर्यां करे मारी ज आसपास !
शो दृष्टिनो ए भ्रम ! धृष्टता शी !
शी अल्पता ! शी विपरीत दृष्टि !

मैने सोचा : यह मेरी बरसगाँठ—
नहीं क्या हमारे सहजीवन की भी गाँठ,
जिसे व्यक्त किया इस बहिनी ने पुष्प-काव्य में?
तो क्या यह गाँठ अभिनंदन के योग्य नहीं?
और ···· इसमें जीना क्या नहीं धन्य और पुण्य?
कि जहाँ मनुष्य अपनी व्यथा को छिपाकर
अन्य के स्नेह-सौख्य में आनदित होता है और उसे अभिनंदित
करता है?

और मै विचार करता हूँ : सहजीवन क्या मात्र लग्न में ही संभव?
अन्य किसी सम्बन्ध में वह नहीं संभव?
यह पुष्पकाव्य हम दोनो के जीवन में बुन नही गया क्या?
और वैसे तो मै कभी भी जान न सकूँ
इस तरह कई लोगो की गाँठे
मेरे जीवन के साथ बँध ही जाती होगी।

मेरे जीवन के साथ?
अरे! यह "मै" का अभिमान कैसा?
मानो सर्वलोक, समस्त विश्व
मेरे ही आस-पास घूमता रहता है।
कैसा यह दृष्टिभ्रम? कैसी धृष्टता?
कैसी अल्पता? कसी विपरीत दृष्टि?

आ तो गूंथाय पट अद्भुत विश्व केरो,
चैतन्यनो, सकल जीव चराचरोनो;
जेनी समग्रतणी भात नवीन नित्य
जाणी शके न कदि मानवी, तोय राचे,
म्हाले, रमे अवरशुं निज छन्दथी; जे
कल्याण माट, सहुना नित हर्ष माट.
एनो हुं तंतु—बस रोम बनी सुधन्य!

ने आ बधां च्हाय, मने 'भिनंदे,
आ भाई ऊठी बसमां जगा दे,
आ ब्हेन हुं ओळखुं ना तथापि
हसी रचे संपुट हाथनो, ते
मने नहीं, पण सहु ज्यां गूंथाय तेने.

रामनारायण पाठक (स्व.)

यहाँ तो विश्व का अद्भुत पट गूँथा जा रहा है,
चैतन्य का, समस्त चराचर जीवो का।
जिस समग्र की नित्य नूतन छाप
मनुष्य कभी जान ही न सके,
फिर भी उसमें तन्मय रहे; दूसरो के साथ निज छंद से
खेलता रहे।
जो सबके कल्याण के लिए, सबके शाश्वत आनन्द के लिए है।
मै तो उसका एक तंतु-मात्र, एक रोम बनकर धन्य हुआ हूँ।

और ये सभी जो मुझे चाहते हैं, अभिनंदन करते हैं,
यह भाई उठकर मुझे बस मे जगह देते है।
और यह बहन, जिन्हे मै पहचानता नहीं,
फिर भी हँसकर हाथ का संपुट रचती हैं,
वह मुझे नहीं, किन्तु उसे जहाँ सब गूँथे जाते है!!

रामनारायण पाठक (स्व.)

पुष्प थै आवीश

हुं पुष्प थै आवीश तारी पासमां.

तु बाळ नानु खेलतुं होशे तरुनी हेठळे,
हुं टप दई तारा शिरे टपकीश,
तारी आंखनो भोळो अचंबो पीश,
तारी हाथनुं नानुं रमकडुं थै रहीश रमी, भले
तुं पांदडी पींखी पींखी मेले उडाडी आभमां.
हुं पुष्प थै आवीश तारा पासमां.

तु नानकी बाळा हशे कोडे भरी कौमार्यना,
तु केश तारे लाडिली वेणी बनी झूलीश,
तारा कानमां झूली कपोले ताहरे गेलीश,
के गजरो बनी तारा करे सोहीश, मोहीश सर्वनां मन,
तुं भले हो स्वप्ननी डाळे चडी मुजने जती बस विस्मरी.
हुं पुष्प थै आवीश तारी पासमां.

तु हशे जोबन छटाळो छेल को सोहामणो,
हुं हृदय पर तारे बटन आवी जइ बेसीश,
तारी आंगळीनां टेरवां हा पळपळे चूमीश,
तारुं चित्त चोर्यासी दिशे भमतु भले होशे छतां,
शी खबर तुजने अरे के हृदयरस तारो पिनार ज एक हुं.
हुं पुष्प थै आवीश तारी पासमां.

पुष्प बनकर आऊँगा

मै पुष्प बनकर आऊँगा तेरे पास !

तू नन्हा-सा बालक खेलता होगा तरु के नीचे,
मै टप-से तेरे सिर पर टपकूँगा,
तेरी आँखो का भोला अचंभा पीऊँगा,
तेरे हाथो का छोटा-सा खिलौना बनकर खेलता रहूँगा।
भले ही तू मेरी पंखुड़ियाँ तोड़-तोड़कर उडा दे आकाश में।
मै पुष्प बनकर आऊँगा तेरे पास।

तू छोटी-सी बालिका होगी कौमार्य की आशाओ से भरी,
मै तेरे बालो में लाडली वेणी बनकर झूलूँगा—
तेरे कान पर झूलते हुए अठखेलियाँ करूँगा तेरे कपोलो से;
या गजरा बनकर तेरे हाथ पर सुहाऊँगा और सबके मन को
मोहित करूँगा।
तू भले ही सपने की डाली पर चढकर मुझे बस भूल जाय!
मै पुष्प बनकर आऊँगा तेरे पास!

तू होगा यौवन छटामय कोई छैला, सुहावना,
मै हृदय पर तेरे बटन में आ बैठूँगा।
तेरी उँगलियो की नोको को बार-बार चूमूँगा।
तेरा चित्त सभी दिशाओ में उमग से भले ही भ्रमण करता हो;
तुझे क्या पता कि तेरा हृदय-रस पीने वाला तो एक मै ही हूँ।
मै पुष्प बनकर आऊँगा तेरे पास!

तुं हशे गौरव-घटाळो को महाजन मानीतो,
हु कंठ तारे हार भरचक सौरभे म्हेकीश,
हु आजानु तारे अंग झूलतो कदम कदमे
संग तव आंदोलतो डोलीश,
तारुं चित्त कोई उदार प्रेमळ निश्चये रहेशे वह्युं,
ए वहनमां तव संग आखुं जगत जै घूमीश हुं.
हुं पुष्प थै आवीश तारी पासमां.

तुं हशे को मानवोत्तर देवचिति संबुद्ध जन,
हुं चरण तारे श्वेत जूई पुष्प पुंज थइ ठरीश,
ए चरणनी रजशुं भळी, रजने सुगंधे सभरीश,
तव आत्म हा परमात्म संगे गुफ्तगूमां लीन लव,
तव द्वाररक्षक धवलतम पावित्र्य धन्वा थैश हुं.
हुं पुष्प थ आवीश तारी पासमां.

सुन्दरम्

तू होगा कोई महाजन, लोकमान्य, गौरव-घटायुक्त,
मै तेरा कंठहार बनकर महकूँगा भरपूर सौरभ से ।
मै आजानु, तेरे अंग पर झूमता हुआ,
तेरे कदमो के साथ ही आंदोलित होऊँगा ।
तेरा चित्त कोई उदार प्रेमल निश्चय में बह रहा होगा,
उस प्रवाह में तेरे साथ समस्त विश्व मे घूमूँगा ।
मै पुष्प बनकर आऊँगा तेरे पास !

तू होगा कोई मानवोत्तर देवचिति-संबुद्ध जन,
मै तेरे चरण में श्वेत जूही-पुष्प-पुंज बनकर ठहरूँगा ।
तेरे चरणो की रज में घुल-मिलकर उसे सुगध से भर दूँगा ।
जब तेरी आत्मा परमात्मा से गुफ़्तगू करने में लीन होगी,
तब तेरा द्वाररक्षक धवलतम पावित्र्य धन्वा मै बनूँगा ।
मै पुष्प बनकर आऊँगा तेरे पास !

सुन्दरम्

पूरां पच्चासनी पूठे

'यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः'
भगवद्वाक्य ए मारा आत्मानुं नित्य कौतुक;
छतां अनेक वेळाए दुवायो छुं अनकधा,
ने छे अनेकने दूव्यां जाणीने वा अजाणतां.

असत्यम् के अप्रतिष्ठम् नथी जगत में गण्युं;
जाणीने तीर्थ, जगनुं गुरुत्व उर संभर्युं.
कणशः क्षणशः जे जे लाध्युं ते नित्य संघर्युं.
खरे विविध रूपे हुं पाम्यो छुं प्रीति-उत्सव;
मृदु, मिष्ठ अने मोंघुं माण्युं में मैत्री-सौरभ.

न के अभद्रताथी हुं जीवने अनाभिज्ञ छु,
न के छुं दर्शने एना उद्वेजित ज अल्प हु;
परन्तु अदकु व्हालु गण्युं में भद्र संचवुं;
अभद्रेय घणुं जाण्युं भद्र साधन छे थयुं.

कही वैतरणी शाने राचुं जीवनानिदणे ?
नथी भागीरथी शक्ति-भक्ति गंगावतारणे,
छतांय जगमां जोयुं गंगा वैतरणी बने.
नदी जीवनदात्री छे, पूरो प्रलयक्रूर छे,
मथतां आंबवा तेने औदार्योये अदूर छे.

पूरे पचास के पीछे

"यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः"
—यह भगवद् वाक्य मेरी आत्मा का नित्य कौतुक रहा।
फिर भी अनेक बार मै विविध रीति से दुखित हुआ
और मैने अनेको को जाने-अनजाने दुःख पहुँचाया।

"असत्यम् वा अप्रतिष्ठम्" मैने नहीं माना जगत,
मानकर तीर्थ, जगत् का गुरुत्व हृदय में संभृत किया।
कणशः क्षणशः जो भी पाया उसका नित्य संग्रह किया।
वस्तुतः विविध रूप में मैने पाया प्रीति-उत्सव।
मृदु, मिष्ठ और मूल्यवान मैत्री-सौरभ का अनुभव मैने किया।

अभद्रता से मै इस जीवन मे रहा अनभिज्ञ नही;
उसके दर्शन से मै कम उद्वेलित नही बना।
किन्तु अत्यंत प्रिय तो माना मैने भद्र का करना संचय,
अभद्र का भद्र-साधन होना भी मैने जाना।

'वैतरणी' कहकर मै जीवन-निन्दा में क्यो आनन्द मानूँ?
न हैं मुझमें भगीरथ-जैसी शक्ति या भक्ति गंगावतारण की।
फिर भी मैने जग में देखा है—वैतरणी का गंगा बनना।
नदी जीवनदात्री है, बाढे प्रलयकारी, क्रूर हैं,
उन्हें पार करने का प्रयत्न करने वाला औदार्य भी दूर नहीं है।

समृद्ध विश्वलीला हो! महा हो विश्वसर्जक!
शुं शुं हुंने नथी अर्प्युं जो के छुं तुच्छ अर्भक!
देह दीधो, दीप दीधो अंधारे ज्योतिदर्शक,
तापसंतापनी वच्चे अमीना हे प्रवर्षक!

विश्वमां ने विश्वपार विलसंतुं विराट जे
जगनी बारीएथी ते द्रष्टाने तो सुदृश्य छे.
नथी द्रष्टापणुं एवु, न तोये व्यर्थ दर्शन;
आस्थाना एक बळथी सधातुं अघमर्षण.

पूरां पच्चासनी पूठे अमस्ती आंख नाखतां
अल्पानुभव यात्रानां मंगळो शां थतां छतां!
मर्त्य लोक तणी यात्रा संजीवनभरी खरे!
भलेने पूर्ण ए थाती मृत्युना स्वस्तिवाचने!
स्वस्तिवाचन ए पाछुं संस्फुरे नवजीवने!
हाथ ने हैयुं आ मारां ऊभर्यां जग-अर्पणे;
जगने अर्प्युं ते शुं में? अर्पवानुंय शुं ज छे?
सत्कार्युं जग, सत्कारुं अल्प हुं तुलसीदले.

सुन्दरजी गो. बेटाई

समृद्ध विश्व-लीला रे ! महान् रे विश्व-सर्जक !
मुझे क्या नहीं दिया—यद्यपि हूँ मै तुच्छ अर्भक ?
यह देह दी, दीप दिया अंधकार में ज्योतिदर्शक !
ताप-संताप-मध्य अमी के हे प्रवर्षक !

विश्व में और विश्व के उस पार विलसित है जो विराट्,
जग के गवाक्ष से वह द्रष्टा को तो सुदृश्य है ही।
पर मै नहीं हूँ ऐसा द्रष्टा ! फिर भी नहीं व्यर्थ दर्शन,
आस्था के एक बल से ही सधता अघमर्षण।

पूरे पचास के पीछे यो दृष्टि फेरते
अल्पानुभव यात्रा के मंगल होते है सुस्पष्ट,
मर्त्यलोक की यात्रा संजीवन से भरी-पूरी,
भले ही इति हो इसकी मृत्यु के स्वस्ति-वाचन में।
स्वस्ति-वाचन भी तो पुनश्च नवजीवन मे संस्फुरित होता है !

मेरे ये कर और हृदय तत्पर रहे हैं जग-समर्पण को;
जग को मैने दिया ही क्या है ? देने को है ही क्या ?
बस, सत्कार किया जग का— सत्कार करता हूँ मै अल्प,
तुलसी-दल से !

सुन्दरजी गो. बेटाई

राईनर मारिया रिल्केने

समर्पी शुं तारी क्षण क्षण बधी आ जगतने
रगे जेना लोही महीं अणु अणु मृत्यु जीवन.
कहे, दुःखानंदे पुलकित थईने कवनमां
पीधो ने पायो तें जीवन-रस ऐनो ज सहुने ?

जुवानी शी वर्षा प्रथम वरसे, ने झरण जे
वहे छे ते सौये सतत नहि क्यारेय वहता
कुमारा स्रोतोने रण-वन-शिलामां अटकवुं
पड, व्हे तोडीए पुनरपि थवा लुप्त ज थता.

अने ज्यारे तारुं उर झरण सूक्युं तुज व्यथा
हशे केवी जाणुं—मुज हृदयनी ज कथनी.
उनां आंसु अंतस्तल ऊकळतो अग्निरस ए
समावे ते जाणे धरती अथवा को कवि-उर.

रवि रश्मि फूले; फळ रस महीं आ धरतीना
अनंताद्वोनी तें किरण-रस-समृद्धि नीरखी.
मनुष्योना हाथे नीरखी वळी शक्ति, धरतीनी
भरे माटीमां जे रसकसनी सिद्धि अणखूटी.

राईनर मारिया रिल्के को

तूने अपना एक-एक क्षण समर्पित किया इस जग को
जिसकी रगो के लहू में मृत्यु के अणु जीवित है ।
कह दे, दुःखानन्द में पुलकित होकर तूने अपनी कविता मे
सभी को जीवन-रस पिलाया और पीया न ?

यौवन-सम सर्वप्रथम जब वर्षा होती है,
तब जो झरने बहने लगते हैं वे सब निरतर कभी नहीं बहते ।
कौमार्य-युक्त स्रोतो को मरुभूमि-बनी-शिलाओ में अटकना पड़ता है।
यदा-कदा वे उन्हे तोड़कर फिर से बहते हैं या सदा के लिए लुप्त
हो जात हैं।

जब तेरा हृदय-स्रोत सूख गया, तब तेरी व्यथा कैसी होगी—
इसे मै खूब समझता हूँ ।—मेरे हृदय की भी वही कथा है ।
ऊष्ण अश्रु और उबलता हुआ अग्नि-रस—अन्तस्तल में जो समा
लेता है
वह या तो पृथ्वी ही हो सकती है या कवि-हृदय ।

रवि-रश्मि प्रकाशित हैं, इस पृथ्वी के फलों और रसो मे
तूने अनन्त काल की किरण-रस-समृद्धि देखी ।
मनुष्य के हाथो की वह शक्ति भी देखी जो धरती की मिट्टी में
अन्न की अनन्त सिद्धि भर देती है।

"अजपे जागुं हुं सतत प्रभु ! तारे जरूर जो
पडे तो आवुं हुं, तुज तरस तो हु ज छीपवुं."
कही एवुं अर्पे, हृदय शकुं एवुं ज अरपी
अ-नामीने किन्तु, शरण उर-दौर्बल्य गणतो.

गुलाबी रातां वा धवल गुल पीळां गुल बधां
गुलोना प्रेमी ओ ! सुमन-सुरभिए मन भर्युं
अने पिवाडी ए मघमघती खुश्बो जगतने
अरे ! ऐनो कांटो तुज मरणनु कारण थयो.
"वर्षे वर्षे ज्यां गुलो खीलतां त्यां
थाये छोने मृत्यु-लेखो कविनां"—
तारा ए शब्द थाओ जीवन-मरण आलेख मारा सदाना.

हरिश्चन्द्र भट्ट (स्व).

"विकलता से मै सतत जागता हूँ, प्रभु! तुझे यदि जरूरत पड़े
तो हाजिर हो जाऊँ। तेरी प्यास मै ही तो बुझा सकता हूँ।"—
इस प्रकार कहकर तू अपना हृदय समर्पित करता है
और मै भी किसी अनाम को वैसे ही समर्पित कर सकूँ—
शरण को उर-दौर्बल्य मानता हूँ।

गुलाबी, लाल, सफेद, पीले—सभी तरह के गुलो के
हे प्रेमी! तूने सुमन-सुरभि से अपना मन भर लिया
और उस महकती हुई खुशबू को दुनिया को पिलाया।
अरे! उसीका कॉटा तेरी मृत्यु का कारण बना।
"प्रति वर्ष जहॉ गुल खिलते है वहॉ
कवि के मृत्यु-लेख भले ही रचे जॉय।"
तेरे ये शब्द सदा ही मेरे जीवन-मरण के आलेख बने।

हरिश्चन्द्र भट्ट (स्व.)

चाल हसीए आ वसंते

ताजा वसतेला
अनामी फूलनी हिमत जुओ,
के
भरयुवामां पथ्थरो—
(खंडेरनां रोडां रह्यां !)
वच्चे पड्या
हसमुख तणो हसमुख चीरी,
चोवीस वर्षोथी उछरतां
लोही-मज्जा-मांस-अस्थिमां
सुगंधित हास्य सींची
मुग्ध पांखडीए हवामां खिलखिल्युं,
के
"चाल हसीए आ वसंते !"

हसमुख पाठक

चल हँसें इस वसन्त में !

वसंत में ताज़े-खिले इस अनाम
फूल की हिम्मत तो देखो—
कि
पूर्ण यौवन मे, पत्थरो—
(खण्डहर के रोडे रहे !)
—के बीच में पडे हुए,
हॅसमुख के हॅसमुख को चीर कर,
चौबीस वर्षो से पनपते
रक्त-मज्जा-मास-अस्थि में—
सुगन्धित हास्य सीचकर,
मुग्ध पखुडियो से हवा में खिलखिलाकर
कह उठा—
कि
"चल हॅसें इस वसंत में !"

हसमुख पाठक

तमिष़

चयन : तमिष़ परामर्शदात्री समिति

अनुवाद : श्रीमती आनन्दी रामनाथन्

कवि-नाम	कविता
अप़ह्रुप्पित्तन्	जी हर लेती !
ए. एल. वल्लियप्पा	सब हूँ मैं ही !
ए. के. परन्दामनार	प्रेम
एस. उमैताणु पिल्लै	ईश्वर एक है
,, ,, ,,	हमारा देश
एम. के. तंगवेल	प्रात-कली-सी खुली. ..(पूर्वानुराग)
एम. पी. मास्करनेस	गैया
ए. शुरुलियाण्डिप् पावलर	अद्वितीय नेहरू
गणपतिदासन	भूदान यज्ञ
तमिष़मुडि	जागो जोत महान् !
,,	जुही
'नादि'	हे हिमालय
नामक्कल वी. रामलिंगम् पिल्लै	झण्डा फहरा !
पुत्तनेरि आर. सुब्रह्मण्यन	लाल रंग
पेरिय स्वामी तूरन	सहकार-कुमारी
मुडियरशन	बोलता देवता
वी. दुरैसामी	सूखा पत्ता
सामि. पष़नियप्पन	मनस्वी

वाष्वै उण्डाल् !

कण्णैच्-चिमिट्टिडुम् तारहैयिल्—इळम्
कन्नियवल् विषि मिन्नुदडा !
विण्णिल् उलावरुम् वेण्मदियिल्—अवल्
विन्दै एषिल्निला वीशुदडा !
पण्णैप्-पोषिन्दिडुम् कोकिलगल्—एन्ड्रन्
पावै यवल् मोषि पेशुदडा !
एण्ण अरगिनिल् आडुहिन्ड्राल्—एनिल्
एट्टिप् पिडित्तिडक् कूडुदिल्लै !

विल्लै वलैक्किराल् वानत्तिले—वण्ण
विन्दैयिल् शिन्दै कवर्न्दिडुवाल्
पुल्लिल् ओलिविडुम् तण् पनि नीर्—एषिल्
पूवैयिन् आनन्दक् कण्णीरे ।
कल्लिल् शेदुक्किय शिर्पमैल्लाम्—अवल्
काट्टिडुम् मोहनक्-काट्चिहल्ले
शोल्लिल् एषुत्तिल् शुवडिहलिल्—अवल्
सुन्दरप् पुन्नहै तोन्ड्रुदडा !

कालैक् कदिरवन् तोन्रुमुन्ने—एषिल्
काट्टि नहैक्किराल् कीष वानिल्
मालैप् पोषुदिनिल् पोन्निरमाय्—वानिल्
मायंगल् काट्टि मरैन्दिडुवाल्
शोलै मलर् मणत् तेनरलेन—वन्दु
सुन्दरि इन्ब विरुन्दलिप्पाल्
वालैप् परुवत्तु मंगैयवल्—मन
वानत्तिल मिन्नि एन् वाष्वै उण्डाल् !

अषहुप्पित्तन्

जी हर लेती !

झिलमिल करते तारों में—बाला के
जगमग जाते नैना मतवाले हैं,
नभ-पथ के सैलानी चन्दा से
छिटकती उसकी छवि-चाँदनी है।
गान-मधु बरसाती कोकिल भी
कूजती बाला की बोली है,
मंच पर ख्यालों के मेरे वह
थिरकती, न हाथ कभी आती है।

तानती आकाश में कमान वह,
रंगों के खेल से है मोहती,
चमकती है घास में जो ओस-बूँद
सुन्दरी की खुशी के आँसू हैं।
शिलाओं में अंकित है जितने शिल्प
सभी है उस मोहिनी की झाँकियाँ,
वाणी में, अक्षर में, ताड-पत्र-लेखों में
सुन्दर स्मित उसका ही सरस दिख जाता है।

प्रात-सूर्य उगने के पहले वह
क्षितिज में छवि दिखा हँस देती
संध्या में सुनहरी बन, नभ में
खेल दिखा माया के छिप जाती।
उपवन सुमन सुगन्धित मलयानिल-सी
सुख अमित लिये आती, दे जाती
सुन्दरी कुमारी वह, मन के
आकाश में चमक, जी हर लेती!

अव्वुप्पित्तन्

सब हूँ मैं ही !

"जाऊँ सिनेमा देखने, छै आने दे. पिता जी ! "
पिताजी झुँझला पड़ते—"क्यो रे ! भाल्लू से चीखते ?"
"पैसा एक न दूँगा—"
अब बताओ तुम ही
क्या करूँ मै, दोस्तो !

चौके में बैठक में, मुझे घूमता देख लिया
माता डाटती फौरन—"क्यो रे ! बिल्ली से फिरते ?"
"कोई काम तो करते—"
अब बताओ तुम ही
क्या करूँ मै, दोस्तो !

प्रश्नो को समझ न पाकर, भैया के पास जाता
भैया पीटने लगते, क्रोध में आ गरजते—
"कितनी ही मार खाओ, अकड़ न जाती तेरी—
गैडा-मृग कहीं का—आगे पढ़ो बराबर—"
हाय री किस्मत मेरी !
क्या करूँ मै दोस्तो !

शीप्पैक् काणोम् एनरालो
"शिङ्गु शिङ्गु" एनवे एन् अक्काल्
"एण्डा कुरंगे ! एन् शीप्पै
एंगे ओलित्ताय् शोल्लिडुवाय्"
एनरे एन्नैक् केट्किन्राल्
एन्ने शेय्वेन् तोषर्हले !

कणक्कैक् कोडुत्तदुम् विडैशोल्लक्—
करुत्तुडन् एषन्दु "सार् ! सार् ! सार् !
एनक्कुत् तेरियुम् विडै" एनराल्
एनो आशान् शीरुहिरार् !
"आमाम्, कणक्किल् पुलिये तान्,
अमर्वाय् उनदु इडत्तिनिले"
एनरे मट्टम् तट्टुहिरार्
एन्ने शेय्वेन् तोषर्हले ?

काण्डामिरुहम्, करडि, पुलि
काट्टु मिरुहम् एल्लामुम्
नानूदान् एन्रनर् पेरियोर्हल्
नानोरु वार्तै कूरिडुवेन्
मिरुहक्-काट्चि कण्डिडवे
वीणायक् काशैक् कोडुक्कामल्
एन्नैप् पार्त्ते महिषुंगल्
एल्ला मिरुहमुम् नानूदाने ।

ए. एल. वल्लियप्पा

कघा मिले नही तो, बहन जी चिढती आती
फटकारती मुझे भी—"क्यो रे बन्दर! मेरा
कघा कहॉ छिपाया?"—
अब बताओ तुम ही
क्या करूँ मै, दोस्तो!

हिसाब देते गुरु जी, जवाब देने मै भी
तत्परता से उठकर कहता—"गुरु जी! गुरु जी!
उत्तर मुझसे पूछे—" गुरुजी झल्ला पडते
नीचा मुझे दिखाते—"हॉ, गणित में शेर तुम्ही हो
जानता मै बखूबी, जगह अपनी बैठो!"
करूँ तो क्या मै, दोस्तो!

गैडा, भालू, शेर सभी ही, जानवर हुआ हूँ मै ही,
बता दिया बडो ने—
मै भी बात बताऊँ
लखने न्यारे जानवर, चिड़ियाघर को जाना
क्यो पैसे व्यर्थ ही देना?
जाऍ देख मुझे ही, सब जानवर हूँ मै ही!

ए. एल. वल्लियप्पा

कादल्

कादल् शिरप्पु

कादल् कादल् एन्रुलहम्
कषरि मूष् हक् काण्हिनरोम्,
ईदिव्वुलहिल् एव्वुयिर्कुम्
इरुक्कुम् इयकैप्-पण्बनरो ?
कादल्, पशिये इव्विरण्डुम्
काणुम् उयिर्हट्-किलैयेनराल्
ओदुम् उलहम् इरुन्दिडुमो ?
उलर्न्द शुडुहाडाहुमनरे !

कालम् वन्दाल् पू मलरुम्
कादल् मलरुम् परुवत्तिल्
आलमदनिल् कादलुक्कु
नण्णिप्-पणियार् यारे कोल् ?
शाल उडलिन् नलमुडैयार्
चतुरर् एनिनुम् वलैप्-पडुवर्
आलहाल नजनूरे
अमुदम् कादल् वाषवमुदम्।

कादल् तोट्रम

इडात्तिल् पलहाल् काणुवदाल्
इनिदायुच्-चिलनाल् पषहुवदाल्
अडक्कमुडिया आर्वमेषुम्
अदुदान् कादल् उदयम् काण् !

प्रेम

प्रेम-महिमा

प्रेम, प्रेम
प्रेम ही में
डूबा रहता यह ससार
यह प्रेम, जीव सबकी
स्वाभाविक प्रवृत्ति है
प्रेम औ' भूख
दोनो का यदि
वेग न होता प्राणी मे, तब
संसार कहॉ यह रह जायेगा!
जला स्मशान न बन जायेगा!

मौसम आते, खिलते फूल
उचित आयु मे खिलता प्रेम
प्रेम के आगे जग मे कौन
नही जो झुकता रे!
तन से, मन से, दृढ रहते
चतुर लोग भी फॅसते हैं
हलाहल विष नही यह रे!
अमिय प्रेम है प्राणामृत।

प्रेमोदय

एक स्थान मे कई बार आ—
जा मिलते रहने से,
परिचय से,
आवेग, अदम्य उठना मन मे
प्रेमोदय है तब से, जान।

उडलिन् अषहाल् एषन्दिडिनुम्
उल्लुत्तषहाल् वलरुमदु
दिडमाय् निलैक्क वेण्डुमेनिन्
शिलनाल् अदर्कुप्-पोदावे !

मुदर्कादल्

अषहाल् मुळैक्कुम् मुदर्कादल्
अदुदान् तोनूरुम् तर्चेयलाय्
पषहप् पषह अक्कादल्
पालुम् पुळिक्कुम् कदैयाहुम् ।
अषहोडुण्मै आट्रलुडन्
अरिय पण्बाल् एषुंकादल्
पषहक् कालम् पल शेल्लिनुम्
पषदिल् कादल् अदुवेयाम् ।

कादल् इन्नदु एन्बदु

कादल् कादल् एनुमिलैञर्
कादल् इदुवेनररिहिलरे,
मादुम् महनुम् उल्लत्तिल्
मारि मारि वीट्रिरुन्दे
यादुम् पिरिक्क मुडियाद
इयल्बाल् उरुदि उलत्तुडने
कोदिल् अन्बाल् इणैवदुदान्
कुरिक्कुम् कादल् अरिवीरे !

इरुवर् ओनराय् इणैन्दिडवे,
इरण्डु उलंगल् तुडित्तिडुदल्,

जगता यद्यपि प्रेम भाव
शारीरिक सौन्दर्य देख
मन भीतर यह पलना है।
स्थायी होना अगर इसे तो
अल्प परिचय न काफी है।

प्रथम प्रेम

सहसा उठना प्रथम प्रेम
वह जगता तन-आकर्षण से,
परिचय बढ़ते जाने पर,
संभव है, वह घट जाये
आकर्षण यदि मन का हो औ'
शिष्ट, भव्य, हृदय से हो
दृढ़ बनने में समय लगे
पर सच्चा, ऊँचा प्रेम वही।

प्रेम क्या है ?

प्रेम कहते जो नौजवान
प्रेम की बात नहीं जानते हैं।
अनन्य भाव से, अभेद्य चित्त से
दृढ़ता, विश्वास सहित
निष्कपट जो मिलन मन का
होता वह प्रेम जानो।

दो आत्माएँ एक होने
दो हृदय तड़पते हैं

ओरुवर् कुरैये निरैत्तिडमट्—
ट्रोरुवर् शेरत्-तविर्त्तिडुदल्,
पोरुन्दुम् आण्—पेण् उलहिनिले
पुशिक्क इन्बम् पशित्तिडुदल्
अरुमै इलमै उलत्तिनिले
अरुम्बुम् कादल् एन्रिडुवर ।

उयर् कादल्

अन्बे कादल् पयिर् वलर्कुम्
अरिय पोरुमै निलैयरियुम्,
इन्बक् कादल् पषत्तिडवो
इरुवर् अरिवुम् मिहवेण्डुम् ।
नन्मै यट्र उणर्च्चियनाल्
नण्णुम् कादल् निलैयादु,
पिन्नाल् इरंगा वहैयिनिले
पेरु नर्कादल उयर् कादल् ।

पलनाद् कण्डु पषहुवदाल्
पलवाम् कुरैहल् अरिवदनाल्
नलमाय् इरुन्द ओरुवरिडम्
नाडि वेरुप्पु वरुवदुण्डु,
पलनाल् पषहिक्-कुरै युणर्न्दुम्
पारिल् इरुवर् इणै वदनाल
उलहिल् अदुवे उयर् कादल्
उडैयादिरुक्कुम् अक्-कादल्

उण्मैक् कादल्

ओरुवन् उलत्तिल् पुहुन्दवल् मट्—
ट्रोरुवन् मनत्तै नाडिडिनुम्,

पूरक एक दूसरे का
होने मन मचलते है
योग्य नर-नारी की
आपसी जो भूख सुख की
नव वय में, हृदय में वह
कलियाती प्रेम बनके

ऊँचा प्रेम

प्रेम की पौंध बढती
सहिष्णु औ' स्थिर मनो में
सफल उसके होने हेतु
समझ वाछित दो तरफ भी
अहित की भावना ले
पाया जो प्रेम, अस्थिर।
पछताये नहीं जिसमें
ऐसा ही प्रेम ऊँचा।
परिचय से बहुत दिन के
बहुतेरी कमी अपनी
जानकर लगाव घटती
परस्पर घृणा उभरती
मिल-जुल रह कई दिन औ'
कमियाँ पहचानकर भी
जो रहते जुडे जग मे
उनका ही प्रेम सच्चा,
कभी वह न टूटता है।

सच्चा प्रेम

एक के हिय मे बसा
दूसरी लाग जोडने पर,

ओरुत्ति मनत्तिल् इणैन्दवन् मट्—
टोरुत्ति इन्बम् तेडिडिनुम्,
मिरुहक् कामम् अदुवाहुम्
मेन्मैक् कादल् अदुवनरे;
ओरुवन् ओरुत्ति इणैवदुवे
उण्मैक्-कादल् उणर्वीरे

कदैक् कादल् वेरु

कदैहल् कूरुम् कादलिले,
कविञर् पाडुम् पाडलिले,
इदमायुप् पुनैयुम् मोषियिनिले
इन्बक् कनवु काट्टिडुवर,
निदमुम् वाषुम् वाषविनिले
निलैक्कुम् काट्चि वेराहुम्,
इदनै नन्राय् उणर्न्दिट्टाल्
इनिय कादल् पषुत्तिडुमे।

मुरियादिरुक वषिहल्

कादल् पुण्डोर् इरुवरुमे
कण्ड कुरैहल् नन्गुणर्न्दु,
मोदलिन्रि वाषन्दिडवुम्
विट्टुक् कोडुक मुनैन्दिडवुम्
कोदिल् त्यागम् पूण्डिडवुम्
कोडिय इडुक्कण् तांगिडवुम्
कादल् कोण्डाल् मुरियादु
कामन्—रतिपोल् वाषन्दिडलाम्।

एक के मन से मिली
अन्य में सुख खोजने पर
इच्छा वह पाशविक है
विकार उन्मत्त मन का;
प्रेम वह ऊँचा नही है।
एक नर औ' एक नारी
मिलन मे जो प्रेम पलता
प्रेम वह है सफल जानो।

कथाओं का प्रेम भिन्न है

कथाओ के प्रेम में औ'
कवि जनो के गीत मे
मधुर कोमल वाणी मे
सुखद सपने होते है
पर यथार्थ जीवन का
दृश्य होता और ही।
समझ ले इस बात को
तो मधुर प्रेम सफल ही।

प्रेम-भंग न होने के उपाय

प्रेमी जन दोनो भी
कमियो को पहचाने
संघष न उपजाएँ
उदारता दरसाएँ
त्याग भावना भी ले
मुसीबते डट झेले
होगा नहीं प्रेम-भग
काम-रति की जोड़ी बन
प्रेम का सुख भोगेगे।

कादल् मलर् पोल् मेल्लियदु
        कशक्कि मोन्दाल् केट्टुविडुम्,
नोदल् शेयदल् कूडादु,
        नोय्य उरैत्तल् आहादु,
मादर् पुहषन्दाल् महिषून्दिडुवर्.
        मैन्दर् अन्बाल् मयंगिडुवर्,
आदलाने कादलुमे
        अन्बिल् मलर वेण्डुमेन्बर।

अय्यम् पुहुन्दाल् कादलिले
        अन्दो ! वेरु पहै वेण्डाम्,
पैयच् चावे नुषैन्दुविडुम्,
        पारिल् नरकम् तोन्डिविडुम्
वैयमदनिल् अय्यत्ताल्
        वाडि मडिन्दार् एत्तनै पेर्
अय्य उलहिल् नम्बिक्कै
        अदुवे वाषवुक् किन्नमुदम्।

ए. के. परन्दामनार

प्रेम फूल-सा कोमल है
कुचल न उसे सूँघना है
वचन कठोर से भी वह
मुरझा टूट जाता है
नारी जन खुशामद से
पुरुष स्नेह-भावना पा
खिंचते और मिलते हैं
कहते सब इसीलिए कि
प्रेम स्नेह पर खिलता है।

शत्रु प्रम का और नहीं सन्देह समान
शक उठते बस हो जाती है मृत्यु प्रेम की
जीवन भी नरक बन जाता
धरती मे सन्देह क्रूर से
मरे मिटे है कितने लोग
विश्वास एक ही है जग मे
जो जीवन में अमिय भरता।

ए. के. परन्दामनार

कडवुळ् ओन्रु

काणुम पशुक्कळ् पल निरमाम्
करक्कुम् पालुम् वेण्णिरमाम्
पूणुम् अणिहळ् पल वडिवाम्
पुनैयुम् पोन्नुम् ओन्रेयाम् ।

शट्टिप्-पानै पल वहैयाम्
शमैक्कुम् मण्णुम् ओन्रेयाम्
पेट्टैक्कोषि निरम् पलवाम्
पेणुम् मुट्टै ओरु निरमाम् ।

आडुम् कडल्हळ् अलविलवाम्
अमैन्द शुवैयुम् ओन्रेयाम्
आडुम् नदिहळ् एण्णिलवाम्
ओन्रुम् कडलम् ओन्रेयाम् ।

पेणुम् समयम् पल पलवाम्
पेशुम् पोरुळुम् ओन्रेयाम्
आणुम् पण्णुम् इरण्डाह
आयुन्द इरैवन् ओन्रेयाम् ।

कण्ड उलहम् कणक्किलवाम्
काक्कुम् कडवुळ् ओन्रेयाम्
शण्डै इन्रि येन्नालुम्
तरैयिलिणागि वाष्वोमे ।

एस. उमैताणु पिळ्ळै

ईश्वर एक है

गौएँ पाई जाती है अनेक रग की
दूध का रंग बना रहता है उजला ही
सजने के गहने रहते कई ढंग के
ढलने वाला सोना होता है एक ही।

मटके, गागर, घडे, सुराही कई-कई है
मगर सभी आकार बने मिट्टी से ही।
होती तो है रंग-बिरंगी न्यारी मुर्गी
किन्तु हमे तो अडा मिलना एक रग का।

परिमाण नहीं लहराते रहते सागर का
स्वाद समाया लेकिन उसमें एक ही-सा
तादाद नहीं बहती रहती नदियो की
पर सगम उनका एक अकेला सागर ही

अपनाये जाने वाले तो है धर्म विविध
किन्तु सभी के तत्त्व-सार बस एक ही है।
नर-नारी के दो भागो में बँटा है जो
वह जग-व्यापी ईश्वर भी तो एक ही है।

जाने-माने गये लोक हैं संख्यातीत
पर लोको के रक्षक ईश्वर एक ही है।
लडाई-झगडे दगे से हो दूर हम
बिताएँ जीवन इस धरती में एक हो।

एस. उमैताणु पिल्लै

एंगल् नाडु

वट्राद अलैकडलुम् वलैन्दणिशेय् नाडु,
वलैयाद इमयगिरि वलन्दैषुन्द नाडु।
तेट्राद उयिर् नदिहल् तेलिन्दोडुम् नाडु,
शेल्वानिलै शेप्पमुरच् चीरमैन्द नाडु।

शान्तमूर्त्ति गान्धिमहान् जनित्त पेरुम् नाडु,
तवरामल् कदरुडैये तरित्तोषुहुम् नाडु।
कान्तिवलर् कांगिरसाल् कडैत्तेरुम् नाडु,
कडवुल् अरुल् काट्चियेल्लाम् कण्डतव नाडु।

उरुट्टुकुम् मिरट्टुकुम् उलमशैया नाडु,
उण्मैहलै उरैप्पादिले उरुदिनिरै नाडु।
तिरट्टुपडै गुण्डुक्कुम् शिरिदुमंजा नाडु,
त्यागनिरै वाष्कैयिले शिन्दैवलर् नाडु।

शोट्रुकुम् आडैकुम् तेण्डाद नाडु,
शोम्बामल् निदमुषैकुम् शूरर् वाष् नाडु।
नेट्रुषुन्द अन्नियरिन् नेंजलैकुम् नाडु,
नेशम् निरै वाष्कैयिले नित्तम् वषे् नाडु।

कणक्किल्लाक्-कलैच्चेल्वम् काट्चियलि नाडु,
कालिदासन् कवि तागूर् कम्बन् वाष् नाडु।
कणकरिन्दु वाष्वदिले करैकण्ड नाडु,
कनवेल्लाम् ननवाहक्काणुहिनर नाडु।

हमारा देश

अक्षुण्ण वेला वलयित शोभित देश हमारा
अनत हिमाचल तुग अवस्थित देश हमारा
अविरल, अमल प्रवाह नदीयुत देश हमारा
अमित द्रव्य से समृद्धिशाली देश हमारा।

शान्ति मूर्ति महात्मा गांधी देश हमारा
श्रद्धा-युत नित खद्दरधारी देश हमारा
गान्धी पोषित कॉग्रेस से उद्धार हमारा
भगवद्लीला विलसित पावन देश हमारा।

विचलित नहीं डाट-डपट से होता देश हमारा
स्पष्ट सत्ययुत वचन प्रवर्त्तक नामी देश हमारा
तनिक न डरता शस्त्र बमो से देश हमारा
त्याग भरा जीवन, उदात्त मन देश हमारा।

अन्न-वस्त्र के लिए अन्य का दया-पात्र नहीं देश हमारा
तज आलस, श्रम करते रहते धीरो का यह देश हमारा
चढ आये विदेशी, उनका मन दहलाता देश हमारा
ममता, स्नेह प्रेममय जीवन-दाता प्यारा देश हमारा।

असंख्य कला-कौशल दिखलाता देश हमारा
कबन, कालिदास, रवि ठाकुर देश हमारा
सयम नियम ज्ञान में ऊँचा देश हमारा
सपने सत्य बनाता न्यारा देश हमारा।

उण्डमुदुक्कूरु तेडि ओरुगषिया नाडु,
उषतोषिलिल् वाणिबात्तिल् उलहरिन्द नाडु ।
कण्डवरिन् करुत्तैयेल्लाम् कवर्हिन्ड् नाडु,
कडल् वलमुम् मलैवलमुम् कलन्दणिशेय् नाडु ।

शोन्न शोल् कात्तोषुहुम् तोण्डर् वाष नाडु,
शोन्दमेन्ड् अन्नियर्कुंच् चुहंगोडा नाडु ।
एन् वरिनुम् एंगामल् एषुन्दु निर्कुम् नाडु,
एषैक्काय् एषुन्दु गान्धि एन्ड्रुम वाष् नाडु ।

अन्नियरै एप्पमिट्टु अडिमैयाका नाडु,
आयुदत्ताल् आक्किनैयाल् आण्डरिया नाडु ।
मन्नुयिरैत् तन्नुयिराय् मदित्तोषुहुम् नाडु,
मण्णुलहै विण्णुलहाय् माट्रुहिनूर नाडु ।

कोषैयाह वाषन्दरियाक्-कुडिहलाण्ड नाडु,
कुरुंजिरिप्पिल् कुडिहेडुक्कुम् गुणमरिया नाडु ।
एषैयाह आण्डरिया इन्ब-वल-नाडु,
इरन्दवर्क्कु ईत्तुवक्कुम इन्दिया एम् नाडे ।

दण्डनैक्कुम् तडियडिक्कुम् तलराद नाडु,
तलैयाय तलैवन् शोल् तलैतांगुम् नाडु ।
पण्डेषुन्द तोषिलेल्लाम् परिमलिक्कुम् नाडु,
पारेल्लाम् निदम् पुहषुम्भारतम् एम् नाडे ।

एस. उमैताणु पिल्लै

खाद्य-समस्या हल कर चुका देश हमारा
वाणिज्य औ' खेती में नामी देश हमारा
दर्शक मन आकर्षित करता देश हमारा
पर्वत-सिन्धु-सौन्दर्य-सुशोभित देश हमारा ।

प्राण जाय पर वचन न तजता देश हमारा
जमे रहे विदेशी को उपद्रव देता देश हमारा
आये आफत, निश्चल डटता देश हमारा
गरीब-अगुआ गान्धी का यह देश हमारा ।

देश अन्य को कुचल गुलाम न करता देश हमारा
दुराग्रह से बमबारी से अनजान है देश हमारा
सर्वभूत औ' निज में नहीं भेद मानता देश हमारा
धरती को भी स्वर्ग में बदल देने वाला देश हमारा ।

निर्भीक, वीर, जनता-शासित देश हमारा
द्रोह कपट से अनभिज्ञ यह देश हमारा
न रहा संपत्तिहीन कभी यह देश हमारा
याचक को देकर सुख पाता हिन्दुस्तान हमारा ।

दड और डडो के आगे कभी न विचलित देश हमारा
सिर ऑखो नेता का आदर करता देश हमारा
विकसाते उद्योग पुराने बढता देश हमारा
विश्व-प्रशसा-पात्र बन रहा भारत देश हमारा ।

एस. उमैताणु पिळ्ळै

काले अरुम्बि····

शिन्नच् चिलम्बु कुलुंग वन्दाल्—अवल्
शिट्राडै नेर्त्तियैक् काट्ट वन्दाल्,
पिन्नल् अषहिनैप्-पेशवन्दाल्—नानुम्
पेदैक् किरुक्किल् नडन्ददुण्डु ।

वण्णप् पोन् वण्डु पिडित्तदुण्डु—आशै
वन्दिडक् काट्टि नडित्तदुण्डु,
एण्णम् कवर्न्दिडुम् इन् शुवैहल्—अवल्
एन्नैक् कवर्न्दिडत्-तन्ददुण्डु ।

अम्बुलि काट्टि अषैत्तदुण्डु—अवल्
आडलिल् आशै तषैत्तदुण्डु,
तुम्बियिल् कूडिक् करैगैयिले—इन्बत्-
तूक्कत्तिल् ऊक्कम् पिरन्ददुण्डु ।

गोमुखि आट्टुप्-पेरुक्किनिले-अन्नै
कुम्बिट्टु नोन्बुनीराडैयिले
मामरच्-चोलैयिल् मालैयिट्ट—नांगल्
माप्पिल्लै—पेण्णायूच्-चमैन्ददुण्डु ।

शेंगै शिवक्क अमैत्तदोरु—शिरु
शिट्रिलिल् शोरु शमैत्तदुण्डु
पोंगाद शोट्टुक्कुप्-पंगाहि यावुमे
मूर्त्तियायूप्—पोहच्चिदैत्तदुण्डु ।

प्रात-कली-सी खुली...

नन्हें नूपुर छम-छम करती आई थी,
चूनरिया की बान दिखाती आई थी,
सुंदर वेणी हिला-डुलाती आई थी,
अबोध मन में भी तब मस्ती छाई थी !

सुन्दर जुगनू कभी पकड़ते थे हम,
प्यारे अभिनय के खेल करते थे हम,
चित्ताकर्षक कई रसीली चीजें आ—
आकर्षित मुझको करने वह ला देती थी!

चन्दा मामा दिखा उसे बुलाता था,
खेल उसीमें, प्यार भी अपना बढ़ता था।
झींगुर की झीनी बोली जब उठती थी,
मधुर नींद में प्रबल भावना जगती थी।

गोमुखी नदी की तरल धार में माताएँ,
भक्ति-भाव ले करती होतीं पावन स्नान,
पास रही अमराई में तब हम दोनो,
दूल्हा-दुलहिन बन वरमाला पहनाते।

लाल हो रहे बाल-करो से आप बनाये
घरुए में आबाद किया था अपना घर,
पका नही जो भात उसीका बाँटा लेकर
खेल खत्म कर तोड-फोड हम आते थे।

पुत्तहप्-पैयुम् शुमन्ददुण्डु—पलिप्-
पोकुम् वरत्तुम् इनित्तदुण्डु
वित्तैहल् मेत्त वलरुदेनूरे—एंगल्
वीट्टवर मेच्च नडन्ददुण्डु।

आडिक् कलन्द विलैयाट्टिल्—एगल्
आरम्बप्-पल्लि मुडिन्ददुण्डु,
पाडिक्-कलन्दिट्ट पेच्चिनिले—उयर्
पल्लिक्-कलैयिनै एट्टिविट्टोम्।

एट्टिप् पिडित्त उयर् वहुप्पिल—तमिष्
इन्बात्तिल पण्डिदर् पाट्टेडुत्तार्,
मेट्टिले वेट्टुम् एन् पार्वैयिले—कनि
मेविक् कलप्पवल् इलैयडा।

पल्लि मणियुम् अलरियदे—तमिष्-प्-
पाडमुम् पाट्टुम् शलित्तनवे।
कलुच्-चिरुक्कियुम् वन्दिलले तोलैक्-
कादल् निनैविल् अरुम्बियदे।

एम. के. तंगवेल

बस्ता पुस्तक ले जाया करना था
शाला में आना-जाना भी भाता था
घर वाले भी सराहते थे खुश होकर तब
हो रही पढाई औ' लिखाई अच्छी ही।

मेल-जोल औ' खेल-कूद के साथ हमारी
प्रारंभिक शिक्षा शाला की खत्म हुई जब,
हँसते-गाते, बाते करते ज्ञान बढ़ाते
शाला की ऊँची कक्षा मे पहुँच चुके थे।

ऊँची कक्षा मे पंडित जी लगे सिखाने
कविताएँ विशिष्ट औ' माधुर्य पूर्ण
किन्तु नहीं कविता मे जो रस घोलती
नैन लडाती प्यारी मेरी आई थी।

गूँज उठी शाला की घटी: ऊब चला मे
काव्य-पाठ से, किन्तु न आई वह मेरी
'चोर-छोहरी' औ' उसकी वह
प्रीत पुरानी खिली याद मे प्रात-कली-सी! *

एम. के. तंगवेल

* इस कविता का शीर्षक 'तिरुक्कुरळ' के एक प्रसिद्ध प्रेम पद का प्रथम चरण है और इसलिए मूल तमिष मे, पढते ही अपना भाव व्यंजित करता है।

प्रेम मिलन या विरह की बढती तीव्रता की, चढ़ते दिन के साथ खिलते फूल से तुलना करते हुए कुरळकार ने कहा है कि प्रेम-मिलन (या विरह) की कामना सुबह की कली की तरह खिलती है, दिन मे वह खिलने लगती है और शाम के आते-आते वह पूरी विकसित हो जाती है अर्थात् मिलन (या विरह) का वेग, रात्रि के समय प्रबल होता है।

पशु

आवे ! निन्नैप्पोल् अमुदु पडैत्तवैहल्
माविनत्ते उण्डो, महितलत्तिल्—पूवुलगर
ओरादु पोयिनरो, उण्मै मरन्दनरो ?
शीरेदु, पेरेदु, शेप्पु ।

पाल् तयिर् मोर् वेण्णेयुडन् पार्कट्टि नेय्यिवैहल्
पोलुणवु कण्डवर् यार् बूदलत्तिल्—कोलमिहु
शाणत्ताल् नीर्मयत्ताल् तन्दुदवुम् नल्लुरम् एक्—
कोणत्तुम् यादो कुणित्तु ।

ताय् पोलुम् नल्लुणवु तन्दिडालिल् यामुनदु
शेय् पोलुम एन्बादिलोर् तींगुलवो—आवे ! निन्
पिळ्ळै मलम् एगल् पेरुम् पिणियै त्तीर्पदकोर्
तळ्ळा मरुन्दलवो शाट्टु ।

गैया

गया ! तुम-जैसा अमिय देता
जानवर भी कहीं है ?
धरती पर
मानव ने पाया भी कही है ?
सत्य है यह
भुला दे कैसे ?
तोल कहाँ, मोल कहाँ
तुम्हारा, बोलो !

दूध, दही, मट्ठा
मक्खन, मलाई, घी, पनीर,
जैसे खाद्य और
यहाँ पाया है किसी ने ?
गोमय, मूत्र तुम्हारे
दिलाते जो खाद बढिया
कहीं और से मिलना ?

अमिय पय देने में
माँ सम हो ।
तो हानि क्या
कहलायें अपने को
तेरे बाल हम भी !

गया माँ !
तेरे तो
वत्स का
गोमय बन जाता औषध
इक भयंकर रोग-नाशक ।

अम्मे, पशुवे, अरमूवलर्त्त कर्पहमे !
एम्मेल् निनदु दयै इल्लैयेनिल्—इम्मा-
निलमेल्लाम् अन्ड्रैक्के निर्तुलियाय् मक्कल्
कुलमेल्लाम् पोमे कुलैन्दु ।

कन्ररुन्दुम् पालैक्—कलवुशेय्दार् काशिनियिल्
एन्रुम् विलगार् इदु मरबे—मन्र
निनैयष़ुहु शेय्दान्ड्रि नेर् पशुवे ! एन्दम्
मनैयष़ुहु वाय्त्तिडुमो मट्टु ?

एम. पी. मास्करनेस

गो माता !
धर्मपालिनी तुम हो
कल्पक-तरु ही ।
हम पर
न रहे दया तुम्हारी
तो,
यह धरती सब उस दिन ही से
मातृहीन
नष्ट-भ्रष्ट
हो जाए ।
बछडे का पेय
तुम्हारा दूध
चुराते जो मानव
यह सत्य है
पतित होते ।

अच्छी माँ !
आदर तुम्हारा
किये बिना
हमारा घर-बार
फूले-फले कैसे ?

एम. पी. मास्करनेस

निहरिला नेरु

मिंजुवलि नेंजुडैय मेरु—एंगल्
मेदै मिहु पण्डित जवहर्लाल् नेरु,
वजमुडन् अंजलरु—धीरन्-उडलिन्
वडिवषहिल् पडियदनिल् माणुडैय मारन्।

भारत नन्नाट्टिलोरु शिंगम्—पणविल्
पत्तरै माट्टु एनप्-पारिलोलिर् तंगम्।
सारथियाय् वीरनिवन् नाट्टै—ननूगु
तान् नडत्तुम् मार्गमंदु दाराणियिल् तुगम्।

शोम्बाद दीरमुल नेयन्—एन्रुम्
शोल् पन्दल् पाडादु तोण्डुशेयुम् तूयन्
तेम्बाद शिन्दैयुल शीमान्—देशत्-
त्यागिहल तम्मिलिवन् कीर्तिमिहु कोमान्।

पुन्नहैयिल् इन्नल्हलै वेल्वान्—एन्दप्-
पोदिनुम् मेदैमिहु नीदिमोषि शोल्वान्
मन्ननेन मालिहैयिल् वाष्न्दान्—इनूरु
मन्नुयिरिन् इन्नल्हलै वन्मैयुडन् आयून्दान्।

अण्णलेनुम् अन्बिनोलि गान्दि-शोन्न
अरवषियैच् चिरमदनिल् आर्वमुडन् एन्दिक्—
कण्णिलुल मामणियैप् पोल—नाट्टैक्
काक्कुमिवन् नीडूषि कालम् ननि वाषि।

प. शुरुलियाण्डिप् पावलर

अद्वितीय नेहरू

हृदय की दृढता एव शक्ति में सुमेरु पर्वत समान है
मेधावी पंडित जवाहरलाल नेहरू।
छल-कपट एव भय से रहित धीर है वह,
शारीरिक सौन्दर्य में भी मन्मथ समान है वह !

भारत देश का एक शेर है वह
आचार-व्यवहार संस्कार-विचार मे
छविमान, तपा कुन्दन है वह
शासन के सारथी बने उसके
मंचालन में बढ़ता देश पथ उन्नति के।

आलसहीन, धीर, सनेही है वह
आत्मश्लाघा से दूर कर्मठ, सेवक है वह
सदा चिन्तनशील औ' विचारो के धनी
देश-भक्त त्यागियो मे इसकी विशिष्टता अपनी।

मुस्कान से ही मुसीबत झेलने वाले
सर्वदा विद्वत्ता बोध देने वाले
राजकुँवर बन महल में वास किया था इसने
आज जनगण के संकट पर शोध किया है इसने।

ज्योतिर्मय प्रेम की मूर्ति महान् गान्धी के
धर्म-पथ शासन को शीश से स्वीकार कर,
ऑखो के तारे, अपने देश प्यारे के
रखवाले लाल यह! जिये चिरकाल यह।

ए. शुरुलियाण्डिप् पावलर

भूमिदानवेल्वि

विरहुम् शमित्तुम् नेय्युमिन्रि
वेल्वि योन्रु नडक्कुदु
मरैविलामल् मानिलत्तिल्
महिमै इदर्कु इरुक्कुदु ।

गान्दि शीडर् कष्रुम् मन्दिरम्
कादुहलिले ओलिक्कुदु
शान्ति यलिक्कुम् सादनम् इदु
दरणि एंगुम् पलिक्कुदु ।

वेलैयिन्ड्रि यिरुक्कुम् एषै
वेलै वेण्डि निर्किरान्
काल मेल्लाम् उषैक्क इन्दक्—
काशिनियैप्-पार्क्किरान् ।

निलत्तैक् कोंजम् नल्हिविट्टाल्
नेडुह वेलै शेय्हुवान्
निलत्तिलुल्ल पजम् नींगुम्
नेर्मैयाह उय्हुवान् ।

निलम् कोडुक्क इल्लैयायिन्
नेन्दं पोरुलै नल्हुवाय्
बलम् कोडुत्तायिनुम् इन्दप्-
पार वेल्विक्-कुदवुवाय् ।

भूदान यज्ञ

आज्य और ईंधन बिन
हो रहा है एक यज्ञ
निस्संशय पा रहा वह
आदर जग-विश्रुत ।

शिष्य है वे गान्धी के,
गूँजता है कानो में मन्त्र उनका,
शान्तिप्रद, सुखप्रद
साधन वह
प्रभावित कर रहा है विश्व को ।

बेकार पडे रहे है गरीब
कोई काम चाह रहे
ताक रहे दुनिया को
अथक परिश्रम लिये ।

दे-दे हम उन्हे आप
थोडी-सी ज़मीन
उद्यत हो जायगा
मेहनत वह करने को ईमान से
दूर होगे इस प्रकार
अभाव कई उसके भी ।

जमीन नहीं देने को
तो दे दो,
दे पाओ तुम
जो कुछ भी,
श्रम अपना देकर भी
यज्ञ के सहाय बनो ।

निलमुम् पोरुलुम् बलमम इन्ड्रेल्
ने पलर्कुंच्-चोल्लुवाय्
पलनुडैय इन्द वेल्विप्—
पण्बाल् वरुमै वेल्लुवाय् ।

एषै अडिमै एवनुम् इल्लै
एन्ड्रभारति शोल्लै
तोषरहले ! उण्मैयाक्कत्
तोण्डु शेय्य वेण्डुमे ।

अन्बु कोण्डु अनैवरुम् नाम्
अणि अणियाय्च्-चेरुवोम्
इन्बम् अडैय इदुपोल् ओन्ड्
इल्लै एन्ड्रु तेरुवोम् ।

अन्ड्रु मुदल् इन्ड्रुवरै
अहिल वुलहुम् नम्मैये
नन्ड्रडैयप् पाक्कुम् तन्मै
नाडरिन्द उण्मैये ।

भूमिदान वेल्वि एन्ड्रु
पुहलुवार्हल् इदनैये
नाम् इदनै नाडु उयर
नन्गु शेय्दल् मुरैमैये ।

गणपति दासन्

धन नहीं, ज़मीन नहीं
श्रम भी नहीं देने को—तो करो प्रचार—
गरीबी मिटाना ही हेतु है भू-यज्ञ का।

“—दीन नहीं, दास नहीं
कोई भी इस जग में—”
उक्ति* ‘भारती’ की यह
सार्थक यदि होनी है
सेवा हमें करनी है

—प्रेम से मिल सभी
दल-दल में जुटे रहे
सुख-समृद्धि पाने का
अन्य नहीं साधन है।

—सर्व विदित सत्य है कि
नाक रहा अखिल विश्व
हमको ही
अपने कल्याण हेतु
पुराने जमाने से
आज तक औ’ आगे भी।

यह है भूदान यज्ञ
कहलाता
उन्नति-पथ देश को चलाना है
तो इसका साथ हमें देना है।

गणपति दासन्

---

* भारती : आधुनिक तमिष साहित्य के लोकप्रिय राष्ट्रीय कवि।

आयिरु तिरुप्पळ्ळियेषुच्चि

आयिरु मरैन्ददुम् ओळिन्दिडुम् ओळियै
    नळ्ळिरवदनिलुम् नाम् पेर मुयल्वोम्
कायुरु कदिरोळि कण्णिमैप्-पोषुदिल्
    कादम् पल्लायिरम् पाय् शक्ति कोण्डु
नोयुरल् इन्ड्रिनूराण्डुहल् वाष
    नुण्णिय अरिवियल् पण्णिडुवोमे।
मायिरुळ्आलत्तै माणुबुरच्-चेय्य
    मावोळिये! पळ्ळि एषुन्दरुळाये ।

करियिरुळ् शूषलाल् कालमुम् माणियुम्
    कण्डरिया मनम् कलंगिडुहिन्रोम्
विरियिरुळ् वन्देंगल् विषिहळै मयकि
    विलंगिडुम् दिशैयिनै मरैन्दिडच्चेय्युम्
अरियिरुळ् नीक्कियिव्वुलहिनुक्-केन्रुम्
    उणार्त्तिडुम् कुन्राद दिशै काट्टि नीये
शोरियिरुळ् मायत्तिडुम् शुडर मणि काट्टिये
    तोषुदनम् पल्लियेषुन्दरुळाये ।

मुदलाळि आलैयैत्-तिरन्दिडुम् पोदे
    मुन्दुवर् तोषिलाळर् वेलैहळ शेय्य
इदमुरु आलमाम् तोषिर्चालै तन्नै
    इरुळेन्नुम् कदवुहल् पूट्टियदाले
मदित्तेष मक्कळाम् तोषिलाळर् शोर्न्दु
    मयंगि विषुन्दुनर् मैयिरुट् पूट्टैक्—
कदिरोळि कोण्डु नी तिरन्देमक्करुळक्—
    कदिरवने! पळ्ळि एषुन्दरुळाये ।

जागो जोत महान् !

मूर्यास्त होते ही, छिपते प्रकाश को
गत के अन्धेरे मे भी पा सके हम।
नापयुत किरणे पलक झिपते ही
कोस हजारो दीप देती है।
शक्ति उन्हींसे ले जीने को
शतायु, निरोग, सूक्ष्म विज्ञान
भौतिक का विकसाएँ।
घोर अन्धेर-घिरा संसार
जगे, उठे, जागो जोत महान !

काला तम घिरा,
काल समय सूझा नहीं
परेशान मन।
फैला तम, आँखो पर छाया
गोचर दिशा छिपाई।
प्रकाश दरसाता सदा विश्व का
दिग्दर्शक उन्नत तुम हो।
तमहर, जोत दिखा! हमारा निवेदन—
जागो तुम हे जोत महान् '

खोल रहे हैं मालिक मिलो को
जा रहे मजदूर काम करने को—
उनकी दुनिया कारखाने को,
किवाड-अन्धेरा बन्द कर रहा
जगे मजदूर हुए उदास मन
किरण छूकर खोल तम-ताला
आओ दिनकर, जागो हे महान् !

इरुळरक्कन् बुवि मक्कळै अडिमै
ईर्त्तनन् तूक्कमाम् नंजिनै ऊट्टित्—
तिरुवुडल् वीष्न्दुयिर् शेत्तवर् पोलत्
तियंगिये मान्दर् मयंगिनर् अन्दो ।
शुरुळ् कदिर् ईट्टियाल् इरुळनै मायत्तुच्—
चुडरोळि मरुन्दिनाल् मक्कळै एषुप्पिप्—
पेरुवोळियाहवे आलम् इलंगप्—
पेरुंकदिरे ! पळ्ळि एषुन्दुरुळाये ।

पुवियाळ् तलैवने ! पोयिनै एगो ?
पुहलिलै योन्ड्रुम् तुयर् पोरुक् कल्लोम्
नवियायुत्-तवित्तनम् निन् पिरिवाले
तणियादिरुट्कडल् वीषन्दनम् वाडि
अविन्दनम् कण्णोलि उन् मरैवाले
आरुयिर् नीगुमुन् आण्डहै नीये
कविकदिर्क्-कप्पलायक् कात्तिड आर्त्ते
कदिरवने ! पळ्ळि एषुन्दरुळाये ।

पहैयिरुळ् वेन्दनाल् पट्टाय् शिरैयेनप्—
पारुरु मक्कल् पदैत्तुळम् शीरिप्—
पुहैयिरुळ् ऐदिर्त्तुप्-पुरिन्दनम् अरप्पोर्
पुरितोषिळ् मरुत्तुप् पडुत्तनम् शाह :
मुहैयिरुल् कण्डिदै अंजिये उन्नै
मुन्पोल् विडुदलै आहिडच्चेयूदान्
वहैयोळिदेवने ! नाट्टिनैक् काण
वळर कदिरे ! पळ्ळि एषुन्दरुळाये ।

तमिषमुडी

तमरूप दैत्य ने निद्रा-विष पिलाकर
जग समस्त को वशीभूत किया:
ज्यो प्राणहीन शरीर हो हाय!
लेट गया मानव-कुल शिथिल मूर्छित तब
तीक्ष्ण-कर-शूल से तम-पुरुष को तुम
विनष्ट करो औ' ज्योति-औषध से
जागृत करो मानव को, नया जीवन दो
ज्योतिर्मय कर दो विश्व को प्रकाश से,
आदित्य सूर्य, जागो हे महान्!

पृथ्वी कात ' तुम चले कहाँ '
शरण न और वेदना दुसह,
तड़प रहे हम हैं विछोह मे,
तम-सागर में डूब दुखियारे
तुम्हारे छिपते ही बुझा तेज आँखो का
तजे न प्राण हम, आओ पुरुषोत्तम '
किरण-पोत बन उबारने हमें।
आओ प्रभाकर, जागो हे महान् '

तमाधिराज के क़ैदी हुए तुम,
मानव-मन दहला, भडक उठे वे,
भिडे अन्धेर से, छोड सब काम-काज
करने हेतु धर्मयुद्ध लेट गए वे,
तमराज देख तब भयभीत हो उठा
किया तुम्हें भी स्वतत्र पूर्ववत्।
तेजोमय देवता! देश को निखारने
जोत-कर बढ़ा दो! जागो हे महान्'

तमिषमुडी

जुही

तरुणी के दन्त समान,
उजली जुही हरी बेल में,
खुली खिली कली रूप!
झूम-झूम हँस रही!

दक्खिनी बयार में,
नन्हीं जुही बालिका
समान मत्त नाचती,
बिखेरती, पसारती वह सब कहीं सुगन्धि भी।

भ्रमर को जुटा सराग
गीत गुंज छेड़कर
मस्त देखते के मन में
भाव-मधु उँडेलती।

अचल वृक्ष को भी वह
आश्रय-सा पा गई
आमरण उसीके संग—
संग ही निभायगी।

* पारि महाराज को भी मुग्ध किया,
पा लिया, उन्हींका रथ भेंट में
कौन है जिन्हे, जुही!
शोभा तेरी न मोहती?

---

* प्राचीन तमिष साहित्य तथा इतिहास में अपनी अत्यन्त दयाशीलता और दानशीलता, कारुण्य और औदार्य के लिए प्रसिद्ध, परबु कहलाने वाले भू-भाग के शासक पारिराज का यहाँ उल्लेख है। पारि के संबंध में यह घटना प्रसिद्ध है कि एक बार उन्होंने जमीन में निराधार और किसी पेड़ के आश्रय से दूर पड़ी जुही की बेल के लिपटने के लिए अपना राजरथ खड़ा कर दिया और स्वयं पैदल चल दिए। कवि यहाँ पर उसी घटना का स्मरण करता है।—अनु०

पूवैयर-उन-पूवैये
पोट्रि-क्-कून्दल शूड्डुवर
कावै अषहाय-च्-चेयूदुनै-क्
कविञर पाड-च्-चेयूदनै ।

कादलिक्कुम् कडवुट्कुम्
कनिन्द अन्बाल् शूट्टिडुम्
पोदाय् वन्दु तोनूरिड-प्-
पुनिदम् एन्न-शेयूदनै ।

पच्चै-प्-पोर्वै-तन्निले
पदित्त मुत्तै-प् पोनूरनै
इच्छैयाले उनै मुत्तम्
ईर्कि-च्-चेय्युम् एषिलुट्टाय् ।

वाषि मुल्लै ! वाषि नी !
वाष्त्तुम् शानूरोर वाष्त्तु-प्पोल
आषि शूषुम् उलहिनिल्
याण्डुम् ओंगि वाषि नी !

तमिषमुडी

सिंगार करती नारियाँ
तुझीसे अपनी वेणियाँ औ'
कविगण भी मानते हैं
कानन-सिंगार तुझे।

प्रेयसी की, ईश की
चढ़ाई प्रेम-भेट तू।
जुही! बनने फूल रूप
पुण्य क्या किये है तू'

हरी-भरी चादर मे
जडी हुई मुक्त-मणि
जुही! मन तो चाहता है
चूम लू, निहार छवि!

जुग-जुग तुम जियो जुही!
आशिष हम देते है
सज्जन की आशी: ज्यो—
'जल से घिरी पृथ्वी में
फूलती रहो सदा'!!

तमिऴमुडी

इमय मलैये !

इमय मलैये ! इन्बुशाल् मलैये !
निन् पेरुन्तोट्टमुम् निनूपेरुम् इरुप्पुम्
निन्मणिप्-पोरुळ्हलुम् निन् अशैविन्मैयुम्
कणूपोरु काट्चियुम् विणूपोरु माट्चियुम्
एमुमिदयत्तै एलिदायुक्-कवर्न्दनै ।

एम्पेरु निदिये ! इमय मलैये ।
शण्डै नडन्ददु, शलित्तनै अलै ।
मण्डै उडैन्ददु, महिषन्दनै अलै ।
पंजम् वन्ददु, भयन्दनै अलै ।
नेंजम् उडैन्ददु, नोहिषन्दनै अलै ।

मनिदन् आक्किय वजह इयन्दिरम्
मनिदनैक् कोन्ड्र् वहैयैप्-पार्त्तनै।
एल्लाम् नोक्किक्-कळायिनैयो ?
अन्ड्रि उलहम् अनैत्तैयुम् नामे
नल्लदु शेयुदुम् नन्नीर् तेलिप्पोम्

एन्रो पनिनीर् एषिल् पेरत्-तांगिनै?
वान ऊर्दियाल् वान् पोरुम् उच्चियक्-
काणप्-पोनाल् कडुमैयाच् चीरि
एन्रलैक् काण वरुमेवन् तनकुम्
तन्ड्रलै पोहच्-चावरम् अळिप्पेन्
एन्ड्रो तलैयिल् एरिमदि कोण्डाय् ?

हे हिमालय!

हे हिमालय! हे हिमाचल!
तेरा बृहद् आकार, तेरा महान् व्यक्तित्व।
तेरी रत्न-विभूतियाँ, तेरी अचल भावना।
नैन लुभाते दृश्य, लगते दिव्य, भव्य
आकर्षित करते सहज ही हृदय।

विभूति महान्! हे हिमगिरि विशाल!
युद्ध हुए, नहीं खिन्न हुआ तू,
मरे मिटे लोग, हँसा नहीं तू!
आया भी अकाल डरा नहीं तू!
दहल उठे दिल, गला नहीं तू।

मानव-निर्मित प्रवंचक यंत्र
मानव का अंत कर रहा कैसे—
देखकर पत्थर बना है तू?
अथवा अखिल विश्व को खुद ही
श्रेष्ठ सुजलयुत करने हेतु
सुहाना, हिम का नीर धरा तू?

नभ से सटता तेरा मस्तक
लखने वायुयान से आये
क्या क्रुद्ध हुआ तू? शाप दिया क्या?—
मस्तक मेरा जो भी देखे
मस्तक उसका और न देखे?

एन्नेन्नुरैप्पेन् एन् पशु मलैये !
वैरनोंजिनन् मनिद मुयच्चियिर्न्
शिहरमाय् त्तिहषुम् तेन्सिग निन्नुडै-च्–
चिहरम् कण्डान् शोन्र्दु वीरु !

वाष्हवन् नेजम्, मलर्हवन् मुयर्च्चि ।
नी उल्लुलवुम् अवन्पेयर निलैक्क ।
तोषिले इन्रित्-तुणैयुडन् नालुम्
कण्णीर विडुम् उलहिर्कुंत्
तण्णीर ऊट्रित् तविर्त्तल् निनु कडने ।

'नादि'

किन्तु बताऊँ क्या हे गिरिवर!
वज्र हृदय का है यह मानव—
उसके अथक परिश्रम का ही
जैसे सिरमौर बना, तेनसिंग
कर आया शिर-दर्शन तेरा
पाया नाम-मान-सम्मान।

हुआ हौसला पूरा उसका,
सफल परिश्रम, अमर बना वह,
उसका नाम रहेगा, जब तक तू है रहता।

फलतः हिमगिरि! तू अपना अब
फर्ज निभाना—काम रहित हो
अश्रु बहाते, विवश विश्व को,
शीतल जल की धार बहा
रसमय कर जाना।

'नादि'

कोडि परक्कुदु

कोडि परक्कुदु ! कोडि परक्कुदु !
कोडि परक्कुदु पारडा ।
कोणलट्र कोलिल् एंगल्
कोडि परक्कुदु पारडा ।

शिरै किडन्दु तुयरडैन्द देश भक्तर नट्टदु
धीरवीर शूरराम दैव भक्तर तोट्टदु
मुरै कडन्दु तुन्बम् वन्दु मूण्डुविट्ट पोदिलुम्
मुन्निरुन्दु पिन्निडामल् काक्कवेण्डुम् नामिदै ।

वीडिषन्दु नाडलैन्दु विनैयिषन्द नालिलुम्
विट्टिडाद देश भक्तर कट्टि निन्रुकात्तदु
माडिषन्दु कनरिषन्दु मनैयिषक्क नेरिनुम्
मानमाह नामुमिन्दक्-कोडियैक् काक्क वेण्डुमे ।

मनमुवन्दु उयिर् कोडुत्त मानमुल्ल वीररहल्
मट्टिलाद तुन्बमुट्रु नट्टुवैत्त कोडियिदु
दनमिषन्दु गनामिषन्दु ताषन्दु पोह नेरिनुम्
तायिन् मानम् आन इन्दक् कोडियै एनरूम् तांगुवोम् ।

नामक्कल वी. रामलिंगम् पिल्लई

झंडा फहरा !

झडा फहरा रहा रे !
झडा लहरा रहा रे !
झडा फहरा देखो !
तने खड़े खम्भे मे
झडा फहरा देखो !

झेल गये, त्रस्त हुए देश-भक्त वीरो ने
राम नाम प्यारों ने,
वीरों ने, शूरो ने,
रोपा है, परसा है, पाला है, पोसा है।

आन पडे कितने भी, कैसे भी संकट दुख
डट जाएँ, जुट जाएँ, भिड जाएँ, हटे नहीं।

घर छोड़ा, मग छोडा, छोडा सब काम-काज
पर फिर भी पत इसकी रक्खी शहीदो ने

स्वत्वो से अब हमको, धोना भी पड़े हाथ
रक्षा इस झडे की इज्जत मे करनी है।

खेल गये, खुशी-खुशी जान पर, सपूत वीर
झेल गये विपदाएँ, रोप गये झंडे को
तन जाए, धन जाए, जाए सब शानो-मान
माता की लाज बना झंडा नित थामेंगे।

नामक्कल वी. रामलिंगम् पिळ्ळै

शिवप्पु

कालैयुम् मालैयुम् वान्वेलियिल्—एन्नैक्
कण्डु मयंगिडुवान् कविञन्
शोलैक् किलियदन् मूक्किनिले—नन्गु
तोय्न्दिरुप्पेन् एषिल् वाय्न्दिरुप्पेन् ।

कोवैप् पषत्तिलेन् वण्णत्तिनैक्—कण्डु
कोत्ति महिषन्दिडुम् तत्तैहलुम्
पूवैयिन् मेल्लिदष् एन्नषहैक्—कोण्डु
बोदै वषंगिडुम् कादलर्क्के ।

एल्लै कडन्दुनीराडिडिनुम्—पल
इरवुहल् निद्दिरै ओडिडिनुम्
तोल्लै तरुम् कोपम् पोंगिडिनुम्—कण्णिल्
तोन्ड्रिडुवेन् शेव्वरि पोन्ड्रिरुप्पेन् ।

वेट्रिलै पाक्कुडन् शुण्णाम्बुम्—शेर
विन्दैयाय् नान् मुन्दि वन्दिडुवेन्
नेट्रियिल् कुकुमप्-पोट्टषहिल्—निन्ड्र
नेर्त्तियाय् मंगलम् शेर्त्तिडुवेन् ।

तोट्टु मुहर्न्दिडुम् रोजावुम्—एन्नैच्-
चूडि माहिष्न्दिडक् काणीरो ?
तोट्टदुम् शुट्टिडुम् तीक्कोषन्दुम्—एन्नाल्
जोति निरम् एन्ड्र ख्याति पेरुम् ।

लाल रंग

सबेरे और शाम नभ के मैदान मे
देख मुझे मंत्रमुग्ध हो जाता है कवि
कानन के शुक, उनकी चारु नासिका मे भी
भरा हुआ हूँ उसका सौन्दर्य बढ़ाता मैं।

बिम्ब के फल में भी वर्ण मेरे ही लख
चुगते हैं चाव से उन्हे भी तोते सब
मृदु अधर नारी के मुझसे ही भासते
औ' प्रेमी के मन में उन्माद जगाते है।

बहुत अधिक जल मे डूब नहलाने पर,
रात कई निद्रा रहित बिताने पर,
आपे से बाहर हो क्रोध भडकने पर,
आग की लपट सम ऑखो में भरता मै।

सुपारी पान औ' चूने के मेल से
अद्भुत रूप से मै पैदा हो जाता
माथे पै' मोहते तिलक-सिंदूर मे
मंगल सुहाग का चिन्ह दिखलाता मे।

कोमल, सुगन्ध भरा सुन्दर गुलाब भी
अपने में मुझको ही रखा मन मोहता
जलाती परस से अनल की लपट भी
भासती मेरे ही रंग से ज्वाला बन।

आशैयुम् पाशमुम् रत्तत्तिले—पोंगुम्
अर्पुदम् एन् निरत्-तिट्ट्पमन्ड्रो ?
ईशन् पडैप्पिनिल् एल्लोरुम्—समम्
एन्ड्रु कलप्पदुम् रत्तमन्ड्रो ?

कविप्पुलन् कोण्डन्नैक् कण्डुणर्न्द—अन्दक्
कम्बुनुम् कूड महिषवाने ।
शिवप्पु निरम् एन्ब देन्पेयरे—वाषविल्
शेम्मै अलिप्पदे एन् गुणमे ।

पुत्तनेरि आर. सुब्रह्मण्यन

प्रेम और ममता का रिश्ता है खून से
उभरता पर यह भी मेरे ही रंग मे
ईश की सृष्टि में एक हैं प्राणी सब
समता दिखलाना खून का रग ही

कवि मन से मुझको भी चीन्हा पहचाना है
*कम्बन ने उसका भी हूँ मैं ही मनभाया
लाल रंग है मेरा नाम और मेरा है
काम भी जीवन को रंगीनी देने का।

पुत्तनेरि आर. सुब्रह्मण्यन

---

* तमिष् का महाकवि।

मामर-क्-कन्नि

वरुहिनूरान वसन्तन् इगे वाट्टमेन एनूरुनक्कु
इरु शोविहल् तेन् पाय यारुरैत्तार नचोर्दै ?
पषकन्दै उडै नीत्तु-प्-पशुमै कोण्ड मामरमे !
अषहु-च्-चिरु कन्नियाहि विट्ट मायमेन्न

वसन्तन् उन्रन् कादलनै वरवेर्क, मेयूतोषन्
वसन्तसखन् आर्वमुडन् मलयत्ते पेटुवन्द
तेनूरल्-तेर वेल्लोट्टम् वरनाणि-च्-चिवन्दायो ?
शेन्रु वन्द कुयिर्वाणन् तीस् पाडल् केट्टायो ?
केट्टवुडन् मेय् शिलिर्क्क किषट्टाडे उदिर्न्ददुवो ?

तीट्टरिय पशुमंजल् शेम्पशुमै तास् कुलैन्द
पुदुप्पट्टु मेल्लाडै पोर्त्तुवन देवतै पोल्
मदत्तालिक्कुम् पूच्चूडि वण्डिनंगल् इशै मुरल
इळमै वनप्पेल्लाम् येयूदि नल्-काक्षि तन्दाय्
पळपळत्तु मिन्नि मिन्नि-प्-पहलवनिन् पोर्किदिरिल्

सहकार-कुमारी

आ रहा है बसन्त, उदासी क्यों ?
कानों में मधु बरसता
संदेसा कौन लाया ?
चिथड़े पुराने चीर
तज ताज़े बने हो सहकार !
सुन्दरी कुमारी रूप
हो गए। रहस्य क्या है ?

बसन्त करता तेरे
प्रीतम का मान्य स्वागत
औ' आया बसन्त सखा—
मलय से उसके लाये
पवन रथ चला इससे
लजाकर लाली लिये हो ?
प्रवास से लौटे चारण—
कोयल के गीत सुनकर
पुलक बढ़ी इससे
झर गया जीर्ण चीवर ?

हरित हल्दी रंजित
दुकूल ओढ़े वन की—
सुन्दरी रानी-जैसी—
मधु छलक कुसुम पहने,
मधुकर गुंजार भी ले,
यौवन की सारी ही श्री
पाकर लुभा रहे तुम !
चमक-दमक रवि की चारु
सुनहरी किरण में तुम

एन्नेन्न कर्पनैहल् एन्नहत्ते कूट्टुवित्ताय्
कन्नर्चुवै तेविट्ट-क्-कनियिन्बम् तरु तरुवे !
आण्डुतोरुम् येषिल् इलमै अडैहिन्र तन्दिरत्तै
ईण्ड्रेनकु-क्-कूरायो-इदयम् निरै कादलदो ?

पेरिम स्वामी तूरन

जाने क्या, क्या मन में
कल्पनाएँ हो जगाते ?
रसीले कपोल-जैसे
रसाल देते तरुवर !
यौवन पाते कैसे
प्रत्येक बरस मे तुम !
मुझे नही बताओ ?
क्या हिय-प्रीति ही वह ?

पेरिम स्वामी तूरन

पेशुम् देय्वम्

शिन्नं चिरियदोर वाय् तिरन्दु—मष़लै
शिन्दुहैयिल् मन-नोय् परन्दु
पन्नरुम् पेरिन्बम् आहुदडा—सिद्धर
पहर्न्दवेल्लाम् एंगो पोहुदडा।

वारियणैत्तदैक्-कोंजुहैयिल्—मत्त
मारिवष़गिडक् केंजुहैयिल्
मीरि उदैत्तिड कालिरण्डुम्—भक्ति
मेवि वणंगिडुम् ताळिरण्डाम्।

वा कण्णे, एनूरु कै नीट्टुहैयिल—पोक्कै
वाय् तिरन्दन्बु शिरिक्कुदडा।
शोहम् मुदर्पहै माय्न्दिडवे—अदु
शुट्टुप् पोशुक्कुम् पोन् मूरलडा।

नीराट्टिप्-पोटिट्टु मेनियेले—नल्ल
नीलप्पट्टाडैयैच चूट्टि-चिरु
तेरोट्टम् ओट्टि नान् काट्टहैयिल्—अदु
देय्वत् तिरुनालायुत्—तोन्डूदडा।

मोनत् तुयिल् कोलुम् पोदिनिले—इमै
मूडिक् किडक्कुकण्मीदिनिले
च् चुडरोलि़ वीशुदडा—देय्वम्
नण्णिवन्देन्-नेंजिल् पेशुदडा।

बोलता देवता

नन्हा-सा मुखडा खोल के
छिटकता तोतला बोल जब
दु:ख मन का दूर हो जाता तब
अकथ सुख कितना हा! हो आता
कथन सब संत का विसर जाता।

दुलारता अंक मे भर उसे
औ' बरसा चुबन पुचकारता
बलात् तब माग्ते पाद युग
लगते ज्यो भजनीय चरण युग!

कर बढ़ा उसको पुकारता—
लाल! अब अक में आ बसो—
पोपला मुख प्यारा हँस देता
दुख-दर्द मेटता मधुर हास!

नहला दे दिठौना भाल में
वसन नीला पहना उसे
खेल रथ का दिखला रहूँ
(तो) जम जाता रंग कुछ दिव्य ही!

मीठी जब नींद ले रहा होता
नैन पै' पलक जब बिछी होती
दीप्त मुख ज्ञान की जोत मे
प्रभु मेरे अन्तर आ बोल जाता।

कोण्डाडु वारिडम् कूडि निर्कुम्—अन्बु
कून्दवर् पाल् मनम् नाडि निर्कुम्
चण्डालर् नलुवर् एन्ररिया—नेंजम्
शार्न्दिडुम् पिलै एन् देयूवमडा।

मुडियरशन

अपनाते जन-मन से हिला रहता
स्नेही जन चित्त से मिला रहता
अच्छे-बुरे के भेद अनजान
बाल मेरा बोलता देवता रे !

मुडियरशन

शरुहु

उदिन्र्दु विषम् शरुहे !
　　उन्नैत्तान् केट्किन्रेन्
अदिन्र्दु विरैन्दोडादे
　　अंजि मरैन्दोलियादे ।

नेट्रुवरै आदरित्त
　　नीण्डमरम् इन्रुन्नैक्—
काट्रिल् परक्क विट्ट
　　कारणमुम् पुरियाविल्लै ।

पच्चैप्-पशुम् अषहुप्—
　　पात्तिरमाय् निट्रलुम् पोय्
इच्चैत् तवम् पुरियुम्
　　इरुडियैप्-पोल् वट्रिनैये ।

पोन्नुडलम् कण्डदुमे
　　पूरित्तुप् पोयिनैये ।
अन्नै मरम् शेय्द
　　अवच्चेयलैक्-कण्डायो ?

उलत्तुप्-पूरिप्पै
　　उडलम् वेलिक् काट्टत्—
तुलुहिन्द्र मानिडत्तै
　　एच्चरिक्कत्-तोन्ड्रिनैयो ?

सूखा पत्ता

झरते सूखे पत्ते!
तुमसे ही पूछता हूँ।
चौंक दूर न जाओ!
भय खा, छिप ना जाओ!

कल तक आश्रय जिसने
दिया वह तुंग तरु भी
आज हवा मे तुमको
उड़ा रहा भला क्यो?

हरे-भरे शोभायुत
पत्र रहे कभी तुम
इच्छा से तप करते
ऋषि सम सूखे कैसे?

देह सुनहरी पाते
ही फूल न समाये
माता-तरु की छलना
क्या तुम देख न पाये?

तन-मन से फूले-फूले
इतराते फिरते हैं जो
मानव उनको क्या तुम
चेताने निकल पड़े हो?

मुट्रिप्-पषत्त
मुदियोर् तम् नेटियैप्-पोल्
वट्रिच् चुरुण्डाय्
वहै मोशम् पोनाये ।

कायुन्द शरुहे !
कनल् नायहन् उन्नै-प्-
पायुन्दु तषवप्—
परवशात्तिल मूषहिनैयो ?

कालत्तिन् विन्दैयिनैक्-
काट्टुम् शरुहे निन्
ओलत्तै नेंजिल्
उणर्वार एवरम्मा ?

वी. दुरैसामी

परिपक्व वयस्क जनों के
माथे-जैसे तुम भी
सूख सिकुड गए हो
कितने वञ्चित तुम हो?

सूखे पत्ते! तुमको
स्वामी अनल लपककर
आलिंगन में लेते
कितना विवश तुम होते?

काल की चाल न्यारी
दिखाते सूखे पत्ते!
क्रन्दन विकट तुम्हारे
कौन ही जान पाता?

वी. दुरैसामी

मुनिविलर्

इंगु पल मदमुण्डु, समयमुण्डु,
एन्रालुम् अवैयेल्लाम् इव्वैयत्ते
पोंगिवरुम् अन्बु मिहु वाषवै-त्-ताने
बोदित्तु वरुहिन्र-वेन्बदुण्मै ।
इंगुपल विरिप्पदुमेन्? शुरुगच्चोल्लिन्
इव्वैयम् अन्बुमयम् इदैयुणर्त्त
एंगल् इलम् पेरुवषुदि मुनिवे इल्लार्
इरुत्तलान् इव्वुलहुण्डे-न्रुरैत्तान् ।

अन्बोन्रे उलहत्तै आक्कुमु, काक्कुम्,
अवनियिनै इयक्कुवदुम् अदुवेयाहुम् ।
अन्बहत्तिल् इल्लामल् इयंगुम् वाष्क्कै
अच्चाणि इल्लाद अष्हुत्तेरे ।
पुन्नहैयोडिन्नलैयुम् वरवेर्किन्र
पुत्तिळमै वषंगुवदुम् अन्बेयन्रो!
इन्न पिर पेरुमैयुल अन्बिन् एट्रम्
इयम्बवदुम् एळिदामो? एनिनुम् शोल्वेन्—

मनस्वी

धर्म अनेक, मजहब कई यहाँ
फिर भी,
तत्त्व सभी का एक है
बोध देते हैं सभी—

प्रेम मूल संसार, जीवन प्रेममय
अधिक क्या कहे, संक्षेप में यह
संसार प्रेममय—

यही जताने हो गए हैं
महापुरुष कितने ही
क्रोध-द्वेष-भाव-विरहित
मनस्वी उनकी कृपा है
पृथ्वी यह टिकी हुई है।

सृष्टि विश्व की, प्रेम से,
प्रेम से स्थिति,
जग संचालित
होता प्रेम शक्ति से ही

हिय में प्रेम-हीन हो जीवन-यापन
कीली-विरहित सुन्दर रथ सम—
मुस्कान-सहित विपदा-स्वागत
करने का साहस भी
देता है प्रेम ही।

और है कितनी ही प्रेम-महिमा
किन्तु सहज क्या कहना ?
फिर भी ब

एव्वुयिरायिनुम् इरंगुह एन्ड्र
शेव्विय बुद्दन्, देवदत्तानिन्
कोडुंजेयल् कण्डुलम् कुमैन्दिलन् । तन्पाल्
मुडुहिय कालै मुनिन्दिलन् । मेलुम्

उण्णुम् उणाविल् पहैयुलम् कोण्डोन्
पुण् पुलाल् कलन्दुम् पुहैन्दिलन् । उल्लम्
अरियादिच्चेयल् आट्रिनन् एनरु
पेरियोन् पोरुमै पेणिनन् । एनेनिल्
मुनिवै मुनिन्द मुनिवन् अदनाल्
उण्डाल् अम्म इव्वुलहम् अवनाल् ।

अन्बेनुम् मुरशोलि एंगुम् एषुप्पि
अनैवरुम् शममेन्ड्रेन्द एशुवैक
कन्नत्तरैन्दु, कारि उमिषन्दु,
इन्नल् विलैत्ते इरुदियिल् शिलुवैयिल्
अरैन्दु कोडुमैयिल् आषत्तिय पोदुम्,
अन्दो ! अरिन्दिलर् अवर शेयल् यादेन
एन्दाय् मन्नित्तिरंगुह अवर पाल्,

प्राणि-मात्र पर दया करो—
यह कहने वाले तथागत बुद्ध
देवदत्त के अदय कृत्य से
मसोस मन रहे—

उसके विरोध से
क्रुद्ध न हुए—
दुश्मन दूसरा
भोजन लाया गोश्त मांस का
पर जले न मन में
क्षमा दिखाई बडी अनोखी
कि अबोध, अजान है
वह मन से—
क्योंकि चित्त से दूर किये थे
द्वेष-क्रोध
मनस्वी बुद्ध
हुआ उन्हींसे है यह जग भी पावन कृतकृत्य।

प्रेम की दुन्दुभी सब कहीं बजा
समानता सब मानव-कुल की
समझाई मसीह ईसा ने
चपत लगा उनके गालों पर,
उन पर थूके और शूली पर
ठोक कीलों से
उन्हें सताया कितना ही
अत्याचार इतने सहकर भी
ईश से प्रार्थना की ईसा ने—
"परम पिता! कर दो क्षमा इन्हे

एनवे वेण्डिनर् इरैवनै। एनेनिल्
शिनमो मुनिवो शिरिदुम् कोण्डिलर्
अदनालन्ड्रो अवनि वाषन्ददु।

अडिमै वाष्वै अहट्रिच् चुदन्दिर
विडिविलक्रू कोट्रि विडुदलै तन्दोन्,

सत्तियम् अहिंसै सहिप्पुत्-तन्मै
नित्तमुम् वलर्त्तु नील्-पुहष् कोण्डोन्,
उत्तमन् गान्दियै उणर्विलि ओरुवन्

एत्तिनन् कालाल्। इन्नुम् केण्मिन्।
पंजयर वेल्लैप्-पावियर् अवरै
वेंजिरै-यिट्टु वेदनै तन्ददै
नेंजम् निनैक्क अंजिडुम् एनिनुम्
अवरेलाम् एनदु अरुमै नण्बर

एनवे एम्मान् इयम्बिननन्। एनेनिल्
पहैवर् माट्टुम् मुनियाप्-पण्बुम्
अन्बुम् पूण्डनन्। अदनालन्रो
उरिमै उणर्वोडुयन्र्ददिव्वुलहे !

अबोध हैं, कर्म अकर्म अनजान
दया से अपनी उबार लो इन्हे—"
क्रोध-विरोध न छू गया तभी
ईसा हुए है रक्षक जग के।

दूर की दासता,
स्वतन्त्रता शुभ जोत जलाई,
स्वराज्य दिलाया;
सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता
निरन्तर समझा, हुआ यशस्वी
उस महापुरुष गान्धीजी को
निर्दयी किसी ने मारी लात;
और भी सुनिए,
कायर गोरों ने
कारा में डाल उनको, सताया कितना ही
सोचकर अभी भी
मन काँप उठता है,
फिर भी हमारे
बापू ने बताया—
परम मित्र सभी, मेरे और तुम्हारे भी।
शत्रु के लिए मन में,
प्रेम औ' उदारता की
उनकी विशिष्टता से तो
प्रभावित औ' उन्नत जग!

पिरन्दार्हल् इरप्पुदुण्मै एनिनुमिन्दप्-
पेरियार्हल् पिरर्कैनवे वाष्न्ददालिगु
इरन्दालुम् इवरेल्लाम् इरवादागय्
एन्ड्रैंक्कुम् वाष्हिन्रार। मुनिवै अन्नोर्

तुरन्दार्हल्। एवर् पालुम् अन्बु काट्टत्
तुणिन्दार्हल्। अदनाले उलहम् उण्डेन्—
ररैन्दार्हल्। एगल् कुलम् कुरुवि काक्के
एन्बदुवुम् मुनिवारिया उलम् अन्रो?

इव्वुलम् कोण्डोर् इगे
एन् मुन्नोर् अदनाल् वाष्वु
शेव्वणम् वाषन्दार् पारिल्
शिरप्पिडम् पेट्रार् वाषिन्
इव्वहै वाषह वेन्र
इलम्पेरु वषादि वाषह!
एव्वुयिर् माट्टुम् अन्नाल्
इरांगियिव् वैयम् वाषह!

सामि. पष्नियप्पन

होता जन्म जिसका भी
मरता वह निश्चित है
फिर भी ये महापुरुष
परार्थ ही जी रहे
तभी मरण अनन्तर भी
ये अमर हो रहे
चिर जीव हो रहे
वीत-द्वेष-क्रोध होकर,
इन्होने किया निश्चल प्रेम
जग से, सब जीव जन से
और यह भी घोषित किया कि
प्रेम ही मे जगत् बसना!
द्वेष अजान वह हृदय ही तो
था जो कह गया बात कि
*'काग गोरैयाँ हमारी जात।'

पूर्वज हमारे थे
हृदय से इतने उदार!
धन्य, कृती उनका जीवन!
स्थान विशिष्ट विश्व में भी!
जीयें तो हम ऐसा जीये
ऐसा ही हृदय पाये!
प्रेम, स्नेह, ममता, करुणा का
भाव लिये विश्व विकसाएँ।—

सामि. पष्नियप्पन

---

* तमिष् के लोकप्रिय कवि भारती की उक्ति है।—अनु०

तॅ लु गु

चयन पिंगलि लक्ष्मीकान्तम्

अनुवाद : हनुमच्छास्त्री 'अयाचित'

कवि-नाम	कविता
अप्पलस्वामी पुरिपडा	प्राचीन योध-स्मृति
कृष्णमाचार्य दाशरथि	शिल्पी
चिरंजीवि	वधू
नरसिंहाचार्युलु वेमुगटि	धरती माता
नारायण रॅड्डी सी.	नागार्जुन सागर
मुरया	छोटे फूल
रजनीकान्त राव बालान्त्रपु	विद्युत्-प्रकाश
रमणा रॅड्डी के. वी.	सायं-संध्या
रामलिंगेश्वर राव तुम्मलपल्लि	निरुक्त
वॅंकटरावु बालान्त्रपु	भाव संकीर्त्तनमु
श्रीनिवासमूर्ति बॅल्लूरि	भाव-भागीरथी
सुब्बारावु रायप्रोलु	मन्मथावाह

प्राचीन योध-स्मृति

स्वर्णकान्त्युज्ज्वलम्मुलाशापथाल
नित्यकल्याणमुनु पच्चतोरणम्मु
लल्लु कॊन्नवि, मधुर मगल रवम्मु
लंबरमु नंटि पुल्करिंचिनवि नेडु

दिग्दिगंतालु मुखरितम्मुलुग जेसि
म्रोयुचुन्नवि विजय शंखारवमुलु
पल्लॆ पल्लॆल पट्टण प्रांगणाल
कुरियुचुन्नदि स्वर्गीय कुसुम वृष्टि।

अदॆ हिमाचल कांचन गंगशिखरि
शांत सत्यान्वितमुनु, धर्म प्रदम्मु
आसिया विश्वमुनकु नवोदयम्मु
मॆरयुचुन्नादि भरतनिकेतनम्मु

दैन्यमॆडलिन दीर्घनेत्रांचलाल
आश लानंद विजय दीप्तुलयिसाग
अरुगुदॆचिरि नैवेद्य हस्तुलगुचु
भरत पुत्रुलु नित्य स्वतंत्रुलिपुडु

ए पुरातन शापमो, एयुगाल
पापमो, इंत कालम्मु कट्टगड्डु
कुडुव कूडनु लेकुड गडपिनारु
भारतीयुलु जगदेक वत्सुलय्यु

आदिकिचॆड्ड ई भारत जाति मरल
तीर्चुकॊनु नौर रत्न नीराजनम्मु
विरिगि तरिगिन कल्याण मंटपाल
मातृपूजा पवित्र संकल्पदीक्ष।

प्राचीन योध-स्मृति

आज सकल दिशाओ में स्वर्णिल प्रकाश की रश्मियॉ
नित्य नूतन वैभव के साथ प्रसरित है
और मधुर मंगल गगन-चुम्बी विजय की शख-ध्वनियाँ सब दिशाओ को मुखरित करती है।
सब गॉवो और नगरो में नंदन वन के दिव्य कुसुमो की वर्षा हो रही है।

वह हिमालय के कांचन-गगा नामक शिखर पर
शांति, सत्य और धर्म का समन्वयकारी
एवं एशिया के नव भाग्योदय का प्रतीक,
भारत का झडा फहरा रहा है।

जिनके नेत्रो से दीनता दूर हुई
और विजय की आनद ज्योतियॉ निकल रही हैं,
भारत माता के वे स्वतंत्रता के पुत्र
अपने हाथो में नैवेद्य लेकर आए है।

न जाने किस पुरातन शाप से
अथवा युगों के पापो के वशीभूत होकर
विश्व-वंद्य भारतीयो ने अब तक
वस्त्र और अन्न के मुखापेक्षी होकर दिन बिताए है।

समुन्नत भारत जाति, जो आज दीन-दशाग्रस्त है,
मातृ-पूजा के पवित्र संकल्प से दीक्षित हो
शिथिल कल्याण मडपो मे आरती उतरवा लेगी।

हमारी चिरंतन भाग्य-राशियाँ
इस मंगल समय पर विकसित होकर शोभित होती हैं।
आज स्मृति-पटल पर विगत स्वतत्रता-सग्राम की बातें
एक-एक करके सजीव रूप में
चलचित्रो के समान दृष्टिगोचर हो रही है।

निद्रित भारत जाति को चेतना प्रदान करके जगाने वाले
महान् वैतालिक नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले,
बाल गंगाधर तिलक ये ही हैं।
ये लाला लाजपतराय हैं।
ये मोतीलाल नेहरू हैं।
चित्तरंजन यही हैं। यही देश-भक्त कोडा-वेकटप्पटया जी हैं।
ये ही नेताजी सुभाषचन्द्र वसु है। ये सब स्वातत्र्य-संग्राम के
ऐसे वीर सैनिक हैं,
जिन्होने कभी कदम पीछे नहीं हटाए।

पजाब में डायर ने भारत जाति पर
जो घोर अत्याचार किये थे, उनका स्मरण करते ही
हृदय कॉप उठता है और ये अपमान अमिट रहेगे।

यह कहाँ का रथ-घोष है,
जो हमारे हृदयो में युद्ध का नवोत्साह
पदा कर रहा है।
यह कहॉ के अश्वो की हिनहिनाहट है,
जिसे सुनकर सुप्त ककाल भी ताडव करने लगते हैं।
यह कहॉ का अद्भुत तरकस है,
जिसमें से अक्षय रूप से बाणो का संघात निकल रहा है।

शाश्वततुल् समकूर्चुनिय्येडन्

इदि सत्याग्रहरथम्मु, इदि अजेय
मिदि परिपाथि जनवशीकरण दक्ष
मे अहंकृतुलेनि वारिप निंडु
इदि वेनुक चूडबोनि अभ्युदयगामि

इदि सहायनिराकरण रणगीतम्मु
इदि बहिष्करण हुंकार रवमु
इदि विदेशदुकूल दहनयागक्रीड
इदि राट्नचक्र संक्रमण क्रांति
इदि सूत्रयज्ञ विज्ञान सदीपन
मिदि विश्राणनोन्मीलनम्मु
इदि सात्विकनिरोध मिदि अहिंसाव्रत
मिदि अनासक्तयोग प्रदीक्ष
इदि भारत जाति संधिचुकोन्न
गौरवपताक दिग्विजयम्मु कोरकु
एगुरु चुन्नदि तारा पथांतराल
पतन मेरुगनि मूडुवन्नेल ध्वजम्मु

मासि चेरगनि भरत जाति प्रतिष्ठ
तीर्चि दिद्दिति खंड खंडांतराल
दर्शनीयम्मु नीदर्शनमुसतम्मु
वंदन शतम्मु तल्ली पताकलक्ष्मि

मातृदास्य विशृंखलाच्छेदमुनकु
निडु प्राणमुलनु बलि वेट्टिनारु
नी सुशीतल चेलांचलमुल नीड
लक्षलादिग शांति सैनिकलु तल्लि।

अजेय हो शत्रुओ को अपने वश मे करने मे दक्ष है। सत्याग्रह का यह रथ ! कोई भी अभिमानी इसे रोक नही सकता। यह ऐसा अभ्युदयगामी रथ है, जो कभी पीछे मुडकर नहीं देखता हो।

यह असहयोग आदोलन का रण-गीत है
यह शासन-बहिष्कार की हुकार है।
यह विदेशी वस्त्रो का होलिका-दहन है।
यह चरखे की संक्रमणक्रांति है।
यह सूत्र-यज्ञ की वैज्ञानिक ज्योति है।
यह त्याग का उन्मीलन है।
यही सात्विक निरोध और अहिंसा का व्रत है।
यह अनासक्ति योग की दीक्षा है।
यह भारत जाति का गौरवप्रद तिरंगा झण्डा है,
जो दिग्विजय के लिए आकाश में फहरा रहा है
और जिसका कभी पतन नही होगा।

हे माते पताक लक्ष्मि ! तुमने भारत जाति की अमिट प्रतिष्ठा को
विभिन्न महाद्वीपो में फैलाया है।
तुम सतत दर्शनीया हो।
तुम्हें हम बारबार प्रणाम करते हैं।

हे माँ ! तुम्हारे शीतल अंचल की छाया में
लाखो शाति-सनिको ने अपनी माता को दासता की बेडियों से छुड़ाने के लिए
निज प्राणो की बलि दे दी।

देशदेशालनिखिल सागर तटाल
दर्शनीयम्मु नेडु नी दर्शनम्मु
सकल देश राज्ञीत्वलांछनमुनीदि
वदन शतम्मु तल्ली पताकलक्ष्मि

वीरु सत्याग्रहुलु, असहाय शूरु
ले निरंकुशु लेनि बंधिंप निंडु
निगलमुलु त्रेंचुकोनेंडु सैनिकुलु वीरु
चिर पराधीन शृंखलाच्छेदमुनकु
जीवित सुमाले धारवोसिरिदे वीरु

वीरि शिरमुल बडु शतघ्नुलसुमालु
वीरि गलमुल नुरित्राल्लु पूल सरुलु
बाधले भाग्यमुग नोंडि बट्ट जालु
भारताश्रम तरुण तापसुलु वीरु
कुरियदो नेडु मांगल्य प्रसव राजि
श्रीविराजिलु नीयोघशिरमुलंदु ।

इतडु बापूजि, बोसिनव्बुल तपस्वि
भारत महास्वतंत्र रणांगणमुन
सर्वसेनानि, सत्याग्रह-प्रणेत
सर्व सर्वंसहा परित्राण कीर्ति

–ई अवतारमूर्ति नोंगिलिंपडु शात्रव मानसम्मु द्वे
षिंपडु आततायिनयिनन् परपीडन सैपलेडुम्रे
मास्त्र मदोंकटे इतनि
पाशुपतास्त्रसु गॅल्चे काक ऍ
त्रंडुनु ओटमिन् गुरु
तेंरुंगडु ईतनिकिन् नमस्कृतुल्

हे मातृरूपी पताक लक्ष्मि !
देश-देशांतरो और सागर-तटो पर
आज तुम्हारे दर्शन हो रहे हैं।
तुम सर्व देशो की रानी बनने योग्य हो।
तुम्हे बारंबार नमस्कार है।

ये सत्याग्रही शूरवीर है।
चाहे कोई निरंकुश पालक इनको बधन में डाल दे,
फिर भी ये इन बेड़ियो को तोड़कर स्वतंत्र होने वाले वीर सैनिक हैं।
इन्होने तो चिर परतन्त्र शृंखलाओ को तोड़ डालने के लिए
अपने जीवनकुसुमो का बलिदान कर दिया है

इनके सिरो पर बरसने वाली शतघ्नियॉ भी
इनके लिए पुष्प-वर्षा के सदृश हैं।
इनके गलो मे पड़ने वाली फॉसी की रस्सियॉ भी पुष्प-मालाएँ हैं।
भारत रूपी पुण्य आश्रम में ये तरुण तपस्वी वीर हैं,
जो कष्टो को अहोभाग्य मान लेते हैं।
श्री शोभित इन योद्धाओं के सिर पर मंगलमयी पुष्प-वर्षा अवश्य हो।

ये बापूजी हैं—पोपली हँसी के तपस्वी—
ये भारत के स्वातन्त्र्य-संग्राम के
सर्वसेनानी तथा सत्याग्रह के प्रणेता हैं।
इन्होने सारी दुनिया के रक्षक के रूप में कीर्ति पाई।

ईश्वर के यह पवित्र अवतार शत्रुओ को भी दुःख नहीं पहुँचाते।
अत्याचारियो पर भी द्वेष नही रखते।
पर-पीड़न से कातर हो उठते हैं।
प्रेम ही इनका एक-मात्र अचूक अस्त्र है।
इन्होने कभी किसी का लोहा नही माना।
इनके चरणों में हमारा श्रद्धापूर्ण नमस्कार है

इदि दंडीपवित्र वेलास्थलम्मु
विजय हारम्मु गलमु संधिंचुटोंडे

देशदेशाल मृष्टान्न वितरणमुन
मीदु चेयिग ब्रतिकिन भरत जाति
सलुपु कोननय्ये उप्पु सत्याग्रहम्मु
तन महोदधि तीरकेदारमुननें

इदि श्रीकृष्ण जन्मस्थलम्मु, इचट
एड कन्नेरुंगनि सुकुमार जनमु
कठिन वरकम्मुलनु सयिरिंचु कोनुनु
चिरु नगवु लाननम्मुन चेरगनीक

विप्लवदवाग्नि वेयि नाल्कलनु चाचि
भू नभोंतरालम्मुल बुगलु कोनग
"इंडिया विडिपोंडु श्वेतांगु" लनुचु
निनदभीषण देवदत्तंबु म्रोगु,

इदि विजय-पर्व मेनाटिदी प्रतीक्ष
संस्करण शून्यमम्म वेणीभरम्मु
पुष्पगुंफित मीवेल, उभयसांध्य
लरुणिमुमु पूयु नेडामे चरण लाक्ष

तीर्चि दिद्दिन मायम्म तिलक रेख
दुर्निरीक्ष्यम्मु नेडु, कोटीर दिव्य
मणिमयूखम्मु कोटि भानूदयम्मु
एलु कोनुनेमो मूडुलोकालु तलि

अप्पलस्वामी पुरिपंडा

यह डॉडी की पवित्र वेला है,
जहॉ महात्मा जी ने प्रतिज्ञा की थी कि
या तो कंठ-सीमा में विजय की पुष्प-माला अलंकृत होगी
या मृत शरीर सागर में तैरने लगेगा।

देश-देशान्तरो में मिष्टान्न का वितरण करते हुए
जिस भारत देश का हाथ ऊपर रहा था,
वह आज अपने सागर के तट पर के क्षेत्र-खंडो में
लवणसत्याग्रह कर रहा है।

यह श्रीकृष्ण का जन्म-स्थान है, जहॉ
असूर्यम्पश्य सुकुमारजन
मधुर मद हास से लसित वदनो से
कठोर दड का भोग कर रहे हैं।

जब विप्लव की दावाग्नि ने अपनी सहस्र जिह्वाओ को फैलाकर
पृथ्वी और गगन को घेर लिया
तब देवदत्त की यह भीषण ध्वनि सुनाई पड़ी
कि "ए श्वेतजनो! भारत छोड़ जाओ!"

आज विजय पर्व है। इसके लिए हमारी कब की प्रतीक्षा है।
हे माते! तुम्हारा असंस्कृत केश-जाल
आज पुष्पालकृत है। दोनो संध्याऍ
माता के चरणो के लाक्षारस से अरुणारुण हो रही हैं।

मेरी मॉ का सुदर तिलक
आज दुर्निरीक्ष्य है, जो करोडो दिव्य
मणियो के समान तथा करोड़ो सूर्यों के उदय के समान सुशोभित है।
प्रायः आज हमारी माता तीनो लोकों का शासन करने वाली है।

अप्पलस्वामी पुरिपंडा

शिल्पि

चागिलदीसि ई कठिन शैलशिलावलि
पाडि तीवेगा
लागेद वेट्टुलन्न नट्टुलन्
शिलके गिलिगिंतगा ऍलो-
रा गुहलन् मलचिन विलासपु
नीयलि मुक्कु लोपलन्
दागिलि मुच्चुलाडे नवताविलसत्
कवितावतारमुल्

रालु वरालु चेसेंडि विलासमु
नीयुलिलो कुदिंचि, दे-
वालय गोपुराग्रमुल यंदुकलामति पेंचि,
पर्वता-
ग्राल सुरांगना नटन कै
रस शाललु सतरिंचि, का-
व्यालकें रूपुदिंचिन
महामति ! शिल्पकला पुरोगती

निनुगनि कोंडलन्नि रमणी-
कुचपालिकलै कपोल मो-
हन फलकम्मुल भ्रुकुटुलै
कुटिलालकजालमै सुरां-
गनलयि रूपुदिद्दुकोनगा
उलितो अमृतम्मु चल्लि जी-
वनमुलु पोसि पोयेदवु, अन्नपु
शिल्पि कुलावतंसमा !

शिल्पी

हे शिल्पि, तुम इन कठोर पहाडी पत्थरो को
अपनी इच्छानुसार विलासिनी छैनी से सुनहले तार के समान
बढाते हो
और पत्थरो मे भी गुदगुदी पैदा करते हो।
एलोरा की गुफाओ के नित्य नूतन कविताओ के अवतारो ने
ऑख मिचौनी खेली।

हे शिल्पि कला के अग्रदूत ! हे महामति ! तुमने अपनी छैनी
में वह शक्ति भर दी है,
जो पत्थरो के हीरे बना सके।
तुमने मदिरो के गोपुर-शिखरो पर
सुंदर कला-कृतियो का निर्माण किया और पर्वत शिखरो पर
अप्सराओं के नृत्य के लिए मधुर रस-शालाओ की
कल्पना करके
सुंदर काव्यो को रूप प्रदान किया है।

हे शिल्पिकुलावतस ! तुम्हे देखने भर से सभी पर्वत अपने-
आप रमणियो के कुचो,
मोहन कपोलो, भृकुटियो और अलकावलि का रूप धारण करके
अप्सराऍ बन जाते हैं और अपना रूप सँवार लेते हैं तो तुम
ब्रह्मा बनकर अपनी छैनी से
उन पर अमृत छिडकाकर जीवन-दान देते हो।

सुत्तेल दाडिदेब्बलकु
सुक्किन कोंडल पिंडुलेल्लनो
रेत्ति येलुंगु वेट्टे निपु-
डीवेटुवंटि मनोज्ञ रूपक
बेत्तु मटन्न नेत्तमटे! येंदुल
किट्टुल मट्टिमाट्टिगा
मेत्तेदवोयि शिल्पिकुल
भुषण। शैलशिला प्रपेषणा

चेक्किन रातिकबसुलु
चिंदोडि मंजुल मोहन स्वरा-
लुक्कुनरालपै पलुकु
लोत्तिन रीति ध्वनिंचुनंट ए-
लेक्कलते उलिन् गिलकरिंचितिवो
शिल्पै कलानिधी
अक्कट रातिलो हृदय मद्दितिवो
रस राग सृष्टिकै

वेन्न वलेन् करगुनु स्रविंचुनु
वेच्चनि कटिनीटिगा
निन्नगपालि, क्रोम्मेरुगु
लीनुचु शिल्प कला विलास स-
पन्नत गुल्कुनीयुलिनि
बट्टिन मोहन बाहुदंडमुन्
गन्नपुडेल्ल; येंत मोन-
गाडवुरा शिलने करंचगा

पत्थरो को चूर-चूर करने वाले तुम्हारे हथौड़ो की कड़ी चोटो से
कृशीभूत पहाड़ियॉ चिल्ला-चिल्लाकर कहती है कि
हे शिल्पिकुलभूषण ! तुम जैसा मनोहर रूप लेने का आदेश
दोगे वैसा रूप धारण करने को हम प्रस्तुत है।
तब हमे इस प्रकार क्यो चूर-चूर कर रहे हो ?

हे कलानिधि ! तुमने पत्थर खोदकर जो खभे बनाए हैं, उनसे
ऐसी मधुर ध्वनि पैदा करते है,
जैसे इस्पात के तारो से निकलती है।
कठोर शिलाओ पर न जाने किस अनुपात से तुमने छैनी
चलाई है
कि वह ऐसा विदित होता है कि रस-राग की सृष्टि करने के लिए
तुमने अपना हृदय निकालकर पत्थर मे चिपका दिया हो।

हे शिल्पि ! तुम्हारी उस सुदर भुजा दण्ड को देखकर
जिसमे तुम अपनी चमकीली और कला-वैभव से भरी हुई छैनी
लिये हुए हो,
ये सभी पहाड़ियाँ नवनीत के समान द्रवित होती है और ऑसू
बनकर बहती हैं।
वाह ! तुम्हारा भी कैसा पौरुष है कि जो प्रस्तरो को भी गला
देता है।

प्रतिविकाराशिल्यु प्रतिमयै वॅलुगॉंदु
पडातिवोलॅ कुलिकि वलपु रेपु
नीकरावलंब निभृतमैनपुडॅह्लु
रातिरातिलोन नाति तोचु

कृष्णमाचार्य दाशरथि

तुम्हारे कलापूर्ण करकमलो में पडकर
प्रत्येक प्रस्तर-खंड एक सुदर प्रतिमा के सदृश बन जाता है
और नवयुवती के समान दर्शको के हृदय को
गुदगुदाकर राग-रंजित करता है।

कृष्णमाचार्य दाशरथि

वधुवु

पयनमाये वधुवु पति इंटिकि
प्रणय रुचिर मधुवु वरुनिटिकि
वाकिट मल्लेल मॉग्गलु
वकुलमुलंदपु मुग्गुलु
परिचय वशमुन पाडेनु
विरह गीति वीडुकोलुनु
पयनमाये वधुवु पति इंटिकि
विडनि ममत लुडुग लेक
तडवडि मुंदडुगु राक
तल्लडिल्लॉडि तल्लियॉडिनि
चल्लॅनु कन्नीटि जडिनि
पयनमाये वधुवु पति इंटिकि

मरुवकु मनि चतुरुलाडि मरल मरल ममतलाडि
नॅरपॅ मेलि लालि तनमु इरुगु पॉरुगु सखीजनमु
पयन माये वधुवु पति इंटिकि :

पदिलमु नी कापुरमनि पॅद तल्लियु निडॅ दीवॅन
बिड्डु नॅत्तवलॅ सुम्मनि पिनतल्लियनॅ प्रेमुडिनि
पयनमाये वधुवु पति इंटिकि :

वधू

प्रणय मधु—वधू—अपने पति के घर चल पडी।
आँगन में चमेली की कलियाँ
मौलिश्री के पुष्पो और सुन्दर चौक पूरनो के
परिचयवश विदाई के गीत गा रही थी।
अटूट ममता तोड़ नही पाती।
लडखड़ाती हुई आगे कदम नहीं बढा पाती।
व्यथित होने वाली माता की गोद में अपना मुँह छिपाकर
आसुओ की झड़ी बहाने लगी।

अडोस-पडोस की सखियो ने यह कहकर—
"हमें विस्मृत करना नहीं"—
चुटकुले छोड़े और बार-बार अपनी ममता जताई—
लाड़-प्यार किया—

काकी ने आशीर्वाद दिया है कि
"अपनी गृहस्थी को सँभाल लेना।"

पॅद्ददि मुत्तयिदुवु जत
दिह्ग.पाराणि पूत
तट्टुकुन 'चॅदरॅनु तलपुलु
चिटि काटुक कन्नीलुलु
पयन मायॅ वधुवु पति इंटिकि :
शुभ शोभित पोयि रम्मु
लाभमु तो मगिडि रम्मु
अनिरि गद्गद भाषिणुलु
कनिरि साश्रु जलनयनलु
पयनमायॅ वधुवु पति इंटिकि :

गुडि गटल गण गण रुति
कॉडॅल मॅड मुव्वल श्रुति
श्रावण जलधर रीतिनि
सागॅ बंडि मंदगतिनि
पयन मायॅ वधुवु पति इंटिकि :

बंडि बाट मलुपु मरलॅ
अत कत नायॅ नॅडमु
आत्मीयत लॅसगु गृहमु
पयन मायॅ वधुवु पति इंटिकि :
विडचि तटाक तट पथमु
कडचॅ ताल वनांतरमु
क्रम क्रममु स्व ग्राममु
कनु मरुगौ पोयॅ दिवमु
पयन मायॅ वधुवु पति इंटिकि :

चाची ने प्रेमभरे शब्दो में आशीर्वाद दिया
"पुत्रवती भव!" एक वृद्धा सौभाग्यवती स्त्री
जब उसके चरणो मे महावर लगा रही थी
तब उसके कज्जल-पूर्ण नयनो से अश्रु टपक पड़े।
सखियो ने गद्गद् वाणी में कहा,
"हे कल्याणि!—पति के यहॉ जाओ—"
उनके नेत्र अश्रु-सिक्त थे—

मदिर की घंटियो की क्षुद्र टनटनाहट—
बैलो की क्षुद्रघटिकाओ की रुन-झुन
श्रावण मेघो के समान मदगति से—
गाड़ी आगे बढी—

रजत पर्वत के चन्द्रमा के समान—
गाडी शहर के मोड पर मुडी—
उसका प्यारा गृह—
धीरे-धीरे दूर होता गया—
तड़ाग के तीर पर का माग छोड़कर—
ताल वन को भी पार कर के गाडी आगे बढी—
धीरे-धीरे उसका ग्राम और दिन भी ऑखो से ढलते गए—

मदानिलमुलु हसिचॆ
मरल नॊडलु पुलकरिचॆ
ऎडद गादिसॆ मगनि रूपु
वॆडलॆ बॆदवुल चिरु मॆरपु
पयन मायॆ वधुवु पति इंटिकि :
पयन मायॆ वधुवु पति इंटिकि
वालुगनुल वधुव वरुनिंटिकि :

चिरंजीवि

३८९

तॅलुगु

मद समीर हॅस पडा--
शरीर रोमांचित हुआ—
पति का रूप हृदय मे प्रतिभासित—
ओठो पर बिजली की छोटी रेखा—
तिरछी चितवन वाली दुलहन
पति के यहॉ चल पडी—।

चिरंजीवि

नेलतल्लि

नीगुर्डेलो कोटि नागल्लु नडिपिचि
रैतुलु मधुरान्न रासुलॅत्त
नी शिरम्मु लक्ष नील नीरदमुलु
चिनुकुमुत्यालु वर्षिंचि पोव
नीमोविलो वाहिनी सहस्रमु जारि
अमृतपूरम्मु नदजेय
नीकन्नुलंदनताकाश तारकल
वॅलुतुरु तोरणम्मुलु रचिंप
युगयुगम्मुल भारम्मु नोर्चु कॉनुचु
विश्वजीवन रथमुनडिपिचु कॉरकु
अतुकु सर्वमु पचि पॅट्टॅदवु गादॅ
नीकु जोहारु वेयारु नेलतल्लि

वच्चिन मव्वु दॉतरल-
वद् सुधामधुरांबुधारलन्
विच्चमु पट्टि बुव्व दिनिपिंचि-
कुमारुल वॅचुचुन्न ओ
पच्चनि तल्लि ! पुन्नेमुलु
पडिन नीचरणम्मु गॉल्वगा
तॅच्चिति तॅल्गु कानुकलु
तीयनि काव्यकला प्रसूनमुल्

धरती माता

हे पृथ्वी माता ! तुम्हारी छाती पर करोडो हल चलाकर
किसान मधुर अन्न की राशियाँ उत्पन्न करते है।
तुम्हारे सिर पर लाखो मेघ
वर्षा की बूँद रूपी मोती बरसाकर चले जाते है।
तुम्हारी गोद में हजारो नदियाँ
बहकर अमृत रूपी जल भरती हैं।
तुम्हारी आँखो में अनत आकाश के तारे
प्रकाश के सुन्दर बदनवार रचते है।
तुम युग-युगो का भार सहन करती हुई
विश्वजीवन के रथ को आगे बढाने के लिए
अपना सारा जीवन वितरित करती हो।
तुम्हे सहस्राधिक नमस्कार हैं।

आकाश मे मँडराए हुए मेघ-समूहों से
अमृत रूपी मीठे जल की बूँदो की भिक्षा लेकर
अपने बच्चो को खिला-पिलाकर पालने वाली हे करुणामयी सस्य
श्यामला माँ !
तुम्हारे पुण्य चरणो में तेलुगु के मधुर कवितारूपी प्रसून चढ़ाने
लाया हूँ।

अनल कणमुलु चॅरुगु मार्ताड चंड
किरण गणमुलु सोकि शुष्किंचिपोव
निन्नु गनि कॉंडरेनि गुंडॅलु द्रविंचि
वागुल पारि नीदु तापमुनु मान्पॅ

नीवु वॅच्च वॅच्चगा विह्वलिंचिन
कड गलुगु नरुल गुॅडॅ लॅडु
नीवु पच्च पच्चगा वॅल्गु नप्पुडु
करुवु पोयि पसुल कडुपु निंडु

श्रावण मेघमालिकल
चक्कनि चिक्कनि नीलिनीड नी
पै, विहरिंचि वच्चि नव वर्ष कणम्मुलु चल्लि
नीमॅयिन्
प्लावन माचरिंपग हलम्मुन
नीमुख मदु भाग्य-रे
खा विसरम्मु दिद्दुरु कार्दॅ
कृषीवलुलिपुमीरगन्

कॉळत कदनि नीगर्भ गोल सीम
त्रव्वि चूचिन माकु दर्शन मॉसंगु
तरतराल पुराचरित्र द्रविणमु
युगयुगाल जगत्कला निगमराशि

वलपु दोयिलि वट्टि पडुचु कन्नॅल वोलॅ

अग्नि-वर्षा करने वाले सूर्य के किरण-जाल के ताप से
जब तुम सूख जाती हो
तब तुमको देखकर पर्वतराज का हृदय पिघल जाता है
और वह छोटे-छोटे स्रोतो के रूप मे बहकर
तुम्हारे ताप को दूर करता है।

जब तुम वेदना के वश विह्वल हो जाती हो
तब हृष्ट-पुष्ट मनुष्यो के प्राण भी सूख जाते हैं।
जब तुम हरी-भरी हरियाली से लहलहाती हो तब अकाल दूर हो जाता है
और पशुओ का पेट भर जाता है।

जब सावन के मेघो की घनी और कोमल छाया
तुम पर छा जाती है और जब वे वर्षा के नव बिंदु-कणो को तुम्हारे शरीर पर छिड़ककर
तुम्हे प्लावित करते हैं तब किसान अपने-अपने हल लेकर
तुम्हारे मुख की भाग्य-रेखा को सवारते हैं।

जब तुम्हारे अगाध गर्भ को खोदते हैं
तब हमें युग-युगो का प्राचीन इतिहास रूपी धन
तथा युग-युग के संसार का कला-वैभव दर्शन देता है।

पूल तोटलु चॆल्वु पोहळिप
नम्र भावम्मुनन् दनरि साधुल तीरु,
पड्ड तोटलु सुख प्रदमु गाग
निलु वॆल्ल माधुर्य मौलिकि कतल रीति
चॆरकु तोटलु सुधा झरुलु गुरिय
पसुपुवन्नॆल पॆड्लि पंदिळ्ळ मादिरि
वरिचेलु नेत्र पर्वम्मु सेय
जलमु सोकिन तनु वॆल्ल पुलकरिंचि
हलमु दाकिन पटल पलकरिंचि
कणकणम्मुन बगारु काणिक लॆत्तु
वसुमती नीवु सार्थकाह्वयवु निजमु

नरसिंहाचार्युलु वेमुगंटि

तुम्हारे पुष्पोद्यान प्रेमाजलिबद्ध युवती कन्याओ के समान
अपनी निराली छटा दिखाते है।
नम्र साधुओ की भॉति फलोद्यान अवनत होकर सुखप्रद होते हैं।
इक्षु-वन आमूल चूड मधुरिमा से छलककर कविता की तरह
अमृत के झरने बहाते है।
धान के क्षेत्र पीले-पीले वैवाहिक वितानो के सदृश
नेत्र-रजन करते है।
जल-स्पर्श होने पर तुम्हारा शरीर रोमांचित हो उठता है।
हल लगने पर उपज उभर उठती है।
कण-कण में सोने की शलाकाएँ प्राप्त होती है।
इस प्रकार तुम सार्थक नामधेया वसुमती हो।

नरसिंहाचार्युलु वेमुगंटि

नागार्जुन सागरमु

इक्ष्वाकु वंशाक्षि-
तींद्र चद्रुल कीर्ति-
कौमुदुलु नल्गडल
कलय विरिसिन नाडु
कृष्ण वेणी तर-
गिाण पयः किंकिणुलु
त्रिशरण क्वाणाल
देसल निपिन नाडु
श्रीपर्वताग्रम्मु
सिहलागत बौद्ध
भिक्षुवुल विज्ञान
पीठकम्मगु नाडु
सिद्धार्थुनि विशुद्ध
सिद्धांत बीजमुलु
शाखोपशाखलै
सागि पोयिन नाडु
नेनु जीविंचि यु-
न्नानचु भाविंचि
पलिकितु गेय का-
व्यमुनु हृदयमु पेंचि

आदिगों कृष्णम्म न-
व्याप्सरोंगन भंगि
नडयाडे नांध्र भ
नदनोद्यानमुन
अल्लदुगों कृष्णवे-

नागार्जुन सागर

इक्ष्वाकु वश के
राजचन्द्रो की कीर्ति-चन्द्रिकाएँ
जब चारो दिशाओ में
फली थीं,
अपनी मधुर ध्वनियो से
सारी दिशाओ को भर दिया था,
श्री पर्वत
जब सिंहलदेशागत बौद्ध भिक्षुओ का
विज्ञान पीठ बना था,
जब सिद्धार्थ के विशुद्ध
सिद्धांत-बीज
बड़े-बडे वृक्ष बनकर
फैल गए थे,
तब मै अपने को
विद्यमान मानकर
अपने हृदय का विस्तार करके
गीत-काव्य लिखता हूँ।

लो, देखो! कृष्णा नदी
नव अप्सरा के समान
आंध्रभूमि के नदन वन में टहलती है।
लो दर्शन करो!
कृष्णा नदी द्रवमान बौद्ध धम के रूप में

णम्म विद्रावरू-
पमु दाल्चि नट्टि बौ-
द्धमुवोलॅ कदलाडॅ
आमॅ ऑकसारि मन-
सार पॉंगिनचालु
इनाडु कुंगिपो
यिन शातवाहनुल
वैभवोन्नति मिन्नु
वाकतरगल दाकु
आमॅ ऑकमारु नो
रार पल्किन चालु
पदि वेल किन्नरलु
पदिवेल किन्नॅरल
हृदय तंत्रिकल म्रो
यिचिनटुलनिपिचु
आमॅ ऑक पर्यायि
मदरि पॉंगिपोयि चालु
अमरावती मंदि-
रांतर शिला शय्य
लंदु निद्दुर लेचु
अप्सरो भामिनुल
मॅयि विरुपुलॅ तोचु
हॉयलु मॅरुपुलु वीच

बहती है।
वह एक बार बढे तो
अवनंत शातवाहनो की वैभवोन्नति
आज भी उसमें
आकाश-गगा की तरगो से स्पर्श करेगी।
वह एक वार
मुख खोलकर गर्जन करे तो
ऐसा विदित होता है कि
मानो सहस्रो किन्नर और किन्नरियॉं
वीणाओ के हृदय-तारो को
झकृत करते हो।
वह एक वार
चौंक पड़ेगी तो
ऐसा मालूम होता है
कि अमरावती के मंदिरान्तर्गत शिलारूपी
शय्याओं से जाग पड़ने वाली
अप्सराओ के शरीर की लचक हो
और सौंदर्य की बिजली

आमॅ कन्बॉमल कॅन
यैन चापमु लेदु
आमॅ तरगलु पॉंद
नट्टि रूपमु लेदु
ज्योत्स्नाभिसारिकल
सुमनोज्ञ वसनांच
लमुलु सन्ननि गाड्पु
लकु चलिचिन यट्टुल;
शरदंबरमुन पि
जलु पिजलुग वीचि
मॅल मॅल्लग सागु
मेघ मालिक लट्टुल;
आमॅ कॅरटालु चि
त्राति चित्रमुलैन
गतुलतो पयानिंचु
कवितले यनिपिंचु

बोधिसत्वुनि मूर्ध
मुनु सदा परिवेष्ट-
नमु सेयु दुर्निरी-
क्ष्य महोर्मिलहरुलट्लु :
शाक्यर्षि कडकंटि
चायलंदुन वॅल्ल
वलुदुकु करुणार्द्र
ललित भावनलट्लु :

दाडती हो।
सुदर चाप भी उसकी भौहो के समान नही हो। ऐसा कोई
रूप नहीं है
जिसे उसकी तरंगो ने न ग्रहण किया हो।
उसकी लहरें ज्यो अभिसारिकाओं के
मंदवायु में हिलने वाले कोमल वसनाचल के समान,
शरदाकाश मे रुई के समान
धीरे-धीरे आगे बढ़ने वाले मेघो की भॉति,
चित्र-विचित्र गतियों से बढती है।
ऐसा भान होता है कि
वे स्वय कविताएँ हो।

उसकी लहरें बोधिसत्त्व के सिर पर
सदा परिवेष्टित
एवं दुर्निरीक्ष्य तेजोमय लहरो के समान
तथा उनके अपांगो की छाया में
लहराने वाली

आमॆ कॆरटालु दि-
व्याति दिव्यमुलैन
रूपुरेकलु दाल्चु
चूपुकदक निल्चु

आमॆ यॊडिलोन नि-
द्रावस्थ लोनुन्न
शिशुवल विधान प-
व्वि वयलॊप्पारु
आमॆ दक्षिण हस्त
मदि कॊनि पवलिच्चु
श्री पर्वतुडु रा-
शीभूत सहनुडु
नागार्जुनुनि पद
न्यास मात्रमुचेन
श्रीपर्वतुंडु वॆन्नॆ
लै, पोयि विलसिचॆ
नागार्जुननि बोध-
ना सुधाधुनि लोन
श्री पर्वतुडु वॆन्न
यै पोयि विकसिंचॆ
नागार्जुनुनि मेध-
लो गट्लु तॆगि पारु
विज्ञानमु रसाय-
नज्ञानमै पॊंगॆ

करुणार्द्र भावनाओ की
तरगो के सदृश अत्यधिक दिव्यरूपो को
धारण करती हैं
और दृष्टि से ओझल होती हैं।

उसकी गोद में
हरे-भरे मैदान निद्रित शिशुओ की भाँति
शोभित हैं। उसके दाहिनी ओर
सहनशीलता की राशि
श्रीपर्वत स्थित है। नागार्जुन के पदार्पण-मात्र से
श्री पर्वत चद्रिका-सदृश
शोभित हुआ है।
नागार्जुन के
उपदेशामृत की ध्वनि मे
श्री पर्वत नवनीत के रूप मे
विकसित हुआ है।
नागार्जुन के मस्तिष्क मे
असीम वैभव के साथ
विज्ञान रसायन-ज्ञान के रूप में
उमड पड़ा।

नागार्जुनुडु चूपि
नट्टि नूत्न पथम्मु
बौद्धमत सौध स-
म्प्राप्ति सोपानम्मु
नागार्जुनुनि पट्टल
ननलॆत्तु भक्ति स-
भ्रममुलो तनपेरु
मरचॆ श्री पर्वतुडु
मरचि श्री पर्वतुडु
मलचुकॊनॆ तनुतानु
नागार्जुनुनि पेर
नव वैभवमु मीर

नारायण रॆड्डी सी.

नागार्जुन का दिखाया हुआ
नवीन मार्ग
बौद्ध-धर्म-रूपी सौध तक
पहुँचने को सोपान है।

नागार्जुन के प्रति
उमड़नेवाली भक्ति के
अपार संभ्रम मे
श्री पर्वत अपना नाम तक
भूल गया। यहाँ तक कि
नागार्जुन पर्वत नाम से
नव-वैभव के साथ
प्रवर्त्तित हो चला।

नारायण रॆड्डी सी.

चिन्निपूलु

चिंत तोने चिविकि पोते, वगपुतोने दिगुलु वडिते
चित विडची चेरु कॉम्मनि, दिगुलु विडची तेरु कॉम्मनि
चिन्नि पूले पलुकरिंचायी
चिन्नि वाडनि चॅलिमि चूपायी ।

ऍव्वरॅरुगनि वाधतोने
नव्वुलॅरुगनि बाट लोने
ऑटि गाने निलाचि पोते
वॅंट रम्मनि पिलिचि पॉतू
दारि पोये येटि नीरमु
लॅटि कोयी चितलनुचू
माटलाडी वलपु चूपायी
वाटि लागे मॅलगमन्नायी !

एडद चेसे रोदनलतो
मनसु लोने कुमिलि पोतू
वेडि यूर्पुल वॅतल पालै
वॅर्रिनै ने कुंगि पोते
होरु गालिकि मारु पलिके
पैरु भूसुल पैन नॅगिरे
पिकिलि पिट्टले पलुकरिचायी !
पिन्न वाडनि कनिकारिचायी !

छोटे फूल

जब मै चिताओं के मारे घुल रहा था और दुःखो के कारण व्याकुल था
तब छोटे फूलो ने मुझे बुलाकर कहा
"चिंता छोडकर हमारे पास आओ और व्याकुलता तजकर प्रसन्न हो जाओ !"
मुझे नादान समझकर फूलो ने मुझ पर स्नेह की वर्षा की ।

परानभिज्ञ व्यथा से
हास्य-विहीन जीवन-मार्ग पर
जब मै अकेला खड़ा था,
तब पार्श्व में बहने वाले नहर के जल ने
मुझे अपने साथ आने को बुलाया
और भरे प्रेम से कहा कि—
तुम क्यो चिंतित हो । हम-जैसे रहो।—

हृदय के रोदन के कारण
और उष्ण उसाँसो की उष्णता से
जब मै मन-ही-मन कुम्हलाता हुआ
पागल के सदृश उदास रहा
तब झझा के साथ वार्तालाप करने वाले
हरे-भरे खेतो पर जो बुलबुलें उड़ती हैं,
उन्होने मुझसे बाते की
और मुझे अनजान समझकर
मेरे ऊपर दया दिखाई

काली घटाओ के
घनांधकार से आकुलित जीवन की
गाथाओ का स्मरण करके
जब मै पृथ्वी पर गिरकर छटपटा रहा था
तब जुगनुओ ने ही मुझे प्रकाश दिखाया
और झींगुरो ने ही जगाया।

मुरया

मॆरुपु-वॆलुगु

मॆरपो वॆलुगो चूडु।
स्वरमुनु सवरिंचुक पाडु॥—मॆरपो
मरपु मुसुगु तॆर यिरुलनु वीडि
तूरुपु देसलो तोचुनॆदो—मॆरपो

मॆरपु जारुलो विरिसिन भावमु
मरियदक मायम्मगुनो
वॆलुगुन मुनिगि वॆडलिन भावमु
विश्वमुनॆ वॆलिगिंचुनदो॥

रागपात्र लो भावमधुवुलो
नींगलम्मुलो ऊगुनॆ दो
नव गीतम्मदि नाल्गुदिक्कुला
युवलोकमु तललू पुनदे॥—मॆरपो

अरुण रश्मि विकसिंचु कमलमु
कुंकुमम्मु शोभन करमु।
उषःकांत नॆम्मोगमु शांतिलो
रुषाद्वेषमुलु कनरावॆ॥—मॆरपो

तॆलुवारिने लोकम्मंता
तीव्रारुण मै पोवुना
आकुलडुगुन मचुविंदुवुलु
अदमैन पूवुलु लेवा॥—मॆरपो।

रजनीकांत रावु बालांत्रपु

विद्युत्-प्रकाश

बिजली है या उजाला है? देखो न?
अपना स्वर ठीक करके गाओ—
विस्मृति के आवरण से फैले अंधकार को
त्यागकर पूर्व दिशा में कुछ दिखाई दे रहा है।

बिजली की रेखा में विकसित भाव
पहुँच के बाहर होकर अन्तर्धान ही होगा क्या?
उजाले में निमज्जित होकर
निकला हुआ भाव
विश्व को प्रकाशित करेगा न!

राग रूपी पात्र में, भाव रूपी मधु में,
और तुम्हारे कंठ में कुछ झूम रहा है।
वह नवगीत है, जो चारों दिशाओं में फैलकर
युवकों के सिर हिलाता है।

अरुण रश्मियों से विकसित कमल
कुंकुम के समान शोभादायक है।
उषः कान्ता के प्रिय मुख की शांति में
क्रोध और द्वेष नहीं दिखाई देते।

सुबह होने पर सारा विश्व
क्या तीव्रारुण हो जायगा?
पत्रों की आड़ में
ओस-बिन्दु रूपी सुन्दर पुष्प नहीं हैं क्या?

रजनीकांत रावु बालांत्रपु

सायं संध्य

अस्तगत मार्ताण्ड हेमरुचि
शशि कॉर कपरबॉत्तिन हारति
कटे? अभ्रचरन्मेघम्मुल
कप्पुरपारति मीदि धूपमुल
अलले. विलसत्काल भुजगम गतुले.
यूहामतुले, लतले
सडि सेयकये नडयाडुगद,
उडुमणुलनु फणमंदु ताल्चुगद
चित्रकोटि रूपमुलनंदुगद
पश्चिम वृक्ष वॅग ब्राकुंगद
पडमटिट ने शुचिमति दिद्देनो
मणि दीपम्मुल मुग्गुलदमुग
ए सांब्राणिकि पुट्टिन वीपोग तावुल
सायवायुस्पर्शल!
ऍट्टि यपूर्व मनोहर चित्रमु
तरुवुल्लापिन संध्यागगनमु
ऍत सचलनमॆंत सभ्रममु
श्वेत विहंग श्रेणी विहरण
मॆंतटि दॆंतटि दीकवियानंदमु
निरवधिकमु रसनिमज्जनमु
नास्तिनि अस्तिग मार्च गलिगिन दॊदि
मरॆय्यादि भावन कॅटनु?

रमणा रॅड्डि के. वी.

सायं संध्या

तुमने देखा है? पश्चिम दिशा, अस्तगत सूर्य की
स्वर्णिल कांति से
चन्द्रमा की आरती उतार रही है।
आकाश में विचरण करने वाले मेघ
कपूर की आरती से निष्क्रात धुएँ की लहरों के सदृश हैं।
काल भुजंग की कुटिल गतियों के समान,
उनकी गति है।
मनुष्य की कल्पना के सदृश हैं।
लताओं की भाँति नीरव रूप से चलते हैं न?
नक्षत्र रूपी रत्नों को अपने फणों पर धारण करते हैं न?
चित्र-विचित्र रूप धारण करते हैं न?
पश्चिम दिशा रूपी वृक्ष पर
चढ़ बैठते हैं न।
पश्चिम के प्रांगण में जाने किस बुद्धिमती स्त्री ने
मणियों का चौक पूरन किया है।
सायंकाल के वायुस्पर्श से
कसी साम्राणी जैसा परिमल निकल रहा है।
वृक्षों के बीच में से दर्शन देने वाला संध्याकाश
कैसा अपूर्व मनोहर चित्र है।
श्रेणीबद्ध होकर चलने वाले श्वेत विहंगों का विहार
मन में कितना संभ्रम पैदा करता है?
कवियों के लिए इसमें कितनी आनंद सामग्री भरी पड़ी है!
भावना से बढ़कर 'नास्ति' को
'अस्ति' में कौन परिवर्तित कर सकता है।

रमणा रेड्डि के. वी.

निरुक्तमु

नायॆद मूलमद्रमुन नैजपु तीयनि पालयूट लॆ
वो, यिव मूरि नन्नोक महोदधिगा पॊन
रिचॆडिन् शरी
रायितमन रूपमु रसाकृतिगा चॆलु वॊंदि
नाकु नौ
रा! यॊडलंतयुन् हृदयमै हृदयंबु रसानुभूतियै

नाकेदो यॊक पूर्वजन्मुनयदै कर्मबंधम्मुले
वो कल्पिंचॆन? देहबंधित गुणांभोवाह
रूपम्मु ल
ट्ले काकुडिन देह मेमिटि मरिट्ले
सर्व वाङ्शील शो
भाकल्पाकृतिगा हृदंतरमपांप्राणम्मुगा
नुंडॆडिन्

नायॆद लोनि तीयनि दनम्मुलु नन्नुनु मुग्धु जेयु चु
न्नायि रस प्रपंच परिणाहमहः परिमाणमुल् मनः
स्थायिकि नित्य नूत्न परिधानमुलै रसराजधानि-रे
खायति रम्य रम्य परिखापरिणाम। विशिष्टमार्गमुल्

अधिगत मी मनोगमन मंदालि यंदपु तॆल्लचारिकल्
प्रथित गिरां प्रमाण परिवर्तनमुल् कविता प्रसन्नता
पृथुकमु लात्म वैभव नवीन सनाथ रहस्य धर्ममुल्
मधुर महानुभूति गत मार्ग सहोदरमुल् जयिंचॆडिन्

निरुक्त

मेरे दिल की थाह मे सहज माधुर्य की
क्षीर-स्रोतस्विनियो ने उत्पन्न हो, मुझे एक महोदधि-सा
बना दिया।
फलतः शरीर की परिधि में निबद्ध मेरा रूप
रसाकृति में परिवर्तित हुआ
और मेरा शरीर हृदय में, और हृदय रसानुभूति मे परिणत हुए।

किसी पूर्व जन्म के कर्म बंधनो ने
न जाने गुण-जलदो के विभिन्नरूपो की कल्पना मुझमें
की होगी।
नहीं तो यह मेरा शरीर क्यो इतना द्रवशील होवे
और हृदय अपाप्राण क्यो हो रहे?

मेरे हृदय की मधुरिमाएँ मुझे मुग्ध बना रही है,
जो रस जगत् के विशाल परिमाण हो,
मन के ऊँचे स्तर के लिए नित्य नवीन परिधान हो शोभा दे
रही हैं।
ये निःसंदेह रस राजधानी की रेखाएँ है,
जो सुन्दर-सुन्दर परिखाओ की भाँति विशिष्ट मार्गों मे इसे
घेरे हुए हैं।

इस मनोगमन की धवल रेखाएँ अधिगत हुई है।
जो वाग्देवी के प्रशस्त प्रमाण-परिवर्तन है,
प्रसन्न कविता के मृदुल किशोर है,
आत्म-वैभव मे नवीन रहस्यपूर्ण धर्म है
और हैं मधुर महानुभूति के सब्रह्मचारी।
हृदय की ऐसी धवल रेखाओ की जय हो।

मॅत्तनि पाल वॅन्नॅलल मीगड कट्टिनवी रसध्वनुल्
गुत्तुलु पूचि सौरभमु क्रॉत्तन लैनवि भावकल्पनल्
चित्तमुनन् प्रचार दश चॉदिन यट्टि निरुक्त कारणं
बात्त जय प्रसिद्ध मधुराधिक साधन हेतु वय्यॅडिन्

रामलिंगेश्वरराव्रु तुम्मलपल्लि

ये रस-ध्वनियाँ मुग्ध चद्रिकाओ की मलाइयाँ हैं।
ये भाव और कल्पनाएँ पुष्प-गुच्छो की भाँति नवीन कुसुमो
के द्वारा नूतन सौरभ महका रही हैं।
जो कारण अभिव्यक्ति के परे होकर हृदय में परिव्याप्त है,
वह प्रसिद्ध जयशील मधुरिमा की साधन-हेतु बने।

रामलिंगेश्वरराव् तुम्मलपल्लि

भाव संकीर्तनमु—१

चदल चुक्कलपेरि जपमाल लीवोयि।
तोलिमंतरपुपाट तोचुदाक-
कडलि मुत्तेपु नाव नडिपिंप गदवोयि।
ब्रदुकु पेटलपाट लदुकु दाक-
ब्रदुकुटामनि तोट पल्लविपगदोयि
जीव कोकिलमु कूजिचु दाक
जीव वीणनु प्रपंचिचि मीटगदोयि
आत्मरागालाप मदुदाक
प्रणय वाहिनुल् गात्रगोत्रमुल देरलि
चारुलै वच्चि प्रणवाब्धि बडिनदाक
जीव गायकुल् निनु जेरि पोवुदाक
मैमरचु दाक पाटलु मान्पकु प्रभु

नेनाडु माटलु निगमपु दोटलो
शुकभाषणमुलुगा श्रुतुल निंते
ने वाडुपाटलु निर्मल श्रुतिवीथि
सामगानमुलुगा सतरिंते ?
ने श्रायु ज्ञातलु नीचित्र सृष्टिलो
ब्रह्म सूत्रमुलुगा ब्रस्तरिंते ?
ने जेयु कैतलु निखिल भारतमुलो
नात्म भारतमुगा ननुवर्दिंते ?
अलवु चेगादु—आशचे नडुगु चुंटि
चलमुचेगादु—चनवुचे वलुकु चुंटि
चेवचे गादु-चेलिमिचे जेप्पुचुंटि
मोदल ननिपिंचि तुदिनि नव्वेदुगद प्रभु

भाव संकीर्तन—१

हे प्रभु ! प्रणव मत्र के गीन के हृदयगम होने तक
आकाश के तारो की जपमाला बनाकर दो !
जब तक मेरे जीवन-गीत ठीक नही बैटते
तब तक मेरे जी-सागर में मोतियो की मेरी नाव चलाओ !

मेरी जीवन-कोकिला जब तक कूकती नही
तब नक वसंतोद्यान को पल्लवित करो ! मेरी आत्मा जब तक
रागालाप नहीं करती
तब नक मेरी जीवन-वीणा के तारो का सुर मिलाकर झकृत
करते रहो ! प्रणय की नदियाँ शरीर रूपी पर्वतो को लॉघकर
परिचारिकाओ की भाँति प्रणव-सागर में विलीन न हो,
जीव रूपी गायक जब तक तुम्हारे सन्निधान में न पहुँचे
और अपनी सुधि-बुधि न खो बैटते
तब तक मेरे गान का निषेध मत करो !

हे प्रभु ! मेरी बातो को निगम रूपी उद्यान के
शुक भाषण की भाँति कानो में भरते हो न ।
मेरे गाए हुए गीतो को निर्मल वेद-वीथी में
साम-गान के सदृश संकलित करते हो न ।
जो मेरी रचना है, उसको अपनी चित्र-सृष्टि में
ब्रह्मसूत्रो के समान प्रस्तार करते हो न ।
मेरी कविताओ को समग्र भारत मे
'आत्म भारत' बनाकर अनुवाद करोगे न ?
मै शक्तिमान होकर नहीं, आशावान् होकर पूछ रहा हूँ।
मै आग्रह से नहीं, बल्कि हेल-मेल से बोल रहा हूँ ।
मै समर्थ होकर नहीं,
परंतु स्नेह के साथ कहता हूँ ।
पहले इस प्रकार मुझसे कहाकर अन में उपहास करोगे ?

प्रभु गोपुरमु पूर्ण भक्ति चे गट्टिंचि
गोप राजेत्तिचे श्रीपताक
रक्ति कीर्तनल दारकमुलो बट्टिंचि
त्याग राजेत्तिंचे नमृतनौक
भक्ति काव्यमु राम भद्रुडे पल्किंप
बोतराजूदिंचे भुवन मुरलि
ललित काव्यमु कुशीलवुलचे बाडिंचि
मुनिराजु म्रोगिंचे मुक्ति वीण
वारिलो नेव्वडनु गानिवाड नैन
नदिति पताक नौकाश्रयबु गटि
मुरलि नूदुचुनुंटि नीशरणमादि
वीण म्रोगितनिक नीवे विनदगुप्रभु

ओंटि नेननि नोच्चु कोंटिनि गावोलु
जट नेननि यच्चु कोंटि वीवे
पदमंददनि वेरिं पडितिनि गाबोलु
पदमुलंदिचि कापाडितीवे
अर्थमुन्नदे यनि यनुकोंटिगावोलु
श्रुतुलंटि चूपि नव्वितिवि नीवे
भाव्यमा यनि तोट्रू पडितिनि गाबोलु
उपनिषद्भावाल नूर्चितीवे
मनसु व्रासिनदनुकोन जनिति नेमो
मनसु व्रासिन यनुमाट मलपि-यिदिये
भक्त ततिपाट-ज्ञानुल बाट-भाव
सूनमुल पेट यनि येद जूपवे प्रभु।

वेंकटरावु बालांत्रपु

प्रभु—! समग्र भक्ति के साथ तुम्हारे मदिर का गोपुर बनवाकर
भक्त गोपन्न ने उस पर श्री पताका फहराई।
त्यागराजु ने प्रेम भरे कीर्तनो को तारक मन्त्र मे निमज्जित करके
अमृत नौका चढाई।
पोतन्न ने श्री रामचन्द्र जी की प्रेरणा से भक्ति-काव्य की रचना करके
भुवन-मुरली बजवाई।
मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि ने कुश-लवो के द्वारा
काव्य का ललित एव मधुर गान कराया
और भक्ति-वीणा को झकृत किया।
यद्यपि मै उनमें से कोई भी नहीं हूँ
तथापि मै तुम्हारी पताका के पास पहुँचा,
नौकाश्रय पाया और वशी बजाने लगा।
तुम्हारी शरण मिली अब तो बीन बजाऊँगा।
हे प्रभु! तुम्हीं इसका आलाप सुनो!

कदाचित् मै अपने को अकेला समझकर व्यथित रहा।
तब तुमने अपना साथ देकर मुझे दुकेला बनाया।
कदाचित् मै निराश रहा कि तुम्हारे चरणो की प्राप्ति नहीं होगी।
तब चरणो की शरण देकर तुमने मेरी रक्षा की।
कदाचित् मैने सोचा कि इसमें क्या अर्थ है?
तब तुम श्रुतियो का प्रमाण देकर मुस्कुराए।
प्रायः मैं असमजस मे पडा हूँगा कि यह उचित होगा क्या।
तब तुमने उपनिषदो के भाव मेरे हृदय में घोल दिये।
प्रायः मैने सोचा कि यह सब मैने लिखा
तब तुमने मेरा वह अहकार भुला दिया
और मेरे हृदय में दिखाया है
कि यह भक्तो का गाना है।
यह ज्ञानियो का मार्ग है।
और भावकुसुमो की लडी है।

वेंकटरावु बालांत्रपु

भावसंकीर्तनमु—२

वलपु वुट्टिन वाच्चि ग्रालदा येॅलदेटि
पूवु पिल्चुन तन्नु वोॅट्टु पेट्टि ?
चिवरु लेत्तिन जूचि चेरदा कोयिल
येॅल मावि पिल्चुनें ईल गोट्टि ?
वेॅन्नेॅल गनि पोॅंगु वेट्टदा कलशाब्धि
जाबिल्लि पिल्चुने सैग गोॅट्टि ?
मेॅरुपु दोॅचिन वेचि पुरिविप्पदाकोॅकि
केरु ने मव्वु केकिसलु गोॅट्टि ?
भक्ति भाव कीर्तनमुल पट्टु लरसि
प्रेमलो वाचि नन्नु वल्करितु गाक
कूर्मि नातोडनिट नाडुकोॅदु गाक
पेर्मिचे निन्नु रम्मनि पिलुचुट प्रभु

निगि नव्वुलुनिचेॅ निनुगांचि काकुन्न
मिलमिल चुक्कलेमिटिकि दोचु
वनि पुल्कलॉलयिचेॅ निनुगांचि काकुन्न
मृदुलतांतवु लेमिटिकि दोचु
नीरधि मिनुमुट्टे निनुगांचि काकुन्न
पटु तरंगवु लेमिटिकि दोचु
नेल पट्टमु गट्टे निनु गांचि काकुन्न
निटु सस्य लक्ष्मु लेमिटिकिदोचु
प्रकृति निन्नुगांचि श्रमियिचेॅ गाबोलु
काक युन्न प्रणयगाथ लेल ?
विश्वमेॅपुडु निन्नु वेडु गाबोलु गा
देनि प्रणवगान मेटिकि प्रभु ?

वेंकटरावु बालांत्रपु

भाव संकीर्तन—२

क्या भ्रमर प्रेमी होकर स्वय
पुष्पो पर नहीं मँडराता?
पुष्प को उसे आहूत करने की क्या आवश्यकता है?
नन्हे रसाल वृक्षों के पल्लवो को देखकर
क्या कोकिला आप-ही-आप नहीं आ जाती?
रसाल उसको सीटी बजाकर कब बुलाता है?
चंद्रिका को देखते ही क्या समुद्र मे ज्वार नहीं उभर आता?
चन्द्रमा संकेत देकर उसे कब बुलाता है?
मयूर गगन की चंचला को देखकर अपना पंख नहीं फैलाता?
बादल उसे आवाज देकर कब बुलाता है?
भक्तिभाव से भरे मेरे कीर्तन सुनकर
प्रेमार्द्र हो मुझे बुलाओ न!
सस्नेह मेरे संग खेलो न?
मै तुमको सप्रेम बुला रहा हूँ।

तुम्हें देखकर आकाश हँस पड़ता है,
नहीं तो झिलमिलाते तारे क्यो दिखाई देते।
तुम्हारे दर्शन-मात्र से सागर गगन का स्पर्श करता है,
नहीं तो उसमें उत्ताल तरंगे क्यो उठती।
तुमको देखकर उद्यान वन रोमाचित हो उठा है,
नहीं तो मृदुल लतान क्यो उत्पन्न होते है?
तुमको देखकर पृथ्वी का राज्याभिषेक होता है,
नहीं तो सस्यश्यामला लक्ष्मी क्यो दिखाई देती?
कदाचित् प्रकृति तुम्हारे दर्शन पर भूलभुलैयाँ मे पड़ गई है,
नहीं तो प्रणय-गाथाएँ क्यो कर चलती है।
विश्व सदैव तुमसे प्रार्थना करता है,
नहीं तो प्रणव का अविरल गीत क्यो सुनाई दे रहा है?

वेंकटरावु बालांत्रपु

भाव भागीरथी

परिपूर्ण वयि शोभल्लन् जिलकुचुन् पर्वॅत्तुनीमूर्तिआं-
तर मालिन्यमु दोॅचेनीमधुरविन्यासवुलो नोॅक्क सु
दर स्वर्गंबुलभिप जेसिति, भवत्सान्निध्यमाशिंचि ना
चरमाध्यायमुलन् मुगिचॅदनु स्वेच्छन् भावभागीरथी

हिमवत्पर्वत मुन्नतोन्नतमु तल्ली नीदु जन्मप्रदे-
शमु, विस्तारपु भूमुलंदु बडि संचारंबु गाविंतु नी-
रमुलन् कटकपालिनी गमन मार्गंबापगालेवु, सं-
यमुली लोतुल मुन्कलॅत्त गलरंबा! भाव भागीरथी।

शिवुनॅनन् तलदान्नि पोयॅदवु नीचे बंडुलोकम्मुना
व्यवसायं बादि सर्वसम्मतमु नीयालिगनं बद्भुतं
बवु, ने युत्तमलोक दर्शनमो यापादिंचु नॅतेनि स-
स्तवनीयंबुलु नीचरित्रमुलु माता भाव भागीरथी।

भाव भागीरथी

हे भाव भागीरथी ! शोभामयी तुम्हारी संपूर्ण मूर्ति ने
मेरे हृदय की मलिनता को दूर कर दिया है।
तुम्हारे मधुर विन्यास मे मुझे एक
सुन्दर स्वर्ग की झलक मिली है।
ईश्वर-सान्निध्य की आशा करके मै
अपने जीवन के चरम अध्यायो को स्वेच्छा पूर्वक समाप्त करूँगा।

हे माते ! भाव भागीरथि ! तुम्हारा जन्म-स्थान
उन्नतोन्नत हिमालय पर्वत है।
मैदानो में उतरकर तुम बहती हो,
तुम्हारे जल-प्रवाह को रास्ते मे पड़ने वाले कॉटे भी नहीं रोक सकते।
संयमी ही तुम्हारे जल की गहराई में अवगाहन कर सकते है।

हे माते भाव भागीरथि ! तुम शिवजी के सिर पर भी पॉव रखकर
बह जाती हो। संसार तुम्हारे कारण सस्य श्यामल होता है।
तुम्हारा कार्य सर्वजनसम्मत है।
तुम्हारा परिष्वंग अद्भुत है और किसी उत्तम लोक का दर्शन कराने वाला है।
तुम्हारी लीलाएँ प्रशसनीय हैं।

तमल्लोनन् दॉरकॉन्न भक्ति बुधुलंतानिन्नुपासिंतुरा-
गम सूक्तुल् प्रकटिंचु नीयललु ओगुन् हृद्यमै, सस्मृति-
श्रमलो नी सहवास सौख्यमु सुधा सारंबुगा नैंतुगो
प्यमुलॅन्नेनि वचिंतुवार्धितुलकंबा! भाव भागीरथी।

नीनैर्मल्यमुजूचि स्वीयहृदि नैंते पूतमुन् जेसि, स
द्योनिर्माण मॉनर्चॅ प्रेमरस संदोहंबु, यात्रार्थियै
नाना शैवलिनुल् गमिचि यॉक तृष्णा बाधितुंडब ओ
ज्ञानानंद रसस्वरूप सम भूषा! भाव भागीरथी

श्रीनिवासमूर्ति बॅल्लूरि

तेलुगु

हे भाव भागीरथि! भक्ति-प्रपूर्ण हृदयो से सभी सज्जन
तुम्हारी उपासना करते है।
आगम-सूक्तियो को प्रकाशित करने वाली तुम्हारी वीचियाँ
हृदयंगम ध्वनि कर रही है।
संसार के श्रम-पूर्ण जीवन में तुम्हारे शीतल सहवास का
सुख अमृत-सार के सदृश मानता हूँ।
हे माँ! तुम प्रार्थियो को बहुत-सी
रहस्यपूर्ण बाते सुनाती हो।

हे ज्ञान और आनंद रस रूपी भूषण समान रूप से
धारण करने वाली भाव-भागीरथि!
तुम्हारी निर्मलता को देखकर तृष्णा पीडित व्यक्ति
अपने हृदय को बहुत पवित्र करके उसे प्रेम रस संदोह से भर
लेता है।
अपनी इस साधना में तीर्थ-यात्री होकर नाना नदियों को पार
कर लेता है।

श्रीनिवासमूर्ति बेल्लूरि



मन्मथावाह्नमु (उगादि)

(१)

उगादि प्रॉद्दुल उत्सवमुललो
मनोरथवुलु मधुपथमंटग
प्रियवुगा निनु पिलुमु रावोय्
नवीन वत्सरनाथ ! मन्मथा !

(२)

सरस्तरंगमुलु चलुव पान्पुलुग
उयालवूगे ऑयारि तम्मुल
मिलिदकन्यलु मॅलु कॉल्पेदरु
उषस्सुमगल कषायकाकलि

(३)

रसाल पल्लव रक्तगुच्छमुलु
पिसालि वलपुलु देसलनु विसरन्
तमिचु पिकमुलु तप्तकंठमुलु
द्रविचि तीपुल तिक्कलॅत्तगा

(४)

शिरीष शाखल चेपसरुलुगा
अलंकरिचॅनु अलरु जॉपमुलु
चॅलगॅ चिटिजाजुलु वनीनटी
पदाल कुलिकॅडि वॅन्नमुव्वलै

(५)

प्रसन्न रसमय पर्वपारणा
परायणवयि सरल सरलमुग;
विनग नायॅनु विमल शुक शृति
अशोक सुमनोहरमॅन महिन्

सुब्बाराव़ु रायप्रोलु

मन्मथावाहन[1]

हे प्रभु !

हे नववर्ष मन्मथ !
इस नव वर्षारंभ के उत्सवों में
हमारे मनोरथ जब मधु मार्ग पर अग्रसर होते हैं,
तब प्रेम के साथ हम तुम्हारा आमंत्रण कर रहे हैं।

आओ न !

सरोवर की लहरों रूपी शीतल शय्याओं पर
झूमने वाले कमलों को भ्रमर-कन्याएँ,
इस उषःकाल में मंगलकारी काकली ध्वनियों से जगा रही हैं।

रसालों के अरुण पल्लव-समूह
चारों दिशाओं में सुगंध फैलाते हैं
और इस समय मदमाते कोकिल
अपने मधुर कंठों से कलनाद की वर्षा
करते हुए झूम रहे हैं।

वन नटी के चरणों में जूही के फूल
ऐसी शोभा दे रहे हैं, मानो नवनीत के घुँघरू हों।

अशोक-पुष्पों से शोभित पृथ्वी पर
चैत्र पर्व के रसमय भोजन में आलसी बने हुए शुकों की
श्रुतिमधुर ध्वनियाँ
सरल कोमलता के साथ सुनाई दे रही हैं।

सुब्बाराव रायप्रोलु

१. मन्मथ, साठ वर्षों में एक है। उसीका आह्वान इस कवि ने कविता में किया है। नये वत्सर के प्रथम दिन पर तेलुगु लोग त्योहार मनाते हैं।

पंजाबी

चयन : पंजाबी परामर्शदात्री समिति

अनुवाद : हरिभजन सिंह

कवि-नाम	कविता
अजायब चित्रकार	इतिहास कह रहा है
अमृता प्रीतम	मैं गीत लिख रही हूँ
ईश्वर सिंह	पक्षी
गुरुचरण सिंह रामपुरी	एशिया एक है
बावा बलवंत	कमल-सरोवर
मोहन सिंह	त्रिशूल
सन्त सिंह सेखों	उद्देश्य
सन्तोख सिंह धीर	एशिया
सुरजीत रामपुरी	रात की चूनरी कब फटेगी
हरनाम सिंह 'नाज़'	यों वे मेरे आँगन आए

इतिहास बोलदा ए

इतिहास बोलदा ए:
ओह रोहडया समे ने
वगदे समे दी जिस ने
रफ़्तार ना पछाणी ।

इक जुग्ग ऑवदा ए
इक जुग्ग जॉवदा ए
रुक्दी नही समे दे
रथ दी कदे रवानी ।

झडदे ने पत पुराणे
नव्यॉदी रुत्त आउँदी
गल्ल एह नवीनता दी
है बहुत ही पुराणी ।

वैरी मनुक्खता दे
अपणी ने मौत मरदे
रहँदी मनुक्खता दी
पर अमर एह कहाणी ।

लक्ख खूहणियॉ खपॉदे
खप चुके ताण वाले,
पर लोकता कदे वी
होई नहीं निताणी ।

चंगेज़ ते हलाकू
होए हजार पैदा,
मुके, मुका न सके
लोकॉ दी ज़िंदगानी ।

इतिहास कह रहा है

इतिहास कह रहा है :
समय उसे बहा ले जायगा
जो बहते समय की
गति से रहा अपरिचित

एक युग आता है
एक युग जाता है
किन्तु काल-रथ की गति
रुकती नहीं कदापि

पुराने पत्ते झड़ते हैं
नये पत्तो की ऋतु आती है
नव्यता की यह गाथा
बहुत ही प्राचीन है

मानवता के शत्रु
मरते है अपनी मृत्यु स्वयं
पर मानवता की रहती है
युग-युग तक अमर कहानी

लक्ष-लक्ष अक्षौहिणियो को मारने में समथ
स्वयं मर-खप गए
किन्तु लोक-जीवन कभी
असमर्थ नहीं होता है

चंगेज़ और हलाकू—
सरीखे सहस्रो जन्मे और
मिट गए, पर मिटा न सके
लोक-जीवन को

ऐटम दे बाप भावें,
भुल्ले ने पाप अन्दर
हस्ती उन्हाँ दी, ओहनाँ
दे कार्यों मुकाणी।

आ के बहार रहणी
ए साँझीवालता दी
रहणी नहीं हमेशा
दुनियाँ दी वंड काणी

लोकाँ दी लहर वधदी
होई नूँ कौण रोके
कद कोई रोक सक्या
विफरे हडाँ दा पाणी

धरती दे पुत्तराँ ने
हन जित्तणे सितारे
सुणदी हमेश मैनूँ
एह है भविक्ख-वाणी

किरती ही जिंदगी दा
होके रहेगा राणा,
ते किरत ही सुनक्खी
होणी अख़ीर राणी

एह तत्त कड्ढे हन मैं,
जुग्गाँ दी ज़िंदगी 'चों
मक्खण नूँ रिड़क कड्ढे
ज्यों दुद्ध 'चों मधाणी।

एटम के जनक यद्यपि
भूले हैं, मत्त पापाचार मे
उनका अस्तित्व मिटा देगे
उनके ही दुष्कर्म

आकर ही रहेगी मधुऋतु
साम्यवाद की
टिक न सकेगी सदा के लिए
संसार में कानी-वॉट

लोक-लहर बढती है
रोके से कब रुकती है
भला कभी कौन कब रोक सका
बाढ का प्रवाह अदम्य।

धरती के पुत्रो को
अधिकार करना है नक्षत्रो पर
यह भविष्य-वाणी
मुझे सदैव सुनाई देती है।

श्रमिक ही इस जीवन का
राजा बनकर रहेगा
अन्ततोगत्वा, श्रम ही बन के रहेगा
उसकी सुन्दर रानी

यह तत्त्व निकाला है मैंने
युग-जीवन से
ज्यो दूध से निकलता है
मन्थन के द्वारा नवनीत

किरती ते किरत नूँ ए
सौं सौं सलाम मेरा,
जुग्गाँ दे ढाडियाँ ने
एहनाँ दी वार गाणी ।

अजायब चित्रकार

श्रम और श्रमिक को है
शतश: मेरा प्रणाम
युग-युग के चारण
गायेंगे इनकी गाथा।

अजायब चित्रकार

मैं गीत लिखदी हाँ

मेरी मुहब्बत सुपन्यॉ दे
लक्ख पल्ले ओढ़दी
सत्ते आकाश फोल के
तेरी दहलीज ढूंडदी

हद्दा दीवारॉ, दूरियॉ
ते हक्क नहीं कुझ कूण दा
ढूँडदी है ज़िदगी फिर
इक बहाना ज्यूण दा

मैं गीत लिखदी हॉ · ·

उमर भर दी आरज़ू है
उमर भर दे ग़म दा राज़
सोचदी हॉ शायद कोई
बण जाये मेरी आवाज़

बण जाये आवाज़ मेरी
अज ज़माने दी आवाज़
मेरे ग़म दे राज अन्दर
वस जाये दुनिया दा राज़

इश्क़ है नाकाम मेरा
रह जाये नाकाम एह
सोचदी हॉ, दे जाये पर
इक मेरा पैग़ाम एह

मैं गीत लिख रही हूँ

ओढ रही है प्रीति मेरी
स्वप्नों की लाख ओढनियाँ
अनावरण कर सप्त गगन
है ढूँढ रही, प्रिय, तेरी दहलीज़।

सीमाएँ हैं, प्राचीरें हैं औ' दूरी
तिस पर अधिकार नही है कुछ कहने का
ढूँढ रहा है जीवन
फिर जीने का एक बहाना।

मै गीत लिख रही हूँ—

जीवन-भर की वाञ्छा अपूर्ण
आजीवन पीड़ा का रहस्य
सोच रही हूँ शायद कोई
मम वाणी बन जाए।

मेरी वाणी बन जाए
युग-भर की वाणी आज
मेरी पीड़ा के रहस्य मे
बस जाए जगती का राज।

निष्फल मेरी प्रीति
रहे निष्फल ही बेशक
सोच रही हूँ, दे जाए पर
यह मेरा संदेश।

गीत मेरे कर दे मेरे
इश्क दा करज़ा अदा
तेरी हर इक सतर 'चो
आवे जमाने दी सदा

मेरी मुहब्बत दे चिराग़ !
एह स्याहियाँ बदल दे
गीत मेरे खून दे !
एह ज़ार-शाहियाँ बदल दे

फिर किसे दी आबरू दा
फिर किसे दे प्यार दा
फेर सौदा ना करे
सिक्का किसे जरदार दा

फिर कणक दे पालकाँ नूँ
लाम न सद्दे कोई
फिर जवानी उड्डदी नूँ
पैर न मिद्धे कोई

धरत अम्बर साड़नी
फिर अग्ग न भड़के कोई
फेर दोधे दाण्याँ 'ते
जहर ना छिड़के कोई

कतलगाहाँ दी कहानी
फिर कोई दोहराय न
फिर किसे दा हुस्न मण्डी विच
बुलाया जाय न

हे मम गीत, चुका दे
ऋण मेरी सुप्रीति का
तेरी पंक्ति-पंक्ति से
मुखरित हो यह सारा विश्व।

हे मम प्रीति-सुदीप
मेटो ये सब अन्धकार
हे मम रक्त-सुगीत
बदलो ज़ारशाहियाँ सारी।

पुनः किसी लज्जा का
अथवा सुप्रीति का
सौदा कर पाए न
किसी धनपति का सिक्का

फिर गेहूँ के पालक को
मत युद्ध-निमन्त्रण आए
पुनः न उठते यौवन को
पद्-दलित कोई कर पाए

पुनः धरणि अम्बर दाहक
पावक भड़क न जाए
दुग्ध-वर्ण दानो पर कोई
गरल छिड़क मत पाए।

वध्य-शिला की कथा
न फिर दुहराये कोई
फिर न किसी का रूप
बुलाया जाय हाट पर।

हसरतॉं अजमादियॉं ने
फिर कलम दे जोर नूॅं

मैं गीत लिखदी हॉं—

कि हसरतॉं दे गीत फिर
लिखणे ना पैण होर नूॅं

मैं गीत लिखदी हॉं...

अमृता प्रीतम

फिर अपूर्ण साधे दे रही चुनौती
लेखनी की क्षमता को

मै गीत लिख रही हूँ—

कि फिर अतृप्ति के गीत
न लिखने पड़े किसी को

मै गीत लिख रही हूँ।

अमृता प्रीतम

पखेरू

उठदियॉं लाटॉं परॉं चो
पर पखेरू उड रिहा ए ।
देखके उसदी उडारी
हो रहे पैदा शिकारी ।
नाल उसदे उड रही ए
दिल च लत्थी हर कटारी ।
हौली हौली पंख हिलदे,
ज्यों हवा दे हौक्यॉं ते
हस्सके ने फुल्ल खिलदे ।
दिल 'चों उसदे हौसले दा
खून जेहड़ा चो रिहा ए,
आउण वाले जुग्ग नूँ ओह
दे अनोखी लोअ रिहा ए ।
अग्ग ही कुछ होर शायद
अग्ग उसदी नूँ बुझाये ।
इश्क है जद मच्च उठदा
कौण उसनूं ठण्ड पाये ।
बिजलियॉं दे आहूलणे वल
फेर हुण ओह मुड़ रिहा ए ।
उठदियॉं लाटॉं परॉं चों
पर पखेरू उड़ रिहा ए

पिंजरे तोड़े बथेरे;
दिन बिताया रात करके
रात कट्टी हर सवेरे ।

पक्षी

पख कर रहे वमन ज्वाल
पर पक्षी उडता जाए,
उसकी देख उडान
शिकारी लालायित है।
मंग विहग के उडती जाए।
उर में उतरी कोटि कटार।
धीरे-धीरे पख हिले
ज्यो समीर के नि:श्वासो पर
हँसकर पुष्प खिले।
उसके अन्तस् से बहना जो
साहस-रक्त-प्रवाह
आगामी युग को प्रदान करना
अनुपम आलोक।
पावक जाल प्रबलतर शायद
उसकी अग्नि बुझाय,
प्रेम-ज्वाल जब धधक उठे
तब कौन शमन कर पाय
चपलाओ का नीड जिधर
उस ओर विहग मुड जाय
पख कर रहे वमन ज्वाल
पर पक्षी उडता जाए।

अगणित पिंजरे तोड़ चुका वह
दिवस निशा सम बीते उसका
प्रात रात-सी उसकी

प्रतिपल, घडी, दिवस, प्रतिमास
ऋतुओ की जडता पर उसने
अपने गीत बिखेरे
किन्तु समय के ऊसर चाहे गीत न ये उग पाएँ
कौन, भला, जो दहक रहे
अंगार चुगे, खा जाएँ,
नव अरुणोदय से रँग लेकर
धूमिल, बुझते, तारक के
उर से लगता जाए।
पख कर रहे वमन ज्वाल
पर पक्षी उड़ता जाए।

लपट उठ रही है पखो से
पंख झुलस झड़ जाएँ,
छू जाते है जिनको, सत्वर
वे तारक सड़ जाएँ।
प्रीति-दीप्ति को सहन कर सके
अनुपम साहस वाला,
नित्य मरण बनता तारक का
अरुणोदय उजियाला।
उसके उर में उबल रहे है
अगणित गीत, अगीत,
किन्तु इन्हीं गीतो से है
अनुप्राणित उसका जीवन।
कौन देख पाया प्रत्यक्ष को
कौन जान पाया परोक्ष को
अपनी-अपनी क्षमता के अनुरूप
सभी को पीडा का वरदान।

एह महा पासार सारा
उस लई क्यों थुड रिहा ए।
अग्ग लग्गी ए परॉ नूॅं
पर पखेरू उड़ रिहा ए।

ईश्वर सिंह

क्यों यह महा प्रसार
विहग को लघुतर होता जाए।
पंख कर रहे वमन ज्वाल
पर पक्षी उड़ता जाए।

ईश्वर सिंह

एशिया दी साँझ

जागी मुसकणी चानणी बुल्लियां ते, खिडियॉ सरघियॉ सारे जहान अन्दर
मचले गीत मानुक्ख दी हिक्कडी विच, खिडे फुल्ल जीकर बियाबान अन्दर
मलके अक्खियॉ आकडॉ अकल भन्ने, हीरे निक्कले लुके जो खान अन्दर
धडकी प्रीत सुहप्पणॉ, जजब्यॉ दी, हर इक हाणी जवान रकान अन्दर
ताल मेहनतॉ तों लया जजब्यॉ ने, नाच लै लया झूमदी खेतियॉ तों
जम्मी भुक्ख फिर रूप दे मानणे दी, सागर, सूरजॉ, छल्लॉ, बरेतियॉ तों।

पब्बॉ भार हो मलकडे नूर तुरया, धुन्दॉ वहशता सोच ने छाणियॉ ने
कल्लयॉ औकडॉ दुक्ख न कट्ट होगे, लोकॉ सॉझ दियॉ बरकतॉ जाणियॉ ने
प्रीत वरी क्वारियॉ धरतियॉ दी, हिक्कॉ उसदियॉ कड्डयॉ माणियॉ ने
जित्तियां शक्तियां सब्भो मनुक्ख राणे, उसदे कम्म कीते वावॉ पाणियॉ ने
कोमल कला ते मज्हब दे फुल्ल हस्से, दित्तियॉ एशिया इन्हॉ नूँ लोरियॉ ने
लघे जुग तहज़ीब मुट्यार होके हिन्द यूनान विच खेडियॉ होरियॉ ने

गल्ल जग ते महक दे वॉग उड्डी, धरती पूरबी दियॉ खुशहालियॉ दी,
सोना उग्गदा ओहदियॉ मिट्टियॉ चों, कीमत मिले पूरी घालॉ घालियॉ दी,
वणजॉ लई लोकीं आये चीर सागर, धोखे नाल खोही दौलत हालियॉ दी
आई अग्ग नूं मालकण जदों वण गई, रोई अक्ख सी उदों पंजालियॉ दी
हाकम वण ग्या 'हुनर पंघूरड़े'[1] दा, साडे आप जो रिजक लई आया सी
रत्त चूस लई जोक दे वॉग सारी, जेहा मोत दा पंजडा पाया सी

---

१. एशिया

एशिया एक है

ओटों पर मुस्कान की ज्योत्स्ना जागी, अखिल विश्व में ऊषा बिखर गई,
मानव-उर में गीत मचलने लगे, जैसे निर्जन में पुष्प खिले,
बुद्धि आँखे मलती हुई, अँगड़ाई लेती हुई, जागी, जैसे खान से छिपे हीरे निकलें,
प्रत्येक सम-वय युवक और युवती के सौंदर्य और भाव प्रीति से अनुप्राणित हुए,
भाव-समूह ने श्रम से ताल लिया और झूमते खेतो से नृत्य की लय,
सागर, सूर्य, लहर और मरुभूमि में रूपास्वादन की भूख फिर से चमकी।

आलोक दबे पाँव चला, मानव-बुद्धि ने वहशत के कुहासे छान डाले,
ये विकट दुःख अकेले न कटेंगे, लोग ऐक्य की सदुपयोगिता को जान गये,
सबने कुँआरी धरती की प्रीति का वरण किया और मिलकर उसके वक्ष
का आस्वादन किया,
मानवराज ने सब शक्तियों पर विजय पाई; जल, पवन उसके पनिहार बने,
ललितकला और धर्म के पुष्प हँसे, एशिया ने इनको लोरी दी,
इस प्रकार कई युग उपरान्त सभ्यता कौमार-प्राप्त हो भारत-यूनान में
फाग खेलने लगी।

प्राच्य धरती की समृद्धि-गाथा महक के समान अखिल विश्व में फैल गई—
उसकी धरती स्वर्ण उगलती है, वहाँ श्रम पूर्णतः पुरस्कृत होता है।
लोग सागर चीरकर यहाँ व्यापार हेतु आये और छल-छद्म से हलधरो की
समृद्धि हथिया ली।
जो पड़ोसिन आग माँगने के लिए आई थी, वह मालकिन बन बैठी, यह
देखकर हलधरो के जुए रो दिए।
जो हमारे यहाँ आजीविका के लिए आया था, वही 'कला-पालने'[1] का
स्वामी बन बैठा
उसने जोंक के समान लोगों का रक्त चूस लिया और सबको मृत्यु-पाश में बाँध लिया

---

१. एशिया

टुट्टी नींद आखर सुत्ते गुस्स्यॉ दी, समा आपणी लोड नूँ पूरदा ए
कहरवान गरीब दी अख्त होई कैदी आपणी बेडी नूँ घूरदा ए
पाक नफरतॉ जम्मियॉ दास अन्दर, हुण ओह किस्मतॉ नूँ नहीं झूरदा ए
फुट्टी पहु है अमर आज़ादियॉ दी, आण पहुँच्या युग्ग जमहूर दा ए।
छिडया राग बगावतॉ वालडा ते छोह्या गीत इक हुस्न दियॉ धरतियॉ ने
धरती चौंक प्यी चमकियॉ बिजलियॉ जद, नरदॉ हरदियॉ हरदियॉ परतियॉ ने

दब्बी आग एथे, भॉबड़ दूर निकले, झण्डे लहर प्ये थॉ थॉ आजादियॉ दे
गदर छिड ग्या, जबर दा दिल कम्ब्या, पुग्गे दिन प्राचीन बरबादियॉ दे
"भोले जट्ट ने पगडी सॅभाल लीती", जागे भाग ने उस दियॉ गाधियॉ दे
धरती चितव्या हाली ना मरे भुक्खा, माणे गैर ना रूप शहजादियॉ दे
सैआं फॉसियॉ लहरियॉ हवा अन्दर, मन्या बोल न पर इन्कलाब वाला
सामराज दी उमर दे दिन थुड ग्ये, आण पहुँच्या रोज हिसाब वाला

छिडी लाम ते आपो'च लडे डाकू, कणक सॉढॉ दे भेड विच ढेर होई,
लक्खाँ पुत्त मर ग्ये मॉवॉ राणियॉ दे, उमर लक्खॉ रकानॉ दी न्हेर होई
खाली मॉग ते ममता दी आह जित्ती, तोपॉ हारियॉ रता न देर होई,
मेख़ कफन अन्दर ठुक्की जंगियॉ दे, विच एशिया रत्ती सवेर होई
जगदे सार ही दीवा बुझाउण ख़ातर, रलके जालमॉ न्हेरी झुला दित्ती
दीवा रिहा जगदा चानण अमर हो ग्ये, हत्थॉ पैरॉ दी न्हेर नूँ पा दित्ती

लोकॉ देख्या फट्टड़ है सप्प होया, मारू वार मनुक्ख ते करेगा एह,
दैंत मौत दा वणज विहाजगे लई, लाम नवीं दी नींह हुण धरेगा एह
नूरो नूर दिमागॉदॉ कट्ठ होया, सारे वार ही अपणे ते जरेगा एह

आखिर सुप्त रोष की निद्रा भंग हुई, समय की माँग की पूर्ति तो होकर ही रहती है।
निर्धन के नयन कुपित हुए, बन्दी लौह-शृंखलाओं को चूमने लगे
दासों के अन्तस् में पवित्र घृणा का जन्म हुआ, अब वे भाग्य को नहीं कोसते,
अब अमर स्वातन्त्र्य की पौ फटी है, अब जन-युग आ पहुँचा है
लो, वह विप्लव-गान छिड़ा, रूपसी धरतियों ने गीत आरम्भ किया
विद्युत्-समूह के चमकने पर धरती चौंक पड़ी, विजित-प्राय नरदों की बाज़ी पलटी।

आग यहाँ दबी थी, उसकी लपटें कहीं दूर निकलीं, स्थान-स्थान पर
स्वतन्त्रता के ध्वज फहराने लगे
विप्लव छिड़ा, आतंक का हृदय काँपा, ध्वंसक पराधीनता की अवधि समाप्त हुई
'भोले जाट ने पगड़ी सँम्भाल ली' उसकी गाथी का भाग्य जागा।
धरती ने सोचा कि हलधर भूखों न मरे तथा राज-कन्याओं का रूप
परतुष्टि का साधन न बने
सैकड़ों वीर फाँसी के रस्से पर लहरा गए, किन्तु इन्किलाब की वाणी न मिटी
साम्राज्य की आयु अशेष हुई, अब लेखे-जोखे का दिन आ पहुँचा।

युद्ध छिड़ा, डाकू परस्पर लड़ने लगे, साँड़ों की इस भिड़न्त में निरीह
वनस्पति की अनिवार्य हानि हुई
लाखों माँ-रानियों के पुत्र मरे, लाखों युवतियों का जीवन अन्धकारमय हुआ
अन्त, सूनी माँग और ममता की आह विजयी हुई, तोपों की अविलम्ब पराजय हुई
जंगबाजों के ताबूत में अन्तिम मेख ठुक गई, एशिया में फिर से अरुणोदय हुआ
दिया जला ही था कि इसे बुझाने के लिए शठों ने फिर से आँधी उठा दी
दिया जलता रहा, आलोक अमर हो गया, अन्धकार को सुझाई नहीं देता था
कि क्या करे।

लोगों ने देखा कि घायल सर्प मानव पर घातक प्रहार करने से न चूकेगा
यह दैत्य मृत्यु-वाणिज्य के लिए अवश्य ही नए युद्ध की नींव रक्खेगा
ज्योतिर्मान मस्तिष्कों ने संगठित होकर इसके सभी प्रहार अपने ऊपर
सहने का निश्चय किया।

जग ने वेख्या अमन दी कॉग साह्वें, पुट्ठे दाउ पैंदे जगी ह्रेगा एह
दुनियॉ अमन दे मोरचे आण जुड़ ग्यी, सुपने सांझ दे सिखर ते पुज्ज ग्ये ने
वागी एशिया सारे दा कट्ठ होवे, रस्ते अमन दे लोकॉं नूँ सुज्झ ग्ये ने

सॉझ बुद्ध दी, कला दी, क्रान्ती दी, सारे पूरब दो सुच्ची परभात सॉझी
ऐहे धरतियॉ ने झूला सभ्यता दा, गगा, वालगा, यंगसी दी बात सॉझी
साडे परबतॉ दी हिके ते उक्करी ए, दित्ती बुद्ध की कला-सौगात सॉझी
साडी जिन्दगी दे सॉझे नूर दी सौंह, रोशन दिन ते टिमकदी रात सॉझी
सॉझ एशिया दी राखी जगत दी है, साड़ सकेगा ना साडा भविक्ख कोई
जीवन सोन-रंगा साडा होण वाला, घोल द्ये ना अमृत'च विक्ख कोई

गुरचरण सिंह रामपुरी

संसार ने देखा कि शांति की बाढ़ के सामने, जंगबाज की सब चालें मात
पड़ रही है और उसकी पराजय निश्चित है।
संसार शॉति के मोरचे पर इकट्ठा हुआ, ऐक्य की भावना चरम कोटि तक
पहुँच गई है।
बाकी एशिया में ऐक्य स्थापित होने पर सब लोगों को शांति-मार्ग
सुझाई देने लगे हैं।

हमारे बीच बुद्धि, कला और क्रांति की एकता है, प्राचीभर की पवित्र प्रभात
एक ही है।
प्राची के सब देश ही सभ्यता का झूला हैं, गंगा, वोल्गा और यंगसी की
गाथा एक ही है।
बुद्ध द्वारा प्रदत्त साजात्य कला-उपहार हमारे पर्वतों के वक्ष पर उत्कीर्ण है
अपने जीवन के साझे प्रकाश की सौगन्ध, हमारे प्रदीप्त दिन और टिमटिमाती
रातें भी साझी हैं।
एशिया का साम्राज्य जगत्-रक्षक है, कोई हमारे भविष्य में आग न लगा सकेगा
हमारा जीवन स्वर्णमय हुआ चाहता है, कोई इस अमृत में विष न घोल दे।

गुरचरण सिंह रामपुरी

कौल-सरोवर

(दसूहे दे बाहरवार इक कौल-सरोवर है। एह कविता उसतो प्रभावित होके लिखीगई। कविता दी तेरहवी सतर विच लिख्या है—"कॅवल-सर जन्नता विच अपणी ताकत दा है जे पाणी।" इत्थो कॅवल सर दा पहला भाव बदल जॉदा है ते इस सतर तों इसदा नवॉ भाव शरू हुन्दा है, कॅवल 'जनता' ते सर 'भारत'। अग्गे सारी कविता विच एहो भाव चलदा है।)

कँवल-सर दे किनारे ते,
गुलाबी ठण्ड जीवन दी,
प्याज़ी हुस्न दी गरमी
कलाकारॉ नूँ मिलदी ए।
कलाकारॉ नूँ मिलदा ए सुनेहा अपणी ताकत दा
कि कॅवलॉ कोल है जद तक
स्वै-जीवन लई पाणी
तदों तक आयगा सूरज
नवें खेडे, नवें हासे लई नित्त इस द्वारे ते—
कॅवल-सर दे किनारे ते।

कॅवल-सर दे किनारे ते
एह पाणी दा इशारा ए;
कॅवल हिरदे 'च शक्ति अमल दा जे कर नहीं पाणी
कोई सूरज बचा सकदा नहीं ए, जिदगी ऐसी
कॅवल सर जन्नत विच अपणी ताकत दा है जे पाणी
खिड़ेगा दिन-ब-दिन जीवन
बदल जाएगी जिदगानी
जो अपणे पास ही शक्ती नहीं होरॉ तों लैणा की
कलाकारॉ नूँ मिलदा ए सुनेहा अपणी ताकत दा
कँवल-सर दे किनारे ते।

कमल-सरोवर

(दमूहे के समीप एक कमल-सरोवर है, इस कविता की प्रेरणा वहीं से मिली। कविता की तेरहवी पंक्ति मे लिखा है—'कमल-सर रूप जनता म है जब तक नीर निज बल का' यहाँ से कमल-सरोवर का पहला भाव बदल जाता है और एक नया भाव आरम्भ होता है। कमल जनता और सरोवर भारत का प्रतीक हो गया है। इससे आगे सारी कविता मे यही प्रतीक बना रहता है।)

कमल-सर के किनारे पर
गुलाबी शीत जीवन का
प्याजी रूप की उष्मा
कलाकारों की मिलनी है।
कलाकारों को मिल जाता है अपनी शक्ति का संदेश
कमल के पास है जब तक
स्वजीवन के लिए पानी
तभी तक सूर्य पहुँचेगा
नवीनोल्लास और नव-हास लेकर नित्य इस द्वारे
कमल-सर के किनारे पर

कमल-सर के किनारे पर
है यह संकेत पानी का—
कमल-हृद् मे नहीं यदि शक्ति-कर्मठता का पानी टुक
प्रभाकर भी बचा सकता नहीं, ये प्राण ऐसे हैं
कमल-सर रूप जनता में है जब तक नीर निज बल का
खिलेगा दिन-ब-दिन जीवन
बदल जाएगा यह जीवन
न अपने पास ही सामर्थ्य तो औरो से क्या आशा?
कलाकारों को मिल जाता है अपनी शक्ति का संदेश
कमल-सर के किनारे पर।

कॅवल-सर दे किनारे ते
जो हर पासे ग़रीबी ए
न एह करमॉ दा फल कोई, न कोई बदनसीबी ए।
एह उस मंदर दा कारा ए
खड़ा है जो नवे लोहे ते चॉदी दे सहारे ते
एह इक मन्दर है, पर खण्डर नज़र ऑदे ने हर पासे
कॅवल-सर दे किनारे ते।

कँवल-सर दे किनारे ते
नवें फाके दी इस दुनियां 'च मेहनत दे सतारे ते
जवारॉ कट रहे ने जो
उरे मूॅजी जो लाउॅदे ने
परे जो हल चलाउॅदे ने
ख़िज़ॉ दी सख्तियॉ दे नाल एह लडदे ही आए ने
इन्हॉ बंजर सवारे ने
इन्हॉ कल्लर गवाए ने
इन्हॉ जल-थल बसाए ने
कलाकारॉ दा एहना नाल हो जाणा ज़रूरी ए
कला एहना लई है एह कलाकारी दा सोमा ने
कला जो जिदगानी नूॅ सुखाला करदी आई ए
कला जो हर हनेरे नूॅ उजाला करदी आई ए
हुनर हुण दी ख़िज़ा नूॅ वी बणाएगा बहार अपणी।

कॅवल-सर दे किनारे ते
अनोखा इक्क कॉबा ए
कॅवल दे हर मुनारे ते।
भुचाल आया नहीं, मालूम हुन्दा ए भुचाल आया।
असर एह जापदा ए उस "तिलंगाणा" दे लावे दा।
दबाया ही गया है जो।

कमल-सर के किनारे पर
जो है चहुओर निर्धनता
न यह कर्मों का फल है औ' न कोई भाग्य का अभिशाप
यह उस मन्दिर की करनी है
खड़ा है जो नये लोहे औ' चाँदी के सहारे पर
है मन्दिर एक, पर खण्डहर दिखाई दे रहे चहुँओर
कमल-सर के किनारे पर।

कमल-सर के किनारे पर
नये व्रत की नई जगती में मेहनत के सितारे पर
ज्वारें काटते हैं जो
इधर मूँजी उगायें जो
उधर जो हल चलाते हैं
सदा ही जूझते जाये हैं ये अति विकट पतझड़ से
यही बंजर सजाते है
हरे ऊसर इन्हीं से हैं
यही जल-थल बसाते हैं
कलाकारों का इनके साथ हो जाना जरूरी है
कला इनके लिए है ये कलाकारी का उद्गम हैं
कला जो नित्य जीवन को बनाती आई है सुखमय
कला जो हर अँधेरे को उजाला करती आई है
बदल ही देगी मधुऋतु में कला उसको जो पतझड़ आज

कमल-सर के किनारे पर
अनोखा एक कम्पन है
कमल के हर कलश-दल पर
बिना भूकम्प ही भूकम्प-सा मालूम होता है
है सुपरिणाम संभवतः 'तिलंगाना' के लावे का
दबाया ही गया है जो

असर है एह "तिभागा" दा जॉ "बलिया" दी ज्वाला दा
ज्वाला तों नवॉ एथे उजाला होण वाला ए
नजर पजाब दी है इक दवंदव दे इशारे ते
जमाना होर होवेगा
कॅवल-सर दे किनारे ते।

जरूरत काम्यॉ नूॅ है जरा इकजान होवण दी
जरा रल-मिल के जूझण दी, जरा मिल के खलोवण दी
वहार ओह आ रही है, आएगी संसार सारे ते
वहार आएगी जो आई समरकद ते, बुखारे ते
कॅवल-सर दे किनारे त।

बावा बलवन्त

'तिभागा' का है यह परिणाम या 'वलिया' की ज्वाला का
इसी ज्वाला से नव आलोक यॉं होने ही वाला है
लगीं पंजाब की भी इन्द्र के संकेत पर आँखें
समय अब और ही होगा
कमल-सर के किनारे पर

है आवश्यक श्रमिकजन के लिए यक-प्राण हो जायें
सभी मिलकर उठें, संग्राम में हिल-मिल के सब जूझें
है मधुऋतु आ रही वह, आएगी संसार सारे पर
वसन्त आएगी जो आई समरकन्द पर, बुखारे पर
कमल-सर के किनारे पर

बाबा बलवन्त

त्रिशूल

वसल दियॉ बेचैनियॉ तक्रियॉ,
हिजर दी खाधी फंड ओ यार।
नैणा नू असॉ कढ्ढा मशाला,
होठां नॅू शक्कर खंड ओ यार।
जुल्फॉ नॅू असॉ बद्दल बन्ह्यॉ,
मुॅह नॅू बन्ह्या चंद ओ यार।

गा गा इश्क, हुस्न दे सोहिले
गई जवानी हड ओ यार।
एस विषैले चौगिरदे विच
प्यार न पॉदा ठंड ओ यार।
कर किरसाणी हाली मर गये।
ढिड वडया विच कड ओ यार।
कुट कुट चों लोहार मर गये
मोची छित्तर गंढ ओ यार
कर कर सेपियॉ सेपी मर गये
हिस्से विच इक पंड ओ यार
चुण-चुण अन्न जटेटियॉ मरियॉ
मुक्कग न तोह ते वड ओ यार।
हत्थ तरखाणॉ रट्टण पै गये
मुक्के न काणी वंड ओ यार।
चंगी भली उपजाऊ धरती
संढ्यॉ कीती संढ आ यार।

अत भूते सामन्ती फिरदे
खल्कत दित्ती त्रंड ओ यार।

त्रिशूल

हे मित्र,
हमने मिलन की विह्वलता देखी
और विछोह के झंझा प्रहार भी झेले।
हम नयन को मशाल कहते रहे
और ओठों को शक्कर तथा खाँड
केश राशि में मेघ तथा
मुख-मण्डल में चाँद के रूपक बाँधते रहे।

प्रणय और रूप के स्तवन में
यौवन जीर्ण-शीर्ण हो गया।
इस विषाक्त वातावरण में
प्रेम में शमन की शक्ति कहाँ?
हलधर हल चलाते रहे निरन्तर
और उनके पेट पीठ में पैठे रहे।
लोहार फाले कूटते मर गये
और मोची पनही गाँटते रहे
टहलुए टहल करते मर गये
किन्तु उनके भाग में एक गट्ठा अनाज ही आया
कृषक-नारियाँ अन्न बीनती रहीं
किन्तु तुष और गेहूँ तो समाप्त ही नहीं होते
खाती के हाथ में टट्टे हैं
किन्तु कानी-खोट तो समाप्त ही नहीं होती।
धरती तो खूब उपजाऊ है
किन्तु परान्नभोजी परान्नभक्षण किये जा रहे हैं

ये सामन्ती बिफरे हुए फिर रहे हैं
और जनता आतंकग्रस्त है

नित डरावे जग दे देवण,
सामराजिये घण्ड ओ यार ।
ज़ुल्म जब्र दे शोले भड़के,
अग्ग होई परचंड ओ यार ।
लूस्या गया हुस्न दा मत्था,
सड़ी इश्क दी झण्ड ओ यार ।
जग विच हाहाकार मच गई,
झुलस गये ब्रह्मण्ड ओ यार ।
जाग किरतिया, जाग किसानाँ
सिर तों आलस छण्ड ओ यार ।
उट्ठ लोहारा, ता दे भट्ठी,
तेज धौंकनी मंड ओ यार ।
दम भर के इक मार हथौडा
दातियाँ दे मुँह चण्ड ओ यार ।
मुँह सोने दा मोड किरतिया,
मार लोहे दी चण्ड़ ओ यार ।
लख गल्लाँ दी गल इक आखाँ,
बन्ह ले घुट के गढ ओ यार :
पाटी किरत गुलामी कटदी ।
जुडी जिते ब्रह्मण्ड ओ यार ।
दातियाँ, कलमाँ अते हथौड़े
कट्ठे कर लौ सद ओ यार ।
तगडी इक त्रैसूल बणाओ
युद्ध करो परचण्ड ओ यार
जै जै कार किरत दी होवे
लग्गे ज़ुल्म दी कण्ड ओ यार

मोहन सिंह

यह साम्राज्यवादी शठ
नित्य युद्ध की धमकियाँ देते हैं
अन्याय और आतंक की चिनगारियाँ भड़क उठी है
ज्वाला प्रचण्डतर होती जा रही है
रूप का माथा झुलस गया है
प्रणय की केश-राशि भी सड़ चुकी।
हे श्रमिक, हे कृषक, जागो
आलस्य को सिर से परे फेंको।
हे लोहार, भट्ठी तपा दो
धौंकनी को और तेज करो
भरपूर शक्ति से हथौड़ा चलाओ
और हँसिया का मुँह पीट दो
हे श्रमिक, लोहे का चाँटा मारकर
सोने का मुँह मोड़ दो
अपने हथौड़े की एक चिनगारी हमें भी दो
जिसे हम संसार-भर में बाँट दें
मैं तुम्हें लाख बात की एक बात बताऊँ
इसे गाँठ बाँध लो
फूटा हुआ श्रम दास बनकर दिन काटता है
जुड़ा हुआ श्रम ब्रह्माण्ड पर विजय पा लेता है
हँसिया, लेखनी और हथौड़े
ये शस्त्र इकट्ठे करो
इनसे एक शक्तिशाली त्रिशूल की रचना करो
और भीषण युद्ध छेड़ दो
श्रम की जय-जय हो
और अत्याचार की पराजय।

मोहन सिंह

उद्देश

भारती सभ्यता दा उद्देश सर्वोत्तम, स्रेष्टः
भगत होवे पुत्त माई दा, जॉ होवे सूरमा,
होय जॉ दाता विक्रमाजीत तुल संसार विच,
रूप दा खै है, अकारथ, नहीं तॉ उस दा जनम।

सूरमा है कर्म मारग दा उचेचा यातरी।
विखम एह मारग है, तिक्खी धार है तलवार तों।
बन्धनों नूं कट्टणा तलवार दे इक वार नाल,
मस्त हाथी वॉग बिधना नाल टक्टर खावना।

कौण हन बन्धन एह ? पहला, लालस ससार दे
भिन्न भिन्न पदार्था दी, जाल मुद्रा, दरब दा।
मौख देही दा भवन उच्चा जॉ नीवी झोंपडी।

मोह माया दूसरा, जणनी, पिता, पुत्री ते पुत्त,
भाई, बन्धप, मित्रता दा चार पासे दा पसार,
जिसदे विच अर्जुन जिहॉ दी वी जे जावे सुरत भौं
तॉ कोई अचरज नहीं, ते हर किसे दा सारथी
कृष्न हो सकदा नही! बन्धन बड़ा बलवान एह
बहुत वारी आख देईदा है मरना सहल है,
जे ना, मेरे मरन तो कुझ दुक्ख उपजे पुत्त नूँ
जे ना मेरी इस्तरी नादार हो के गैर दे
काम दी जाँ दान दी पातर ही रह जावे फक्त
कौण मेरी कली वरगी अति पवित्र धीअ दे
सीस ते छॉ करेगा, इस पखडी अणछोह नूँ
पाप दी दुर्गन्ध लद्दी वाउ तों रक्खेगा कौण
हाय मरना कठन है!

उद्देश्य

भारतीय सभ्यता का उद्देश्य सर्वोत्तम, श्रेष्ठ:
माता का पुत्र भक्त हो, अथवा शूरवीर
अथवा दाता, विश्व-विख्यात विक्रमादित्य के समान
अन्यथा उसका जन्म व्यर्थ है, रूप का अपव्यय है।

शूरवीर कर्म-मार्ग का विशिष्ट यात्री है
विषम यह मार्ग है, कृपाण की धार से भी तीक्ष्ण
बन्धनों को काटना कृपाण के एक ही वार में
मदमत्त गज के समान भाग्य से टक्कर लेना।

कौन-से हैं ये बन्धन? प्रथम—लालसा, ससार के
नाना पदार्थों की, मुद्रा और द्रव्य का पाश
शरीर की सुविधा-सुभीता, उच्च प्रासाद अथवा नीची मड़ैया।

द्वितीय—मोह-पाश, जननी, पिता, पुत्र, पुत्री
बन्धु, परिजन, मैत्री का चतुर्दिक् प्रसार
जिसमें अर्जुन-सरीखे भी सुधि खो बैठें
तो आश्चर्य नहीं, और हर किसी का सारथी
कृष्ण हो सकता नहीं। ये बन्धन बहुत बलवान हैं
प्राय: कहा जाता है कि मृत्यु सहज है
यदि मेरी मृत्यु से मेरा पुत्र न दुखी हो किञ्चित
यदि मेरी पत्नी दरिद्रा होकर किसी पर पुरुष के
काम अथवा दान की पात्र ही न बन जाए
कौन मेरी कली-सदृश अति पवित्र कन्या के
सिर पर छाया करेगा, कौन इस अस्पृष्ट पखुडी को
पाप-दुर्गन्ध से लदी पवन से सुरक्षित रखेगा?
हाय मृत्यु कठिन है।

स्वैहित है बन्धन तीसरा
सभ बहाने सोच जद थक जाई दा है, जान फिर
आपणे ही आप विच, दिस्सदी सपूरण वस्त है।
दान देणा जापदा है बहुत सौखा पुन्न इक
पर जे होवे जनम बन्दे दा किसे राजे दे घर,
धनी शाहूकार दे, जिस दे जहाजॉ दी कतार
सागरॉ दे नीर ते चल्ले, जिवें सुन्दरी दे गल
कण्ठ-माला स्वरन दी जिस विचालियॉ हीरे-जडत
बुतकियॉ सीने दी धडकण नाल होवण लोट-पोट
हर उभरदे भाव नाल, हर उतरदे हाव नाल।
राज होवे, दरब होवे, कर्म दा फल रूप हन,
कर्म योगी लई ही सभव है दाता हो सकण।
पर एह मन्नण-योग है, मद्धम है कुछ एह कर्म-पद,
नाल सूरमगती दे तुलना है इसदी कुझ अयोग;
दान सूरमगती दा इक जान-सुखिया पुत्त है;
खाण बहुता, कम्म थोडा देण इसदा भाग है।
हुण ज़माना होर है, हुण दान दा है अर्थ होर,
हुण एह पापी आतमा दा है सुखाला भरम इक,
हुण एह खूनी मर्द दे हथ धोण वाली गल्ल है,
हुण एह मैली इस्तरी दे दुद्ध-चिट्टे चीर हन।

हाय, हुण ओह समें किद्धर गए, ओह भगती दे युग
जदों भगती बिन अधूरे कर्म ते सभ काण्ड सन?
भगत जे चलदा सी इक, भगवान चलदा चार कोह,
जद किसे दा माल डंगर चारदा सी आप आ,
छत पॉदा सी किसे दी जद ओह बण के राज आप,
जद किसे नूं मुगल दे विचों वी दिसदा आप सी।
हाय, साडे देस दे दस सौ वड्डे दे मंद-भाग

तृतीय बन्ध हैं स्वहित,
जब सब बहाने सोचकर थक जाते हैं, तो प्राण
अपने-आपमें सम्पूर्ण दिखाई देते हैं।
दान देना बहुत सुगम पुण्य दिखाई देता है
किन्तु यदि व्यक्ति का जन्म किसी राजा के घर में हो
अथवा धनवान साहूकार के यहाँ, जिसके जल-पोतो की पक्ति
सागर-नीर पर यो चले, जैसे किसी सुन्दरी के कण्ठ में सुशोभित
स्वर्ण माला जिसकी हीरो से जडी
बुक्कियाँ वक्ष के हर स्पन्दन के साथ लोट-पोट होती हैं
हर उभरते भाव के साथ, हर उतरते हाव के साथ।
राज्य हो, द्रव्य हो—पुण्य कर्मों के फलस्वरूप।
कर्मयोगी के लिए दानवीर हो सकना संभव है।
तो भी यह मानना होगा कि यह कर्मपद मध्यम कोटि का है
शूरवीर से दानवीर की तुलना अनुपयुक्त ही है।
दानवीरता शूरवीरता का सुखप्रिय पुत्र है
यह एक विधवा-पुत्र के समान है अथवा किसी धनिक के अश्व के समान
जिसकी नीति अधिक खाना और कम काम देना है
आज का युग और है, जब दान का अर्थ भी और है
अब यह पापात्मा का सरल भ्रम मात्र है
अब यह हत्यारे हाथो को धोने का साधन मात्र है।
अब यह पापिष्ठा का दुग्ध-धवल चीर मात्र है।

हाय! कहाँ गया वह समय, वह भक्ति-युग—
जब भक्ति के बिना सब कर्म-काण्ड अपूर्ण थे?
जब भक्त के एक कोस चलने पर भगवान् चार कोस चलता था
जब वह स्वयं आ भक्तो के पशु चराया करता था
जब वह राजगीर बन कर किसी की छत छा देता था
जब वह किसी को मुग़ल के बीच भी दिखाई देता था
हाय हमारे देश के सहस्र वर्षों का दुर्भाग्य

हाय, बुड्ढी हो गई भगती असाडी भुगत-भुगत
देव-त्राला नूं बणा दित्ता समें ने वेसवा !
होया की जे कदे कोई छित्था पैं के कूक्या ?
जे किसे भुक्खे वगाह के कदे मारी भगति-माल ?
असीं भुक्खे अर तिहाए वी भगति करदे रहे।
एह करोडां जीव मत्थे घसोंदे मर गए।
मुगल ने, अफगान ने, अंग्रेज ने पाया न मुल्ल !

राह भगति दा असाडा है, हजारॉं बरस तों,
जायदा है घरों बाहर खेत तोडी जाण वॉग;
कदम साडे बहुत हन मानूस नाल इस पन्थ दे
आखदे ज्यों जट्ट, पैरीं लग्गया एह राह है।
पर नहीं इस राह विच सूरमगती दी विखमता,
हार चुक्के सूरमें साडे भगत बणदे रहे।
देख के रण विच्च चारे तरफ बन्धू आपणे
डोल जद अर्जुन गया सी, सुट्ट दित्ता सी धनुख,
जे ना हुन्दा कृष्न उसदे पास तॉ ओह भगत सी।
जे ना पृथ्वीराज नूॅ लै जॉदा बन्दी विच पा
ग़ौर नूॅ, जेतू मुहम्मद अक्खियॉ कड्ढ उसदियॉ
जे न जॉदा मारया उसनूॅ तॉ है सी भगत ओह।
इस किसम दे भगत नूॅ जग के वी उस दी माउँ ने
खोया जीवन आपणा ते कर लया खै रूप नूॅ।

देशवासी, आ ज़रा फिर सोचिये इस बात नूॅ,
ऐस मन्तर नूॅ बदल अर सोध लड़ये ज़रा कुझ;
भगत होइये, असीं दाते, नाल होइये सूरमें,
लोक सेवा, लोक-भगती; लोक-युग दे सूरमे,
दिल दी दौलत देण वाले, पुन्ज जनता-प्यार दे

संतसिंह सेखों

हाय, भक्ति अब बूढ़ी हो चुकी
समय ने देव-बाला को वेश्या बना दिया
क्या हुआ यदि कोई अधीर होकर पुकार उठा ?
यदि किसी भूखे क्षुधा-पीड़ित ने भक्ति-माला उतार फेंकी ?
हम तो क्षुधा-पिपासा में भी भक्ति करते रहे
कोटि-कोटि जीव माथे रगड़ते मर गए ।
मुग़लो ने, अफ़ग़ानो ने, अंग्रेजो ने हमारी कद्र नहीं की ।

हम सहस्रो वर्षों से भक्ति-पथ पर चल रहे हैं
प्रतीत होता है कि हम अभी घर से खेत तक ही पहुँचे हैं
हमारे पाँव इस पथ से चिर-परिचित हैं
जैसे कृषक कहते हैं—यह तो पाँव का पहचाना मार्ग है।
किन्तु इस मार्ग में शूरवीरता की विषमता नहीं है
पराजित शूरवीर ही भक्त बनते रहे हैं
रण-क्षेत्र में चारो ओर स्वजनो को देखकर
जब अर्जुन विचलित हो गया था, धनुष फेंक दिया था
यदि कृष्ण उसके पास न होता तो वह भक्त था
यदि पृथ्वीराज बन्दी बनाकर न ले जाया जाता
ग़ौर-देश को, विजयी मुहम्मद द्वारा, नेत्रहीन करके
यदि वह मारा न जाता तो वह भी भक्त था।
इस प्रकार के भक्त को जन्म देकर माता ने
अपना यौवन खोया और रूप का नाश किया

हे देशवासी, आ इस बात को फिर से विचारें-
इस सिद्धान्त को कुछ बदलें, कुछ इसमें संशोधन करें
हम भक्त हों, दानवीर हों और शूरवीर भी
लोक-सेवा, लोक-भक्ति और लोक-युद्ध के शूर
हृदय-धन के दानी, जनता-जनार्दन के प्रेमी ।

संतसिंह सेखों

एशिया

पहु फुट्टी मत्थे ते मेरे
नूर सरघी ने वहराया।
रत्तियाँ किरनाँ ने आ के
मेरे नैणां नूँ जगाया।
दूर होइयाँ आलसाँ
मैं उट्ठ्या, तूफान आया।
जाग्या फौलाद वरगा मेरा अपना ताण मैंनूँ

घोर नरकाँ नूँ मिटा के
सुरग-पुरियाँ मैं वसाइयाँ
नत्थ के जमदूत, वागाँ
हत्थ लोकाँ दे फडाइयाँ
सदा वलदे भाँवडा ते
सीत कणियाँ मैं वहराइयाँ
अग्ग मुड लग्गी उन्हाँ नूँ; आये जिहड़े लाण मैंनूँ

कृष्ण मेरे दी सुनीति
कूड़-नीति नूँ वंगारे
जो किसे दी पत्त लुट्टे
जो किसे दा हक्क मारे
सिदकियाँ दा पक्ख पूरे
दुद्ध चौं पाणी नितारे
मैं हाँ उस नीती दा वारिस, लक्ख उस ते माण मैंनूँ।

बुद्ध मेरे दी अहिंसा।
मेरे भिक्षू वंडदे ने।
ते मेरे नानक दे सोहिले।

एशिया

मेरे माथे पर पौ फटी
उषा ने आलोक वर्षण किया।
रक्तिम किरणों ने आकर
मेरे नयनों को जागृति दी।
आलस्य दूर हुआ;
मै उठा मानो एक तूफ़ान जाग उठा।
मुझे अपनी शक्ति फौलाद के समान प्रतीत हुई।

घोर नरक का संहार कर
मैंने स्वर्गपुरियो का निर्माण किया।
यमदूत को नाथ कर, उसकी बागे
लोगो के हाथ मे दे दी।
मै सदा धधकती ज्वाला पर
शीतल बूँदे बरसाता रहा।
वे ही आग में भस्मीभूत हुए जो मुझे जलाने आये थे।

मेरे कृष्ण की सुनीति
कपट-नीति को चुनौती दे रही है।
यह चुनौती देती है उन्हे जो किसी की मान-मर्यादा लूटते हैं
अथवा किसी का स्वत्व हरण करते हैं
यह सदा सत्य का पक्ष लेती है
और नीर-क्षीर विवेचन करती है
मै उस नीति का उत्तराधिकारी हूँ, मुझे उस पर अपरिसीम गर्व है।

मेरे बुद्धदेव की अहिसा
मेरे भिक्षुओ द्वारा है वितरित
मेरे नानक की वाणी

जाबरॉ नूँ भडदे ने।
दोस्ती, दुनियॉ दे अन्दर,
मेरे थांते गढदे ने।
मैं करोडॉ दा सनेही, कल्ल्यॉ न जाण मैंनूँ।

मै सलाहे ना कदे
हल्ले, लडाई, धक्के शाही।
अमन चाह्या मै सदा,
तारीख देंदी है गवाही।
जित्थे मिल के बैहूण सारे,
मै हॉ उस मंजिल दा राही।
जिंदगी दे प्यार दे सुफने सदा नइयाण मैंनूँ।

सच्च का पल्ला न छड्डया,
पी लए विस दे प्याले।
वेद, गीता, कुरान देंदे
सिदक मेरे दे हवाले।
मेरे लहू का भेद दस्सन
मठ्ठ गिरजे ते शिवाले।
गीत मैं हां लोकता दा, संत सूफ़ी गाण मैंनूँ।

कौण मैंनूँ पाड़ सके,
पा के मज़्हबॉ दी कहाणी?
मेरी छाती विच्चों फुट्टण।
गंगा ते ज़मजम दे पाणी।
लीक हद्दॉ दी न तोडे,
सॉझ सम्यॉ दी पुराणी।
उहियो लीकॉ खिच्च दे, जो मुड्ढ़ों लीकॉ लाण मैंनूँ।

अत्याचारियो को फटकार रही ह
विश्व-भर से मैत्री-सम्बन्ध
मेरे देवता स्थापित कर रहे हैं
मै कोटि-कोटि का स्नेही, मुझे अकेला मत समझो

मै कभी सराहता नही
आक्रमण, युद्ध, बल-प्रयोग
मै सदा शाति चाहता रहा हूँ
इतिहास साक्षी है।
जहाँ सब मिलकर बैठते हैं
वही मेरा गन्तव्य है
जीवन-प्रेम के स्वप्न मुझे मदमत्त बना देते है।

मैने कभी सत्य का आँचल नहीं छोडा
भले ही मुझे विप-पान करना पडा
वेद, गीत और कुरान
मेरे अडिग सत्य-प्रेम के साक्षी हैं
मेरे रक्त का रहस्य कहते हैं—
मठ, गिरजे और शिवालय।
मै जन-गीत हूँ, जिसे सन्त और सूफी गाते है।

मुझे कौन फाड सकता है
साम्प्रदायिक कथा सुनाकर।
मेरे वक्ष से ही फूटकर बहते है
गंगा और जमजम के नीर
सीमा-रेखाएँ नही तोड सकतीं
युग-युगान्तर के सायुज्य को।
आज वही रेखाएँ खीच रहे है जो आदि काल से मेरी निन्दा
करते रहे है

आपणे ही ढिड्ड दे अन्दर
किसने काती है खुभाई?
एशियाइयाँ नाल है नहीं
एशियाइयाँ दी लडाई
है उन्हाँ दे नाल मेरी
जिन्हाँ ऐथे लुट्ट पाई।
सभ्भिता लहुयाँ दे पलदी आए जो सिखलाण मैंनूँ।

हाणियाँ ने हाणियाँ लई
हार प्रीताँ दे परोये।
मासको, दिल्ली ते पीकन
जोड के मोढे खलोये।
चीन दी दीवार वाँगू,
अज्ज मेरे लोक होये।
खक्खडी होवणगे, जिहडे आउणगे टकराण मैंनूँ।

जाग उट्ठे मेरे कल्लर,
वादिया, मैदान, झल्लाँ।
नील, गंगा, वालगा,
यंगसी, झना नूँ पैण छल्लाँ।
करन मेरे राह दे किणके,
तारयाँ दे नाल गल्लाँ
अंबराँ नूँ छोह के परवत मेरे उच्याण मैंनूँ।

मेरे माओ दी दरिढता
मेरे अस्टालन दी नीती।
मेरे गांधी दी सचाई,
लोकता दे नाल प्रीती।
हक्क लई संग्राम करना,

क्या कोई अपने ही पेट मे
कृपाण घोप लेना है?
एशिया-निवासियो से नही है
एशिया वालो का कोई द्वंद्व
हॉ, उनसे मेरा युद्ध है अवश्य
जो यहॉ लूट मचा रहे है
जो मुझे सीख दे रहे हैं कि सभ्यता रक्त पर पलती है।

समान-वय बन्धुओ ने एक-दूसरे के लिए
प्रीति-मालाएँ गूँथी हैं
मास्को, दिल्ली और पीकिंग
कन्धे-से-कन्धा जोड़कर खड़े हैं।
चीन की प्राचीर के समान
आज मेरे लोग है
जो इससे टकरायेंगे खण्ड-खण्ड होकर गिरेंगे।

जाग उठी है मेरी ऊसर धरती
पार्वत्य घाटियॉ, मैदान और जंगल;
नील, गगा, वोल्गा,—
याग-सी, और चनाव में लहरे उठ रही हैं।
मेरे पथो के रज-कण तारो से बात कर रहे हैं
गगन-चुम्बी पर्वत मुझे गौरवान्वित कर रहे है।

मेरे माओ की दृढ़ता
मेरे स्टालिन की नीति
मेरे गान्धी की सत्यता
और जन साधारण से प्रीति
स्वत्व के लिए समर करना

मेरयां लोकॉ दी रीती ।
ना किसे दी ईन मैनूं, न किसी दी काण मैनूँ ।

जदों तीकर धरतियॉ ने,
घुम्मणा सूरज दुआले ।
तुम्बदी बिजली है बद्दल,
जिस तहॉ घनघोर काले ।
रैहूणगे भिडदे जबर दे
नाल बदे अणखवाले ।
लीक है पत्थर' ते, ऐवें जाण न अणजाण मैनूँ ।

हुदियॉ ने सराधियॉ नित,
न्हेरयां दी कुक्ख विच्चों
जागणा है क्रांती ने
हर किसे दी भुक्ख विच्चों
सिरजणा नव-जुग दी होणी
सरब-सॉझे दुक्ख विच्चों
जिंदगी दी मस्स्या ते चन्न नज़री आण मैनूँ ।

संतोखसिंह धीर

यह मेरे लोगों की नीति है।
मुझ पर किसी का प्रभुत्व नहीं, मुझे किसी का भय नहीं।

जब तक धरती—
सूर्य के गिर्द घूमती रहेगी
घन-घोर श्याम मेघ-पुञ्ज को
जैसे बिजली धुनकती है
वैसे ही जूझते रहेंगे अत्याचार से
स्वाभिमानी मनुष्य।
यह शिला-रेखा के समान ध्रुव सत्य है; मुझे अनजान मत समझो!

उषा नित्य जन्म लेती है
अन्धकार की कोख से;
क्रांति जागेगी
जन-जन की भूख में से;
नव-युग का भाग्य-निर्माण होगा
सर्व-व्यापी दुःख से।
जीवन की अमावस्या में मुझे चन्द्रमा दिखाई दे रहा है।

सन्तोखसिंह धीर

कदों रात दी चुनी फट्टणी

नैणाँ कोलों नींदराँ खुस्सियाँ, ते नींदर तों सुपने।
बेगाने ताँ बेगाने सी, अपने रहे न अपणे।
बाहाँ कोलो बाहाँ बिछड़ियाँ, की कराँ मैं गजरे?
हुण न सजरी पैड हुसन दी, हुण न हउके सजरे?
रूह 'चों गीत गवाच रहे ने, ते बुल्हियाँ तो हासे।
दर भिड गए इकराराँ वाले, टुट्टे सद्धर दे कासे।
अज वी बद्दल रँगले रँगले, अज वी पैण फुहाराँ।
पर अज तेरे वादे दीयाँ, हाराँ दे गइयाँ हाराँ।
अज वी धरती ते फुल्ल खिडदे, अम्बर टहकण तारे।
पर तेरे ओह नैण बणे ने, बिजली दे लिश्कारे।
अजे वी राताँ जुल्फाँ जहियाँ, होठाँ जहियँ दुमेलाँ।
अजे वी फुल रुखसाराँ वरगे, हंझुआँ वांगाँ त्रेलाँ।
पर,
जुल्फा दे परछावें मिट गये, ते पलकाँ दे साये।
तपदे थल ते लम्मड़ा पैंडा, किझ कुई मंज़िल पाये।
अज होठाँ ते झुरमट बण के, रह गइयाँ फरियादाँ।
छिपद्याँ तार्‍याँ वाँगर होइयाँ, धुँदलियाँ धुंदलियाँ यादाँ।
राहाँ दे विच राह बण गइयाँ, प्रीताँ दियाँ उडीकाँ।
नूराँ दा दिल बाग़ी होया, वफा दे मुँह ते लीकाँ।
रूप निमाणा, इश्क निमाणा, तकड़ियाँ ने दीवाराँ।
सिर दुडवा के टुरियाँ जित्ताँ, हस रहियाँ ने हाराँ।
न हैं रूप दी माँग सँधूरी, न कुई सिहर्‍याँ वाला।
चन्दरमा दा चानण पीला, ते सूरज हैं काला।
कदों रात दी चुन्नी फटणी, मिरा हनेरा झाके।
हझुआँ नूँ कोई चुम्मेगा, कद तक सूरज आ के।

सुरजीत रामपुरी

रात की चूनरी कब फटेगी ?

नयन से निद्रा गुम है और निद्रा से स्वप्न बिछुड़ चुके हैं।
बेगाने तो बेगाने थे, अपने भी अपने न रहे।
भुज-पाश से भुजाएँ बिछुड़ चुकीं, तो ये गजरे किस काम के?
अब रूप के पदचिह्न नूतन नहीं, न उसके निःश्वास ही नूतन हैं।
अन्तस् से गीत गुम हो रहे हैं, होठो से हँसी का बिछोह हो रहा है।
इकरार का दरवाज़ा बन्द हो चुका, साथ का प्याला टूट चुका।
आज भी मेघ रंगीन है, आज भी फुहार बरस रही है।
किन्तु आज तेरे वचन कभी पूरे न होंगे।
आज भी धरती पर फूल खिलते, आकाश में तारे जगमगाते हैं।
किन्तु तेरे वे नयन तो चपला का प्रकाश बन चुके।
अब भी रात्रि केश-जाल के समान है, क्षितिज ओठो-जैसे हैं।
अब भी फूल कपोलो के समान है और ओस-बिन्दु अश्रुओ के सदृश।
किन्तु,
केश-जाल की छाया मिट चुकी है, पलको के साये भी गुम हैं।
तपती मरुभूमि और लम्बा मार्ग, भला कोई गन्तव्य तक कैसे पहुँचे ?
आज सभी फरियादें ओठो पर आ आ कर रह गई
स्मृति छिपते तारे के समान धूमिल हो गई।
प्रीति की प्रतीक्षा मार्ग में मार्ग बनकर रह गई।
ज्योति का हृदय भी दागदार है, वफा का मुख क्षत-विक्षत है।
रूप दीन-हीन है और प्रणय असमर्थ; प्राचीरें प्रबल हैं।
विजय पराजित होकर प्रस्थान कर चुकी, पराजय अट्टहास कर रही है।
रूप की माँग में सिन्दूर नहीं, कोई सेहरे वाला भी दृष्टिगोचर नहीं होता।
चाँद की चाँदनी पीली है, सूर्य काला है।
रात की चूनरी कब फटेगी ? मेरा अन्धकार प्रतीक्षा में है।
कब कोई सूर्य आकर अश्रुओ को चूमेगा ?

सुरजीत 'रामपुरी'

इञ्ज ओह मेहे वेहड़े आए

जिवें भविक्ख पाहुणा बण के
अज दे उजड़े वेहड़े अन्दर
इक झात पाउण लई आए
इञ्ज ओह मेरे वेहड़े आए

ज्यों औड़ी धरती दे उत्ते
ठहर ठहर के छाए बद्दल
बीजॉ भरी धरत नूॅ जिद्दॉ
सब्ज़ जिहा कोई सुपना आए ।

मधुर मधुर सरघी दा बुल्ला
ज़िमीं दे दुखदे पिण्डे उत्तों
अपणी झोली दे विच पाके
चोभॉ चीसॉ चुगदा जाए ।

ज्यों सस्सी दे छाल्यॉ हेठॉ
जाग पैण कोई सीतल झरने
ज्यों फ़रहाद दे तेसे अग्गों
पर्वत आपे ही हट जाए ।

थक्के हारे दिहुॅ ल्यी जीकर
ज्यों संध्या प्यी सेज विछावे
सरघी दियॉ कनूलियॉ तीकर
कोई किरन जिवें लहराए ।

ज्यों अध-सुती विधवा अँदरों
पुनर-मिलन दी कूॅबल फुट्टे
सुपने विच गलवकड़ी पाके
चुम चुम अपणा नूर वधाए ।

यों वे मेरे आँगन आए

ज्यों भविष्य पाहुना बनकर
वर्तमान-ऊजड़-आँगन में
एक अल्प-झाँकी हित आए,
यों वे मेरे आँगन आए।

अनावृष्टि मारी धरती पर
मन्द-मन्द घिर आएँ बादल
बीज-भरी धरती को जैसे
स्वप्न हरित-सा कोई आए

उषा-समीरण का मृदु झोंका
धरती की दुखती काया से
चुभन चीस सब चुगता जाये
निज झोली में रखता जाये।

सस्सी के छालों के नीचे
जाग पड़े ज्यों शीतल निर्झर
ज्यों फरहाद के तेशे सम्मुख
पर्वत स्वयमेव हट जाये।

देख थका-माँदा दिन जैसे
माध्य-सुन्दरी सेज बिछाए,
ज्यों ऊषा की कर्णपटी तक
सुन्दर किरण कोई लहराये।

ज्यों विधवा की अर्ध-सुप्ति में
पुनर्मिलन की कोंपल फूटे
स्वप्न बीच आलिंगन पाकर
चूम-चूम निज नूर बढ़ाये।

शत-शत युग आये औ' बीते
तब वे मेरे आँगन आये
इन्द्रपुरी की कोई अप्सरा
जैसे मर्त्यलोक अपनाये ।

आज मेरा गृह भाग्यशाली है
आज मेरा गृह स्वयमपि सुखाग्नि
आज मेरा गृह स्वयमपि नाचे
आज मेरा गृह स्वयमपि गाये

आज मेरे आँगन के अन्दर
सदियों सोये चूड़े छनके
कोई मेघ समान चूनरी
प्राचीरों पर अब लहराये ।

दुग्ध-धार गाई न कभी यों
भूरी भैंस न यों पनहाई
अंजुलि भर-भर माखन निकले
यों न किसी ने दूध हिलाये ।

यों न कभी भी गेहूँ-बालियाँ
स्वर्ण-पायलों-जसी छनकी
तारों-जैसे सुन्दर दाने
यों न किसी ने ढेर लगाये

इसी धरती की गन्ध-कोख से
ऐसी कभी न दुहिता जन्मी
सिंहों से बढ़कर बलशाली
किसने ऐसे सुत उपजाये ?

पिछली उमरे बैठ किसे ना
मेहनत अते मुहब्बत माणी
पतझड़ निरी बहारॉ वरगी
जिस दे घोर घनेरे साए।

इञ्ज किसे ना सुपने बीजे
इञ्ज किसे ना सुपने साम्भे
सुपन्यॉ दी इस फसल दे रुत्ते
इञ्ज किसे ना गाह गहाए।

एह सुपना है जीवन-जेडा
एह सुपना है जीवन-जोगा
मैं की तॉघॉ सम ही तॉघण
सच बण के एह सुपना आए।
इञ्ज कोई मेरे वेहडे आए।

हरनाम सिंह नाज़

वृद्धावस्था में न किसी ने
श्रम औ' रति का यों फल पाया
मधु-ऋतु सी पतझड़ यह कैसी ?
जिसके घने सघन हैं साये ।

अनुपम यह स्वप्नों का रोपन
अनुपम यह स्वप्नों का सञ्चय
स्वप्नों की फ़सलों पर किसने
गाहे धान्य तथा ओसाये ?

यह सपना है जीवन-जैसा
जीवन ही के योग्य स्वप्न यह
मेरी सबकी यही साध है
सच बनकर यह सपना आए,
यों कोई मम आँगन आए।

हरनाम सिंह 'नाज़'

बँ ग ला

चयन : प्रेमेन्द्र मित्र

अनुवाद : हरिशंकर शर्मा

कवि-नाम	कविता
अजित दत्त	जंगला
आनन्द बागची	चित्रलेखा
उमादेवी	कुआलालम्पुर के पथ पर
दिनेश दास	मन-ही-मन
नीरेन्द्र चक्रवर्ती	नितान्त कंगाल
प्रमथनाथ विशी	दोष नहीं, भूल नहीं
प्रेमेन्द्र मित्र	दशानन
बुद्धदेव बसु	मरुपथ
मणीन्द्र राय	हम कुछ लोग
वाणी राय	आखिरी बात
सञ्जय भट्टाचार्य	मेरी मृत्यु को भूल जाना
सुधीन्द्रनाथ दत्त	प्रतीक्षा
सुनीलकुमार नन्दी	स्वर्ग-बीज
सुभाष मुखोपाध्याय	सुन्दर
हरप्रसाद मित्र	सत्य
हुमायूँ कबीर	प्रतारणा

जानाला

समस्त पृथिवी नय, समस्त आकाश नय·
नय आदिगन्त माठ, सिन्धु-गिरि-माला,
हीनप्रभ चोखे शुधु एकखण्ड विश्वरूप—
काठेर सीमाना ऑटा एकटि जानाला।

सब देखा ढेके याय चारिधारे निरेट देयाले,
उत्सुक नयन तबु मलिन संधानी शिखा ज्वाले।
आकाशेर खण्ड नील, गुटिकय तारा आर फुल,
कभु वा झड़ेर वेगे गाछे गाछे शाखारा आकुल।
मुहूर्ते हारिये याओया कखनो वा एकझॉक पाखी,
विश्वेर अनन्तरूप किछु आसे, किछु देय फॉकि।
छोट कुठरिते आज एकटि जानाला शुधु आछे,
तबु, हे सुन्दर धरा, तुमि आछ इन्द्रियेर काछे।

जंगला

न तो सम्पूर्ण धरा, न समस्त आकाश,
न ही दिगन्त तक फैला हुआ मैदान, और न सिन्धु-गिरि-माला,
प्रभाहीन नयनो में केवल एकखण्ड विश्वरूप—
काठ की सीमा में आबद्ध एक जगला।

सम्पूर्ण दृश्य ढँक जाता है चारों ओर की ठोस दीवारो से,
उत्सुक नयन फिर भी मलिन संधानी शिखा जलाते।
आकाश का एक नील खण्ड कुछ-एक तारे और फूल,
या कभी झझा के वेग से वृक्षो की शाखाएँ आकुल।
अथवा कभी मुहूर्त-भर में विलुप्त होता हुआ पक्षियो का एक झुण्ड;
विश्व का अनन्त रूप कुछ दिखाई देता
और कुछ छल जाता है।
इस छोटी-सी कोठरी में आज
केवल एक जगला है
फिर भी हे सुन्दर धरा
तुम हो इन्द्रियो के निकट।

नयने निबन्त आलो, धीरे धीरे मेघ जमे कालो,
कोथा से सोनालि रौद्र प्लावनेर मतन जोरालो ?
आमार स्तुतिर सब प्रयोजनइ फुरालो तोमार ?
निःशेषे नियेछो सबि ? दिते पारि किछु नाइ आर ?
तबु आजो खोला आछे एकटि जानाला—
आकाङ्क्षार, वासनार, लोभेर अतृप्त एक ज्वाला।

सकलि फुराय, सबि अन्धकारे हय अपगत—
मनेर औज्ज्वल्य आर विश्वेर दाक्षिण्य-कणा यत।
शुधु तृष्णा आरो आरो बाडे
यतक्षण ए-जानाला रुद्ध नाहि हय एकेबारे।
यतक्षण इन्द्रियेर प्रदीप शिखाय
छोट बह्नि दावाग्निर मत विश्वग्रासी हते चाय,
ततक्षण, हे पृथिवी, कोनो एक जानालार काछे,
मने रेखो, एकजन पुरातन परिचित आछे।

अजित दत्त

नयनों में बुझता-सा प्रकाश,
धीरे-धीरे बादल जमते काले,
प्लावन की तरह प्रबल
वह सुनहरी धूप कहॉ?
तुम्हारी स्तुति करने का मेरा
सारा उद्देश्य ही व्यर्थ हो गया?
तुमने सब कुछ ले लिया निःशेष
क्या कुछ दे न सकता और?
आकांक्षा, वासना, लोभ की एक अतृप्त ज्वाला-सा
तो भी आज खुला हुआ है एक जगला।

सब कुछ समाप्त हो जाता
मन की उज्ज्वलता और
विश्व की दया-माया का सारा अश—
सभी अंधकार मे विलीन हो जाता है।
केवल तृष्णा बढती ही जाती,
जब तक कि यह जगला बिल्कुल बंद नहीं हो जाता।
जब तक इंद्रियो की दीपशिखा पर
छोटी-सी लौ दावाग्नि के समान
विश्वग्रासी होना चाहे,
तब तक हे पृथ्वी, याद रखना,
किसी एक जगले के निकट
कोई एक पुराना परिचित है।

अजित दत्त

चित्रलेखा

कोथाय तुमि पौराणिक छड़ाय ॲका मेये ?
यमुनावती सरस्वती किंवा सती कङ्कावती
रोदेर बॉका कलस कॉखे चलेछो गान गेये ॥

नटेगाछेर कड़े आङुल छायाटि दोले जले !
कालेर चर तेपान्तर व्यङ्ग करे बानाय घर,
आबार सेइ बालु-शहर भाङे से शिशु-छले ॥

लङ्का गाछे रविवारटि राङा टुकटुक करे ।
एखन शुधु क्रुद्ध दिन आकाशे तोले बॉका सङिन,
वृष्टि पडे मने-मनेर धूसर छाया-घरे ॥

कोथाय तुमि गियेछो चले लज्जावती वधू ।
वकुलतला अन्धकार अचिनकालेर पाल्किटार
बन्धद्वारे दिगन्तेर हृदय केर धुधु ॥

आनन्द बागची

चित्रलेखा

कहाँ हो तुम
परम्परागत ग्रामगीतो में वर्णित बाला—
यमुनावती, सरस्वती अथवा सती ककावती,
बगल में दबाये वक्र किरणो का कलश
चली जा रही गान गाती ॥

चौलाई के पौधे की कनिष्ठा उँगली की
डोलती छाया जल में।
काल का चर तरुहीन सुनसान मैदान मे
व्यंगपूर्वक बनाता घर
और फिर उस बालू की नगरी को
तोड़ देता शिशु सुलभ कौतुक से ॥

मिर्च के पौधे पर रविवार की
लालिमा चमचम करती
अब सिर्फ क्रुद्ध दिन
आकाश में उठा रहा अपनी बाँकी संगीन,
वृष्टि पड़ती मन ही मन के
धूसर छाया-घर में ॥

कहाँ चली गई तुम लज्जावती वधू!
वकुल तले अन्धकार
अपरिचित काल की पालकी के रुद्ध द्वार पर
दिगन्त का हृदय करता धू-धू ॥

आनन्द बागची

कुयालालामपुर याबार पथे

आमरा येते चेयेछिलाम कुयालालामपुर—चिर-ईप्सित देश,
आमरा भेबेछिलाम—
नूतन सूर्य आलो ज्वालाबे आमादेर चोखे
नतुन पाखिर सुर जागबे आमादेर कण्ठे !
सुदूर थेके दारुचिनिर मिठे गन्ध जागा
बातासे थाकबे लवङ्ग—एलाचेर शीतल छाँया,
पक्षीराजेर कालो पाखार आडाले ढाका पड़बे
समस्त आकाश—तार चाँद तारा सूर्य निये।
आमारा भेबेछिलाम—याब कुयालालामपुरे
ज्वलन्त उत्साहेर दीप्त मशाल निये।

आमरा चलेछिलाम कुयालालामपुरेर पथ दिये,
पथे नामल गभीर रात्रि तार अज्ञात अन्धकार
अज्ञात लोकेर—नक्षत्रलोकेर गोपन रहस्य निये—
आमरा भय पेलाम।
आमरा भय पेलाम—आमादेर पाण्डु गाल गर्ते बसानो,
कङ्कालेर गाये येन चादर जड़ानो।

कुआलालम्पुर के पथ पर

हमने जाना चाहा था कुआलालम्पुर—
हमारा चिर-आकांक्षित देश।
हमने सोचा था—
नूतन सूर्य
ज्योतित करेगा हमारे नयनो को
अभिनव पंछियों का सुर
फूट पड़ेगा हमारे कण्ठो में!
दालचीनी की अति मीठी गन्ध से बोझिल
दूर से आती हुई मद-मद वायु में
लौंग और इलायची का शीतल स्पर्श होगा,
पक्षीराज के काले पखो की ओट में
ढ्ँक जाएगा सम्पूर्ण आकाश
अपने सूरज चाँद और तारो को लेकर।
हमने सोचा था—
ज्वलन्त उत्साह की दीप्त मशाल लेकर
जायेंगे कुआलालम्पुर।

हम बढ़ रहे थे कुआलालम्पुर के पथ पर,
पथ में गभीर रात्रि अवतीर्ण हुई
अपना अज्ञात अन्धकार लिए
अज्ञात लोक का—नक्षत्र लोक का
गोपन रहस्य लिये—
हम भयभीत हुए!
हम भयभीत हुए—
हमारे गढ़ो में धँसे हुए निस्तेज गाल,
मानो कंकाल के शरीर पर चादर मढ़ी हुई।

आमादेर चोखेर कोले कत युगेर अन्धकार
कत तारुण्येर विश्वासघातकतार हाहाकारे—
कत जरार निरुपाय कान्नाय—
आमादेर प्राणेर प्रवाहे हृदयहीनतार शैत्य।
ताइ यखन नामल सकाल तार अरुण आलोर आश्वास निये
झरिये दिल आकाश तार पाखा थेके
अनेक सूर्य अनेक तारा अनेक ग्रह-उपग्रह—
अनेक चाँदेर मोमगला ज्योत्स्नार सुधा—
आमरा भय पेलाम।
एलो ऊषा ओ सन्ध्या—तादेर असीम भरसा निये
निभे गेल रात्रि तार अजानार हाओयाय
डुबे गेल दिवा तार जानार समुद्रे
आमारा भय पेलाम।

आमरा भय पेलाम—फाँपा मानुष आमरा
जानलाम सेइ क्षणे कतटा शून्य आमादेर मन!
जानलाम से मुहूर्ते कतटा फाँका आमादेर जीवन!
आमादेर चोखे से बर्ति कोथाय
याते नतुन सूर्य ज्वालबे तार अरुण शिखा?
आमादेर कण्ठे से घोषणा कोथाय
याते बाजबे अनन्तेर अगाध रागिनी?

हमारे नयन-क्रोड़ में संचित है कितने युगो का अंधकार
तारुण्य के कितने विश्वासघातक हाहाकार में—
जरा के कितने निरुपाय क्रन्दन में—
हमारे प्राणो के प्रवाह में
हृदयहीनता का शैत्य।
इसीलिए जब प्रभात अवतीर्ण हुआ
अपने अरुण आलोक का आश्वास लेकर
आकाश ने अपने पंखो से झरा दिए
अनेक सूर्य अनेक तारे अनेक ग्रह-उपग्रह—
अनेक चाँदो की मोम की भाँति गली हुई
ज्योत्स्ना की सुधा—
हम भयभीत हुए।
आई संध्या और ऊषा—अपना असीम आश्वास लिये
बुझ गई रात्रि अपनी अज्ञात-हवा में
डूब गया दिन अपने ज्ञात-समुद्र में
हम भयभीत हुए।

हम भयभीत हुए—हम स्फीत मानव
उसी क्षण जान सके
है कितना शून्य हमारा मन!
उसी घड़ी जान सके
है कितना खोखला हमारा जीवन!
हमारे नयनो में वह बाती कहाँ
जिससे नूतन सूर्य जला सके
अपनी अरुण शिखा?
हमारे कण्ठ में वह उच्च निनाद कहाँ
जिससे बज उठे अनन्त की अगाध रागिनी?

लोभेर गलित शवे आसक्त आमादेर नासा
केन पाबे दारुचिनि देशेर हाओयार सौरभ ?
आमादेर से विश्वास कोथाय
याते भराट हबे समस्त फॉका, भालबासार पूर्णताय ?
आमरा ताइ येते येते
कुयालालामपुरेर पथे येते
थमके दॉड़ालाम—अविश्वास करलाम आर भय पेलाम।

आमरा भय पेलाम।
सङ्गे सङ्गे नामल एक प्रेतेर छाया
सहास्य नीलाकाशे वज्र-विह्वल पिङ्गल मेघेर मतन,
उत्थित होलो से प्रेतेर छाया
आमादेर सुदूर भविष्यतेर उत्तराधिकारीदेर मुखेर उपरे।
तारा—सेइ पूर्व ओ उत्तर पुरुषेरा
चले गेल आमादेर सम्मुख दिये—
तारा चले गेल आमादेर पिछन दिये—
तारा चले गेल सूर्यके—प्रभातेर आलो-के अति सहजे
मोमेर बातिर मतन हाते निये—
तारा चले गेल स्वप्नेर मतन सुरभि बातासे गा एलिये
कत वृष्टिझरा रातेर गान गुनगुनिये
गेल आनन्दित अश्रुर कत शीतल शिशिर झरिये

लोभ के गलित शव पर
आसक्त है हमारी नाक
फिर क्योंकर पा सके वह
दालचीनी के प्रदेश की हवा का सौरभ?
हममें वह विश्वास कहाँ
जिससे भर सके समस्त शून्यता,
प्रेम की पूर्णता से?
इसी से हम जाते-जाते
कुआलालम्पुर के पथ पर चलते-चलते
चौंककर रुक गए—
अविश्वास किया और भयभीत हुए।

हम भयभीत हुए।
संग-संग उतरी एक प्रेत की छाया
हँसते हुए नीलाकाश में
वज्र-विह्वल पिंगल मेघ-समान
उठ खड़ी हुई वह प्रेत की छाया,
सुदूर भविष्य के हमारे उत्तराधिकारियों के मुख पर।
ये सब—उसी पहिली और बाद की पीढ़ियों के
चले गए हमारे सामने से—
वे चले गए हमारे पीछे से—
वे लोग सूर्य को—प्रभात के प्रकाश को
सहज भाव से मोमबत्ती की भाँति
हाथ में लिये चले गए—
वे स्वप्नवत चले गए सुरभित वायु में
शरीर को मस्ती से हिलाते-डुलाते हुए
वर्षा से भीगी रात के कितने गान गुनगुनाते हुए
आनंदाश्रुओं के कितने शीतल हिमकण बरसाते हुए

गेल—रातेर अतल रहस्य चोखे निये।
गेल कत सहजे उत्ताल काल-समुद्रेर उद्दाम तरङ्ग-विभङ्ग
पार हये—
आमरा भय पेलाम—
आमादेर कि से समुद्रजल डाक देयनि
तार अफुरन्त उल्लासे—अगाध कौतुके—अपार ममताय?
येमन डाक दियेछिल पूर्वपुरुषदेर? येमन डाक देबे उत्तर
पुरुषदेर?
आमादेर कि बलेनि उदार रात्रिर विवृहल आकाश
तार अकूल रहस्येर गुण्ठन घुचाते?
आमादेर कि डाकेनि प्रमत्त बातास
देयनि कि अजाना पुष्पलता-विटपीर सौरभके उपहार?
येमन तादेर दियेछिल आर अन्यदेरओ देबे?
तबु आमरा द्विधाय रइलाम—आमरा भय पेलाम,
कारण आमरा फॉपा मानुष,
आमादेर मरा मने एक निछक शून्यता
आमादेर जीवन एक फॉका जीवन!

के देबे आमादेर कुयालालामपुरेर सम्वाद
के याबे आमादेर कुयालालामपुरेर पथेर सङ्गी हये?
आमरा ये फॉपा—फॉका—शून्य!

चले गए रात के अतल रहस्य को आँखो मे बसाये।
कितने सहज में उत्ताल काल-समुद्र के
उद्दाम तरंग-विभंग को पार कर चले गए—
हम भयभीत हुए—
क्या उस समुद्र-जल ने
अपने अपरिमित उल्लास से
अगाध कौतुक से
अपार ममती से
नहीं पुकारा हमें?
जिस प्रकार उसने पुकारा था पहिली पीढियो को?
जिस प्रकार पुकारेगा बाद की पीढियो को?
उदार रात्रि के विह्वल आकाश में
हमसे नहीं कहा क्या
अपने असीम रहस्य का अवगुण्ठन हटाने को?
क्या हमें नही पुकारा प्रमत्त वायु ने,
हमे नहीं दिया क्या
अज्ञात पुष्पलता विटपी के सौरभ का उपहार?
जिस प्रकार उन्हें दिया था
और दूसरो को भी देगा?
फिर भी हम दुविधा में पडे रहे—हम भयभीत हुए,
क्यो कि हम हैं स्फीत—छूँछे मानव
हमारे निर्जीव मन में
है केवल एक कोरी शून्यता
हमारा जीवन है एक केवल खोखला जीवन!

कौन देगा हमें कुआलालम्पुर का सम्वाद
कौन जाएगा हमारे साथ
कुआलालम्पुर के पथ का साथी हो?
हम जो छूँछे—रिक्त—शून्य है!

आमादेर माटि आर सेखानेर माटिर मध्ये
चिड़ धरेछे आमादेरइ पायेर तलाय,
आमरा यत एगोइ पेरोते पारि ना सेइ चिड़—सेइ खाल.
आमादेर पाण्डुर गाले ओपारेर हओया एसे लागे स्वप्नेर मत,
आमादेर गर्ते-बसा चोखे जागे सेखानकार आलो स्वप्नेर मत,
आर यखन सेखानकार दारुचिनि हाओयाय
आमादेर समस्त साधना समस्त बासना
तपस्यालब्ध फलेर मतन उन्मुख हये ओठे
कविताय—छबिते—गाने
ठिक सेइ मुहूर्तेइ समस्त कविता छबि गान निभे याय
एकटु हाओयाय क्षणिकेर फुलझुरिर मतन,
कारण आमरा यारा लिखि, यारा आँकि, यारा गाइ
आमरा सकलेइ फाँपा, आमरा फाँक, आमरा शून्य।
कुयालालामपुर—से एक स्वप्नमय देश
सेखाने पौंछते पारिना कोनो-दिनइ !
तबु स्वप्न देखि सेखाने पौंछबार—चिरादिनइ !

उमादेवी

हमारे यहाँ की मिट्टी और वहाँ की मिट्टी के बीच
दरार पड़ गई है हमारे ही पैरो के तले,
हम जितना आगे बढते हैं
इस दरार—इस खाई को पार नहीं कर पाते,
हमारे पाण्डुर गालो पर उस पार की हवा
सपनों-सी आकर लगती है,
हमारी गढ़े में धँसी आँखो में
वहाँ का प्रकाश
सपनो की तरह दिपने लगता है,
और जब वहाँ की दालचीनी-युक्त हवा से
हमारी समस्त साधना समस्त वासना
तपस्या द्वारा प्राप्त फल की भाँति
उन्मुख हो उठती है
कविता में, चित्र में, गान में—
ठीक उसी क्षण मिट जाते हैं
सम्पूर्ण कविता, चित्र और गान
तनिक-सी हवा लगने से
क्षणभर को जल उठने वाली फुलझड़ी की तरह,
क्यो कि हम जो लेखक हैं
जो चित्रकार हैं, जो गायक हैं
हम सभी छूँछे हैं, सभी रिक्त, सभी शून्य हैं।
कुआलालम्पुर वह एक सपनो का देश
वहाँ किसी भी दिन पहुँच नही सकते !
फिर भी वहाँ पहुँचने का सपना देखते हैं
चिरदिन ही!

उमादेवी

मने मने

तनिमा, तोमार वेदना ओ विस्मय
राखो कि बिछाये गेरुया गङ्गाजले?
अथवा रेश्मी फितेर मतइ सबुज घासेर वने
तोमार मनेर गन्ध कि जागे सुरभित जङ्गले?

तोमार बेदना फुले' फुले' ओठे येन
भरागङ्गार लकलके जिभे राशि राशि फेना भाङे,
तार नीचे कत, कत जमे पलिमाटि—
जानबे ना तुमि, केइ बा से-कथा जाने?

आमरा एसेछि, अनेके एसेछे आगे:
कत स्वप्नेर पालक पडेछे जानतेना कत नाम:
जानते ना पाखि-पाखिनीर मत केन प्रान्तेर आसा?
जानताम सबइ, तबुओ कि आगे सबटुकु जानताम?

मन-ही-मन

वनिमा, अपनी वेदना और विस्मय
बिछाए हो क्या
गेरुए गंगाजल में?
अथवा
रेशमी फीते की तरह
हरी घास के वन में?
क्या गंध तुम्हारे मन की
जगती है सुरभित जंगल में?



मानो उफन उठती वेदना तुम्हारी
भरी गंगा की
लपलपाती जीभ से
राशि-राशि फेन उगलती,
उसके नीचे कितनी,
जमती कछार की माटी—
न जान सकोगी तुम
अथवा अन्य कोई जान सकेगा यह बात?

हम आये,
हम से पहले और बहुत से आये थे;
बिखरे पड़े हैं कितने सपनों के पंख
जानते न जिनके नाम
जानते नहीं
पक्षी-पक्षिणी की तरह
क्यों आना पड़ा इस प्रान्तर में?
जानता था सब ही,
फिर भी पहले क्या सब कुछ जानता था?

तनिमा, तोमार वेदना ओ विस्मय
छड़ानो रयेछे एखाने-सेखाने, जानबेना कोनोजन :
तोमार वेदना पलिते, माटिते प'डे—
से-माटि आमार मन ॥

दिनेश दास

तनिमा, तुम्हारी वेदना और विस्मय
बिखरे हुए हैं जहाँ-तहाँ,
जान सकेगा न कोई जन
तुम्हारी वेदना
जमी है माटी पर,
कछार की माटी पर—
वह माटी है मेरा मन!

दिनेश दास

नितान्त काङाल

नितान्तइ क्लान्त लोकटा ! शुधु
छाड़े एकटा घरेर काङाल !
दक्षिणेर जानला दिये धुधु
अफुरन्त माठ देखबे ! आर
पश्चिमेर जानला दिये लाल
सूर्य-डोबा सन्ध्यार बाहार ।
नितान्तइ क्लान्त लोकटा । शुधु
छोट एकटा घरेर काङाल ।

नितान्तइ शान्त लोकटा । ताइ
मिष्टि एकटा मेयेर काङाल ।
ये ताके खुनसुटि करे प्रायइ
रात जागाबे । बलबे, "कोन-दिशी
लोक तुमि ता बोझा शक्त । काल
आनते हबे आलता एक शिशि ।"
नितान्तइ शान्त लोकटा । ताइ
मिष्टि एकटा मेयेर काङाल ।

नितान्तइ भ्रान्त लोकटा । हाय,
अल्प-एकटु सुखेर काङाल ।
रौद्रे, जले, उद्दाम हाओयाय
ढेर घुरेछे । बुझलो ना एखनो,

नितान्त कंगाल

नितान्त ही क्लान्त बेचारा। केवल
एक छोटे से घर के लिए कंगाल।
दक्खिन के जगले से देखेगा
धू-धू करता अनन्त मैदान। और
पश्चिम के जंगले से
अस्तमित सूर्य की लालिमायुक्त
साँझ की बहार।
नितान्त ही क्लान्त बेचारा। सिर्फ
एक छोटे से घर के लिए कगाल।

नितान्त ही शान्त बेचारा। इसी से
प्यारी-सी एक बाला के लिए कंगाल।
जो उससे कलह कर
प्रायः ही रात भर जगावेगी।
कहेगी, "कहाँ के परदेसी तुम
सो समझना है कठिन,
कल लाना होगा महावर एक शीशी।"
नितान्त ही शान्त बेचारा। इसी से
प्यारी-सी एक बाला के लिए कंगाल।

नितान्त ही भ्रान्त बेचारा। हाय,
तनिक से सुख के लिए कंगाल।
बहुत घूमा है आँधी-पानी औ' तपती धूप में।
समझ न सका अब तक,

इच्छार आगुने खेये ज्वाल
एकटु-सुखे तृप्ति नेइ कोनो।
नितान्तइ भ्रान्त लोकटा। हाय,
अल्प-एकटु सुखेर काङाल।

नीरेन्द्र चक्रवर्ती

इच्छा की अग्नि में जल-जल
तृप्ति नहीं कोई जरा-से सुख में।
नितान्त ही भ्रान्त बेचारा। हाय,
तनिक से सुख के लिए कंगाल।

नीरेन्द्र चक्रवर्ती

दोष नय, भुल नय

आज यदि भुले थाकि तोमार निषेध
(से कि मोर दोष सखी, से कि मोर दोष)
शरमेर बाधा यदि क'रे थाकि भेद,
(से कि मोर दोष सखी, से कि मोर दोष)।
पउषेर माठभरा सोनालि आलोय
आकाशेर बाहु येथा धरणीरे छोँय
चेये देखो नाहि सेथा एतटुकु छेद।
(से कि मोर दोष)।

आज यदि आरो कालो लागे तव आँखि
(से कि मोर भुल सखी, से कि मोर भुल)
अधरे उदार हात ह'ये थाके साकी
(से कि मोर भुल सखी, से कि मोर भुल)
ओइ ये चाँदेर रसे मदिरा पृथिवी
स्फुरितेछे घन घन क्षीण तार नीवी
जेनो जेनो जेनो सखी, से नहे एकाकी
(से कि मोर भुल)।

आज यदि घनतर लागे तव भुरु
(आमारि कि चोख दायी, आमारि कि चोख)
रङे रसे केशपाश छड़ाय अगुरु,
(आमारि कि चोख दायी, आमारि कि चोख)।
ओइ श्याम गिरिचूडा किसेर आभास ?
वनलेखा परायेछे तारे नील वास
के बलिबे कोथा सखी कामनार शुरु ?
(आमारि कि दोष ?)

दोष नहीं, भूल नहीं

आज यदि भूल जाऊँ निषेध तुम्हारा
(यह क्या मेरा दोष सखि, यह क्या मेरा दोष)
लाज के बधनो को यदि आज तोड़ दूँ
(यह क्या मेरा दोष सखि, यह क्या मेरा दोष)।
पौष के स्वर्णिम आलोकपूर्ण खेतो में
आकाश के बाहु जहाँ धरती को छूते हैं
दृष्टि डालो उस ओर—वहाँ नही तनिक भी अन्तराल।
(यह क्या मेरा दोष)।

आज यदि और भी काली जान पड़े तुम्हारी आँखे
(यह क्या मेरी भूल सखि, यह क्या मेरी भूल)
अधरो पर उदार हाथ बना रहे साकी
(यह क्या मेरी भूल सखि, यह क्या मेरी भूल)।
यह जो चाँद के रस से मतवाली पृथ्वी
स्फुरित होती बार बार जिसकी क्षीण नीवी
जान लो, जान लो: सखि, वह नही एकाकी।
(यह क्या मेरी भूल)।

आज यदि और भी घनी जान पड़े तुम्हारी भौहें
(इसके लिए क्या मेरे नयन दायी, क्या मेरे नयन)
रग में रस में विखेर रहा है अगरु तुम्हारा केशपाश,
(इसके लिए क्या मेरे नयन दायी, क्या मेरे नयन)।
वह श्याम गिरिचूडा देती किसका आभास?
वनलेखा ने पहनाया उसको नील वास
कह सकता कौन, कहाँ कामना का आरम्भ?
(क्या मेरा दोष?)

तोमार वसन केन छड़ाय आबिर ?
(से कि अकारणे सखी, से कि अकारण)
नेशाय बिभोल दुटि नयन कविर !
(से कि अकारणे सखी, से कि अकारण)।
चेये देखो वने वने एकि समारोह
पलाशे शिमुले शाले छड़ाइछे मोह
रतिहीन मदनेरे करेछे मदिर।
(से कि अकारण !)

आज यदि चोख तव त्यजि चपलता
(से कि अनुमान शुधु, शुधु अनुमान)।
मन सने कानाकानि करे कत कथा
(से कि अनुमान शुधु, शुधु अनुमान)।
आजि देखो जानाजानि चखीते चखाय
किसेर आवेशे दोंहे एमन बकाय
बातासे बातासे आज एकि तरलता !
(शुधु अनुमान)

हासिते तोमार केन फोटे जुँइ फुल,
(से काहार दोष सखी, से दोष काहार ?)
चोख दुटि कालो केन, अधर रातुल ?
(से काहार दोष सखी, से दोष काहार ?)
जले नाहि ढेउ छिल मुखर नदीर
ओपारेर वन छिल झिल्लिबधिर
हेन काले हेन ठाँइ ह'ये थाके भुल।
(ह'ये थाके भुल।)

क्यों बिखराता अबीर परिधान तुम्हारा ?
(यह क्या अकारण ही सखि, यह क्या अकारण)
नशे में विभोर हैं कवि के नयन दोनो!
(यह क्या अकारण ही सखि, यह क्या अकारण)!
दृष्टि डालो वन-वन में यह कैसा समारोह
किंशुक सेंमल शाल बिखेर रहे हैं मोह
रतिविहीन मदन को कर रहे मत्त!
(यह क्या अकारण!)

आज यदि नयन तुम्हारे तज चपलता
(यह क्या अनुमान भर, केवल अनुमान)
मन से कानोकान कहते कितनी बाते
(यह क्या अनुमान भर, केवल अनुमान)।
देखो आज चकवा चकवी का परिचय
कौन-सा आवेश किये दोनो को मुखर आज
वायु के झोके-झोके में आज यह कैसी तरलता!
(केवल अनुमान)

तुम्हारी हँसी में क्यो झरते जूही के फूल,
(यह किसका दोष सखि, यह किसका दोष ?)
दोनो नयन काले क्यो और अधर राते
(यह किसका दोष सखि, यह किसका दोष ?)
जल में न थीं लहरे मुखर नदी के
उस पार का वन था झिल्लिबधिर
ऐसे समय ऐसी जगह होती ही है भूल।
(होती ही है भूल।)

तुमि मनोरम सखी, धरा मनोहर
(केन हेन योगायोग, हेन योगायोग)
दुइ जने कि कारणे करियाछ षड !
(केन हेन योगायोग, हेन योगायोग)।
फॅाद पेते पाखीध' रे दोष देओया ताय
केमन विचार ए ये बोझा नाहि याय
बोझा नाहि याय तुमि आपन कि पर ?
(केन योगायोग ?)

भुल नय दोष नय, ए ये यौवन
(कार दोष कार भुल थाक् से विचार)
एक फॅादे धरा दिल दु'जनेर मन
(कार दोष कार भुल थाक् से विचार)।
तुमि टानो एकदिके आमि एकपाश
ततइ कठिन ह'ये ऑटितेछे फॉस
के जानित वेदना ये मधुर एमन ?
(थाक् से विचार)

के जानित प्रेम से ये खर तरवार
(के जानित, अजानिते सकलेइ चाय)
हासिते निशित से ये दुइ दिके धार,
(के जानित, अजानिते सकलेइ चाय)।
बुक ह'ते झरे फोटा तरल चुनिर,
अधर धरिया राखे रेखा हासिटिर
खरधार प्रेमेर ये हातल सोनार।
(के जानित हाय)

तुम मनोरम सखि धरा मनोहर
(क्यो ऐसा संयोग, ऐसा संयोग)
किस कारण दोनो ने मिल किया यह षडयंत्र!
(क्यो ऐसा संयोग, ऐसा संयोग)।
जाल बिछाकर विहग फँसना और दोष देना उसको
समझ नहीं आता यह कैसा है न्याय
समझ नहीं आता तुम अपनी हो कि पर?
(यह कैसा संयोग)

नहीं भूल नहीं दोष, यह ठहरा यौवन
(किसका दोष किसकी भूल रहने दो यह विचार)
एक ही जाल में फँसा दोनो का मन
(किसका दोष किसकी भूल रहने दो यह विचार)।
खींचो तुम एक ओर और मै दूसरी ओर
उतना ही कठोर हो कसता जाता बंधन
कौन जानता था कि वेदना मधुर इतनी?
(रहने दो यह विचार)

कौन जानता था कि प्रेम प्रखर तलवार
(कौन जानता था, सभी चाहते अनजाने)
हँसी मे हुई प्रखर दोनो ओर धार
(कौन जानता था, सभी चाहते अनजाने)।
हृदय से झरती बूँदें तरल शोणी की,
अधरो पर बनाए रखती रेखा हँसी की
प्रेम की है धार प्रखर और मूँठ सुनहरी।
(कौन जानता था हाय)

एक दोषे दोँहे दोषी, एक भुले भुल,
(नहे अनुमान आर शुधु अनुमान)
बाँधियाछे दोँहे एक वेदनार शूल
(नहे अनुमान आर शुधु अनुमान)।
खरदाहे गले गिये दुइखानि मन
युगल देहेर पुटे क'रेछे सृजन
वाणीमय एकखानि मुकुतार फुल।
(नहे अनुमान आर शुधु अनुमान)।

प्रमथनाथ बिशी

दोनो का है दोष एक और एक ही भूल,
(यह नही अनुमान और केवल अनुमान)
बिंधा दोनो के एक ही वेदना का शूल
(यह नहीं अनुमान और केवल अनुमान)।
प्रखर दाह में गलकर दोनो के मन ने
युगल देह-संपुट में किया है सृजन
वाणीमय एक मुक्ता-फूल।
(यह नहीं अनुमान और केवल अनुमान)।

प्रमथनाथ बिशी

दशानन

जहाँ भी रहते तुम हे दुर्धर्ष दुर्जय
तपस्या-अर्जित वीर्य द्वारा,
कर देते हो स्वर्णमय।
फिर वह कौन-सी भूल
काटती रहती चिरदिन
तुम्हारी कीर्ति के मूल को ?
तुम हो अद्वितीय,
तो भी चिरप्रीतिहीन !

वह क्या केवल लोभ,
क्या केवल भोगी की लालसा
अथवा अक्षम का छूँछा दम्भ ?
मै यह सब कुछ समझ नही पाता।
तुम्हारी दानवीय दुर्बलता
देवताओ के लिए भी है दुर्बोध विस्मय।

सीता को तुम छू नही पाते,
फिर भी उसी (सीता) से
अनुमति की याचना मे
अपना छलबल औ' समस्त कौशल
स्वय ही व्यर्थ कर देते हो।
हृदय के इस सम्मान से
रामायण और ही दीप्ति पाती है।

अपने छोटे भीरु हाथो से
जो जीवन को माप

नीड़ बेँधे निरापद सञ्चयेर कडि कटा गोने,
ईर्षाय हिंसाय
तोमार विशाल मूर्ति तारा चिरदिन
पङ्कलिप्त करे 'त करुक,
ए सबेर बहु ऊर्ध्वे तुमि अन्य आकाशे उन्मुख।
शुधु एकदिक चिने
जीवनेरे करो ना खण्डित।
दशदिक हते आलो असङ्कोचे कर अन्वेषण,
तुमि ताइ सत्य दशानन।

सोपान हयनि गड़ा,
स्वर्ग आजो दूर।
तोमार चितार शिखा किम्वदन्ती कल्पनाय
ताइ बुझि निभेओ नेभे ना
हे अतृप्त पृथ्वी-प्राण शून्यवैरी शाश्वत विद्रोह !

प्रेमेन्द्र मित्र

नीड़ बाँध निरापद
कुछेक संचित कौड़ियाँ गिनते रहते हैं,
ईर्ष्या और हिंसावश
यदि वे लोग तुम्हारी विशालमूर्ति को
चिरदिन पंकलिप्त करते है तो करें,
इन सबसे बहुत ऊपर तुम
किसी अन्य आकाश की ओर उन्मुख हो।
केवल एक पक्ष पहचान कर
करते नही जीवन को खण्डित।
दसो दिशाओ से प्रकाश का
करते हो निःसंकोच अन्वेषण,
इसी से तुम सचमुच दशानन हो।

हो न सका वह सोपान निर्मित,
स्वर्ग आज भी दूर।
किंवदन्ती कल्पना में
तुम्हारी चिता की शिखा
लगता है इसीसे
बुझते-बुझते भी बुझती नहीं,
हे अतृप्त पृथ्वी-प्राण शून्यवैरी शाश्वत विद्रोह !

प्रेमेन्द्र मित्र

मरुपथ

यतक्षण फेरार उपाय छिलो, किछुइ बोझेनि।
तारपर चेये द्याखे, शुधु बालि; दिगन्तेर नेइ अन्तराल;
माकड़शा, कॉटार झोप, दु-एकटा उटेर कङ्काल;
भाषार पल्लीरे घिरे आकाशेर विराट बन्धनी

क्रमश, धर्षणे, सब भावनारे भस्मे परिणत
क'रे दिये स्थिर हय। रौद्र नेय रान्ना क'रे तार
मांस, मेद, येन तारे जन्म देबे पाताले आबार;
आर तार तृष्णा चले पिछे-पिछे, एकपाल कुकुरेर मतो।

अवशेषे, यखन मरीचिकार पर्दा छिंडे, देखा याय प्रथम खेजुर,
बालिते कालोर वृत्ते प्रसवेर मृदु अनुमान—
हॉटु भेङे ब'से पडे, आङुल पागल ह'ये खुँडे तोले जल :

मरुपथ

जब तक लौटने की गुंजाइश थी,
कुछ भी समझ न सका।
और जब ताका चहुँ ओर
नजर आई केवल बालू;
अन्तरालहीन दिगन्त;
मकडियाँ, कँटीली झाड़ियाँ,
दो-एक ऊँटो के ककाल;
भाषा की बस्ती को घेरे हुए
आकाश का विराट कोष्ठक

क्रमश· उत्पीडन से
सभी चिन्ताओ को भस्म में परिणत कर
स्थिर हो जाता है।
उसके मास, मेद को रॉध देतीं
सूर्य की प्रखर किरणें मानो
उसे पाताल मे फिर जन्म देंगीं;
और उसकी तृष्णा चलती पीछे-पीछे
कुत्तो के एक झुण्ड की तरह।

आखिर, जब मरीचिका का पर्दा फटने पर,
दिखाई पड़ता प्रथम खजूर—
बालू के काले वृत्त मे
प्रसव का मृदु अनुमान—
घुटने टेक बैठ जाता तब वह
अंगुलियॉ व्याकुल हो
गढा खोद पानी निकालने लगती :

अल्प जल, तृषार यथेष्ट नय। तबु स्पर्शे नतुन ऋतुर
बीजाणु छडिये देय; शिक्त हात, कनुइयेर लोमकूमे फ'ले ओठे फल;
एवं दर्शनस्निग्ध कण्ठ ठेले फुटे ओठे सन्ध्यार आज़ान।

बुद्धदेव बसु

थोडा-सा पानी, तृष्णा मिटाने को भी अपर्याप्त।
फिर भी स्पर्श नई ऋतु का
अपने बीजाणु बिखेर देता;
सिक्त हाथ, कोहनी के लोमकूपो में
फलने लगते फल;
एव दर्शन-स्निग्ध कण्ठ को भेद
फूट पडती संध्या की अजान।

बुद्धदेव बसु

आमरा क'जने

के बले ए सबइ भ्रान्ति ? यतो स्वप्न आमरा क'जने
गड़ि, से नकल स्वर्ग—आचम्बिते भेङे याबे सबइ ?
तिल तिल ए वञ्चना मूल्य तार सोनार ओजने
पाबे ना, कालेर स्तम्भे आमादेरो सामान्य पदवी
उत्कीर्ण हबे ना ? बन्धु पृथिवीर दूरतम काले
ये अरण्य छिल तारो अङ्गारित उद्भिद हृदय
यदि आजो सौरकणा ध'रे राखे खनिर पाताले,
तबे प्रतिजीवनेर नवजन्मे कान्नार समय
आमराओ रयेछि बेँचे।

आमरा ये कवि, बन्धु, ताइ
जीवनेर यतो दाह सबइ तार तीक्ष्ण परकला
पाय ए हृदये, ज्वालि यन्त्रणार झिलिके झिलिके।
तबु कि विचित्र देख दुःसाहसी प्राणेर रोशनाइ—

हम कुछ लोग

कौन कहता है यह सब भ्रान्ति है ?
हम कुछ लोग जितने स्वप्नो का निर्माण करते,
वे नकली स्वर्ग—
औचक ही टूट जाएगे सबही ?
तिल-तिल की यह वचना अपना मूल्य
सोने के भाव नही पाएगी,
काल के स्तम्भ पर हमारी भी
सामान्य पदवी उत्कीर्ण नहीं होगी ?
बन्धु, पृथ्वी पर सुदूरतम अतीत में जो वन था,
उसका अगारित उद्भिद हृदय
यदि आज भी
सूर्य के अणुओ को खान के गर्भ में
सहेज कर रखे है
तो फिर हर जीवन के
नवजन्म के रुदन के समय
हम भी बचे हुए है।

हम जो कवि ठहरे, बन्धु,
इसी से जीवन के जितने दाह
वे सभी अपना तीक्ष्ण आतशी-शीशा
पाते है इस हृदय को,
यन्त्रणा की हर कौध मे हम जलते रहते।
फिर भी देखो कितना विचित्र
दुस्साहसी प्राणो का प्रकाश—

यखन फोटे ना फुल, कोकिलेरओ स्तब्ध कथा बला,
आमरा दिनेर चोखे चोख रेखे तबु चलि लिखे।

मणीन्द्र राय

कि जब खिलते नहीं फूल,
और कोयल की भी बद कूक,
हम दिन की आँखो में आँखे डाल
फिर भी लिखे जाते।

मणीन्द्र राय

शेषकथा

आमार आत्मार स्रोते खरनदी बय,—
समस्त आकाश ढाके,
समस्त पाताल
एक करे हिमवर्ण सुशीतल नदी,
आत्मार उत्ताप शैत्ये करे दिल क्षय।
प्रखर साहारा आमि तीव्र प्रतीक्षाया—
से प्रखरे ऊर्ध्व थेके बन्यार विव्हल
ढेके दिल—भेङे निल;
हे कान्त श्यामल,
तोमार आत्मार स्रोत प्रवाह धाराय।
आमार अस्तित्व या—या छिल आमार
से प्रवाहे डुबे गेल—विलुप्ति एबार।

दिलाम सम्पूर्ण लुप्ति, फिरिये नेबना,
तोमाके दिलाम सुख, दिलाम वेदना।

वाणी राय

आखिरी बात

मेरी आत्मा के स्रोत में
बहती है प्रखर नदी—
ढँक देती सम्पूर्ण आकाश,
समस्त पाताल
एक कर देती हिमवर्ण सुशीतल नदी,
आत्मा के उत्ताप को
शीतलता से कर दिया विनष्ट।
प्रखर सहारा मै आकुल प्रतीक्षा में—
उसने प्रखर वेगपूर्वक ऊपर से
बाढ़ की विह्वलता से
ढॅक दिया, तोड़ लिया;
हे कान्त श्यामल,
अपनी आत्मा के
स्रोत की प्रवाह-धारा में।
मेरा अस्तित्व—जो कुछ मेरा था
उस प्रवाह में डूब गया—
विलुप्ति है इस बार।

अर्पित कर दी सम्पूर्ण लुप्ति,
वापिस न लूँगी,
तुम्हे दिया सुख, दी वेदना।

वाणी राय

आमार मृत्युके भुले येयो

आमार मृत्युके भुले येयो।

कतो छबि भुलेछे तो तोमार आकाश
कतो लाल अपरूप कालो रुपो-रं
ताते तुमि आलो-नील हयेछ वरं
हृदये शुनि नि दीर्घश्वास,
छिल ना दुरपनेय
कोनो स्वप्न, कोनो स्मृति, कोनो इतिहास

प्राणेर प्रयाण
फुरोय ना सबटुकु प्राण,
फुल झरे तबु फुल फोटाय बागान,
दिनेर आलोर शेषे नक्षत्रेर रात्रि तबु थाके
रात्रिर अनार्त अवसाने
ऊषा-प्रत्यूषारा नित्य भोरेर आबिर मुखे माखे।

आलो दाओ, हृदयेर खुले दाओ मुख
तोमार आलोर दान बसन्त आनुक
अनेक अनेक प्राणे,
पान करो प्राणेर आसव,
देबार नेबार आछे या-किछु ता सब
दिये निये जीवनेर जेने याओ माने।

मेरी मृत्यु को भूल जाना

मेरी मृत्यु को भूल जाना।

कितने दृश्यों को भूल चुका है तुम्हारा आकाश
कितने लाल अपरूप काले रजत-रंग
उनसे तुम हुए हो नीलोज्ज्वल ही किन्तु
हृदय में सुन पड़ी न दीर्घ निश्वास,
दुर्मोचनीय था न कोई स्वप्न
कोई स्मृति, कोई इतिहास।

प्राण के प्रयाण में
निःशेष होते न सम्पूर्ण प्राण,
फूल झरते फिर भी
फूल खिलाता है उद्यान,
निःशेष हो जाने पर दिन का प्रकाश
तब भी रहती नक्षत्रों भरी रात
रात्रि के अनार्त अवसान पर
ऊषा और प्रत्यूष वेला नित्य मलतीं
भोर का अबीर मुख पर।

दो प्रकाश, उन्मुक्त करो हृदय-द्वार
तुम्हारा प्रकाश-दान
लाए वसन्त शत-शत प्राणों में,
पान करो प्राणों का आसव,
देने-लेने को है जो कुछ
वह सब दे-लेकर
जान लो जीवन का अर्थ।

तोमाके दियेछि आमि आमार या देय
मृत्यु थाक शुधुइ आमार
आमार मृत्युके भुले येयो ॥

सञ्जय भट्टाचार्य

तुम्हें दिया सब कुछ अपना देय
मृत्यु रहे केवल मेरे ही लिए
मेरी मृत्यु को भूल जाना ॥

सञ्जय भट्टाचार्य

प्रतीक्षा

पाती अरण्ये कार पदपात शुनि ?
जानि कोनओ दिन फिरबे ना फाल्गुनी :
तबे अञ्जलि उद्यत केन पलाशे ?
वनेर बाहिरे क्षओया माटि धू धू करे;
नेइ फसलेर दुराशाओ अम्बरे;
या छिल बलार, कबे हये गेछे बला से ॥

महाशून्येर मौने परिस्फीत,
विविक्ति आज वेष्टनीविरहित;
अधुनाय निश्चिन्ह अतीत, आगामी;
नास्तिते नेति स्वतःसिद्ध प्रमा,
सोहंवादीर आर्ति आत्मोपमा,
अगतिर गति मनोरथ वृथा लागामइ ॥

आरओ एकबार, हाजार बछर आगे,
विप्रलब्ध आस्था अस्तरागे
खुँजे पेयेछिल उज्जीवनेर प्रेषणा;
एवं आबार सहस्र वत्सर
पूरे आसे बटे, तबु मन्वन्तर
मानवेतिहासे सर्वनाशेरइ देशना ॥

प्रतीक्षा

पत्राच्छादित वन में
किसकी पग-ध्वनि सुन पड़ती?
जानता हूँ अब न लौटेगी कभी फागुन की पूनो
तो फिर क्यो
अंजलि प्रस्तुत है पलाश की?
वन के बाहर धू-धू करती क्षयित माटी;
नहीं फसल की दुराशा भी अम्बर में;
कब का कहा जा चुका,
जो बाकी था कहने को॥

महाशून्य के मौन में परिस्फीत
विविक्ति आज वेष्टनीविहीन;
अधुना निश्चिह्न अतीत, आगामी;
नास्ति में नेति स्वतःसिद्ध प्रमा,
सोहंवादी की आर्ति आत्मोपमा,
अगति की गति मनोरथ वृथा लगाम ही॥

और भी एक बार,
हज़ार बरस पहले,
अस्तराग में विप्रलब्ध आस्था खोज पाई थी
उज्जीवन की प्रेषणा;
और आज फिर से
हजार बरस पूरे होते आ रहे हैं सही,
फिर भी मानव के इतिहास मे
मन्वन्तर सर्वनाश का ही इंगित है॥

अन्तत एते सन्देह नेइ आर
अलातचक्रे घुरे घुरे, संसार
अनादि अमाके आने आमादेर गोचरे;
पुञ्ज पुञ्ज व्यक्तिर बुद्बुद,
समयेर स्रोते अचिर, अरुन्तुद,
ममतार जोट पाकाय ए-चरे, ओ-चरे ॥

अभाव हयतो स्वभावेरइ अग्रज :
निरवधि, ताइ प्रभासे फुराय ब्रज—
प्रतिज्ञा राखे मरण त्राताब बदले :
विशृंखलार पराकाष्ठाय स्थाणु,
पृथिवी अनाथ; यथेच्छ परमाणु;
प्रगतिक शुधु कालभैरव सदले ॥

अतएव कारओ पथ चेये लाभ नेइ;
अमोघ निधन श्रेय तो स्वधर्मेइ;
विरूप विश्वे मानुष नियत एकाकी ।
अनुमाने शुरु, समाधा अनिश्चये,
जीवन पीड़ित प्रत्यये प्रत्यये :
तथाच पाब ना आमि आपनार देखा कि ?

सुधीन्द्रनाथ दत्त

कम से कम
इसमे तो सदेह नही तनिक भी
अलातचक्र में घूम-घूमकर, संसार
अनादि अमा को लाता हमारे सम्मुख;
व्यक्तियो के पुंज-पुंज बुदबुद,
समय के स्रोत में अस्थिर, अरुन्तुद,
ममता की गाँठे पड़ती जातीं इस द्वीप में उस द्वीप में ॥

अ-भाव अग्रज है शायद स्व-भाव का ही :
इसी से प्रभास में पूर्णता प्राप्त करता ब्रज—
प्रतिज्ञा निभाता मरण, त्राण के बदले :
विशृंखला की पराकाष्ठा में स्थाणु,
पृथ्वी अनाथ, यथेच्छ परमाणु;
प्रगतिशील केवल कालभैरव सदल-बल ॥

इसलिए किसी की राह देखने में लाभ नही;
श्रेय है अमोघ निधन स्वधर्म में ही;
विरूप विश्व में मानव सर्वथा अकेला।
अनुमान में शुरू औ' समाप्ति अनिश्चय मे,
जीवन पीडित प्रत्यय-प्रत्यय मे;
फिर भी क्या
पा न सकूँगा निज का दर्शन मै?

सुधीन्द्रनाथ दत्त

स्वर्ग-बीज

तृष्णार्त शान्तिर स्वच्छ दीघि भरा जल कोथाय कोथाय बलो ? वन्हि छोया
जीवनेर—धू धू बालियाड़ि

आदिगन्त छेये आछे।
नियमेर अनुज्ज्वल विषन्न रुटिन
येमन सरालो हात, तोलो जनहीन
पृथिवीर कोन एक सबुज प्रान्तेर गान; दिते ह'लो पाडि
ताइ शेषे बन्दरेर चोखे दोला करुण कुज्झटि माखा छवि
समयेर बुके रेखे। स्मृति–भेजा माठ बन छुँये छुँये एखाने एलाम।

शाल शिरीषेर फ्रेमे बाँधानो ए-ग्राम
निर्जर घुमेर मतो। शेफाली करबी
फुलेर नरम घ्राण जडानो भोरेर घुम भाङानिया हओया निरिबिलि
मेठो पथे डेके निले, माठेर कन्यार भिजे शाडिर शिशिर
मेखेछि दु'हात भ'रे बुके मुखे यतोखुसी, तबु-ओ अस्थिर
हयनि अन्विष्ट मन? जोनाकिर भीरु झिलिमिलि

स्वर्ग-बीज

बताओ, तृष्णार्त शान्ति का
स्वच्छ जलपूर्ण सरोवर कहाँ-कहाँ है ?
वह्नि से स्पृष्ट जीवन का
धू–धू करता हुआ बालुकामय तीर
आदिगन्त फैला हुआ है।
नियमो के अनुज्ज्वल विषण्ण रुटीन ने
जैसे ही अपने हाथ खींचे,
उठा लो पृथ्वी के किसी
जनहीन हरित प्रान्तर का गीत;
इसीसे आखिर बन्दरगाह के नयनो में
दोलायित करुण कुहासे से आच्छादित चित्र को
समय के वक्ष पर रख कर
मुझे भी सुर में सुर मिलाना पडा।
स्मृति-कणो से आर्द्र
मैदान-वनों को स्पर्श करते-करते यहाँ पहुँचा हूँ।

शाल-शिरीषो के फ्रेम में जड़ा हुआ
निर्जन निद्रा के समान यह ग्राम।
कनेर औ' हरसिंगार के फूलो की
कोमल गन्ध से युक्त
प्रभात की निद्रा भंग करनेवाली हवा
निर्जन पगडंडी पर पुकार लिया,
मैदान-कन्या की भीगी साड़ी के
ओसकणों को दोनो हाथों में भर जितना चाहा
हृदय और मुख पर मला;
तो भी क्या खोजी मन अस्थिर नहीं हुआ ?

रात्रिर पाकुड डाले देखेछि आश्चर्य चोखे, आबार कखन
पद्म-पुकुरेर पाडे सोनालि रोद्दुरे भिजे शुनेछि झुमुर
सॉओताली मेयेर कण्ठे, तारपर समस्त दुपुर
अरण्येर पर्दा ठेले पुरनो देउले देखि शिल्पार ध्रुपदी शिल्प, तखनो कि मन
ओठेनि उन्मना ह'ये? उत्तीर्ण सन्ध्याय शीर्न नदीर शियरे शुभ्र बालिर
चडाय
बसेछि, सेखाने मन भोरेर आकाशे
रात्रिर तारार मतो जीवनेर व्यर्थ साध दुर्जय आश्वासे
हातडे फेरेनि टिपिटिपि पाय
नेमे नील अन्धकारे?

ताह'ले हायरे

शान्तिर विधौत स्नान कोथाय—निर्जने घुरे की हबे! समय
एखनो हयत आछे। एसो, एसो बन्दरेर व्यथाभरा पलातका समुद्रेर वैरागी
हृदय

रात्रि में पाकड की डाल पर
जुगनुओ की भीरु झिलमिलाहट
अचरज भरे नयनो से देखी है,
और फिर कब सुनहली धूप से भीगी हुई
पद्म-पोखर के किनारे
झूमर सुना है सथाली लडकी के कण्ठ से,
उसके बाद दोपहरी-भर
अरण्य का पर्दा ठेल
प्राचीन मंदिर में देखा
शिल्पी का ध्रुपदी शिल्प
तो भी क्या मन आकुल नहीं हो उठा ?
साँझ बीत जाने पर
शीर्ण नदी के सिरहाने
बैठा हूँ शुभ्र बालू के द्वीप में,
वहाँ भोर के आकाश में
डूबते हुए तारे के समान
जीवन की व्यर्थ साध को दुर्जय आश्वास से
कहो तो सही
क्या मन हाथो से नहीं टटोलता फिरा
दबे पाँव उतर, नील अन्धकार में ?

हाय रे
तब कहाँ है शान्ति का विधौत स्नान—
क्या होगा निर्जन में भटक कर !
अब भी समय है शायद।
आओ, आओ बन्दरगाह के व्यथा भरे
पलातक समुद्र के वैरागी हृदय को
आँधी के आवेग से बाँधें।

झड़ेर आवेगे बाँधि। धू धू मरु जीवनेर वैशाखी प्रान्तरे
समुद्र-आश्लेषे शेषे प्रेरणार मतो स्निग्ध श्रावणेर जल
झरबे। विश्वास राखो। पारेओ तुलते ढेउ, स्वर्गबीज मनेर मतोन ह'ये
दीघि अविकल।

सुनीलकुमार नन्दी

धू-धू जलते हुए मरु जीवन के
वैशाखी प्रान्तर में
समुद्र के मिलन से
अत में प्रेरणा के समान स्निग्ध
सावन का जल बरसेगा।
विश्वास रक्खो,
स्वर्ग-बीज मन के अनुरूप
अविकल सरोवर हो,
लहरें भी उठा सकता है।

सुनीलकुमार नन्दी

सुन्दर

यखन तोमार आँचल दमका हाओयाय
एका एका उडछिल
तखनओ नय
बिकेलेर पडन्त रोदे बिन्दु बिन्दु घाम
तोमार मुखे यखन मुक्तोर मत ज्वलछिल
तखनओ नय
की एकटा कथाय आकाश उद्भासित क'रे
तुमि यखन हासले
तखनओ नय

यखन भोँ बाजतेइ
माथाय चटेर फेँसो जड़ानो एक समुद्र
एकटि क'रे इस्ताहारेर जन्ये
उत्तोलित बाहुर तरङ्गे तोमाके ढेके दिल

यखन तोमाके आर देखा गेल ना
तखनइ आश्चर्य सुन्दर देखाल तोमाके ॥

सुभाष मुखोपाध्याय

सुन्दर

जब हवा के झोंके से तुम्हारा आँचल
एकाकी उड रहा था
तब भी नहीं
अपराह्न की ढलती हुई धूप मे
तुम्हारे मुख पर पसीने की बूँदे
मोती के समान चमक रही थीं
तब भी नहीं
जाने किस बात पर
आकाश को उद्भ्रामित करते हुए
जब तुम हँस पडी
तब भी नहीं

जब भोपू बजते ही
सिर पर सन के रेशे लिपटाए हुए
एक समुद्र ने
एक-एक कर इश्तिहार पाने के लिए
उठे हुए हाथो की तरङ्ग मे
तुम्हे ढँक दिया

जब तुम और दिखाई न दी
तभी तुम अद्भुत सुन्दर दिखाई पडी

सुभाष मुखोपाध्याय

सत्य

तारपरे एकदिन परीदेर दिके चेये बल्लुम
तोमरा एबार एसो, उठे एसो आरो उँचु घरे;
निचे बड़ो झञ्झाट, ओखाने केवलइ भिड़ थाके,
केवलि पेयादा एसे शमनेर बाहाना लागाय;
आमि आछि भिन्‌-हाओया-शिहरित तुङ्ग-पथिक
येखाने पूर्ण चॉद खुबइ काछे, हयतो हातेइ !

परीरा एसेछे उठे
राङा, चॉपा, खयेरी, सबुज।
काने की लेगेछे मिठे
ताले ताले बेजेछे नूपुर।
हाओया दिलो की आराम !
परी दिलो वासना गभीर !

वासनाके देखे-देखे की ये उठेछिलो जेगे
एइ बुके जेगेछे से तारपर।
ता देखे सबाइ गेल ! प्रेमे कॉटा ईर्षा।
प्रेम भारि हिंस्र ओ बर्बर !

सत्य

तदुपरान्त एक दिन
परियो की ओर ताकते हुए मैने कहा,
तुम लोग अब चली आओ
चली आओ और भी ऊँची मजिल में;
नीचे है बडा झझट,
वहाँ सिर्फ भीडभाड ही रहती है,
सम्मन के बहाने प्यादा आकर
केवल परेशानियाँ ही बढ़ाता है;
मैं हूँ भिन्न हवा में सिहरित उत्तुग पथिक
जहाँ पूर्ण चाँद बहुत नजदीक—
शायद हाथ में ही!

चम्पई, लाल, कत्थई और हरी परियाँ
चली आई ऊपर की मंजिल मे।
कितना मीठा लगा कानो को
ताल-ताल पर बजते नूपुर।
हवा ने कितना सुख पहुँचाया!
परियो ने दी वासना गभीर!

कामना को देख-देख
न जाने क्या जाग उठा था
और फिर वह जाग उठा इसी हृदय मे।
इसे देख सभी बह गए!
प्रेम में कण्टक है ईर्ष्या।
प्रेम बहुत ही हिस्र और बर्बर!

राङा चाँपा खयेरीरा,—सबुज, सोनाली हीरा
छिलो सबइ सेइ मीनाबाजारे।
कारण, सबाइ तारा वासनारइ मणिमाला—
ताराइ दियेछे आलो आँधारे।

निभेछे से रूप। फेर जीवनेर नाना गत सत्ये—
पुन पुन गतागति स्मृतिर शोचना करे तीक्ष्ण।
के नव जन्म नेबे? के देबे नतुन चोख देखबार?
के देबे सरिये एइ निजेरइ अहंमय विघ्ण?

एइ तो अहर्निश शिरदाँड़ा कुरे विष
दियेछे विषिये सुखी स्वत्व
हेनकाले म्लान हेसे शुचि सेविकार वेशे
कपाले रेखेछे हात—सत्य!

तारपरे देखि एक अपूर्व छाया-माया-आलो-अवतमसार मध्ये
चलेछे निरङ्कुश—
से येन निखिल रूप!
से कि प्रेम?
से कि निर्लिप्त?

हरप्रसाद मित्र

चम्पई लाल कत्थई,—
हरी सुनहरी और हीरक
सभी थीं उस मीना बाजार मे।
क्यो कि, वे सभी है कामना की ही मणिमाला—
उन्होने ही दिया प्रकाश अन्धकार मे।

मिट गया वह रूप।
फिर जीवन के नाना गत सत्यो मे—
फिर-फिर लगी विचरने स्मृति
चिन्तन की शक्ति को करती तीक्ष्ण!
कौन नवजन्म लेगा?
कौन देगा देखने की नयी दृष्टि?
कौन हटा देगा निज के इस असह्य विघ्न को?

यह जो निशिदिन मेरुदण्ड को कुरेद रहा विष
कर दिया विषाक्त सुखी स्वत्व को
इतने मे म्लान हॅसी हॅस
शुचि सेविका के वेश मे
कपाल पर रक्खा हाथ—सत्य ने!

और तब देखता हूॅ एक अपूर्व
छाया-माया-आलोक अवतमसा के बीच
चल रहा निरकुश
वह मानो अखिल-रूप!
वह क्या प्रेम?
वह क्या निर्लिप्त?

हरप्रसाद मित्र

प्रतारणा

काछेर पाहाड़ेर गाये सबुज घासेर आस्तर,
दूरेर पाहाड़ेर माथाय पाइनेर सारि
येन हाजार मन्दिरेर चूडा।
माझखाने बये चलेछे छोट पाहाड़ि झर्ना,
यतटुकु तार जल तार चेये बेशी कलरोल।
घासेर आच्छादन निस्पन्द।
देखे मने हय येन प्राणहीन
गभीर प्रशान्ति येन छड़िये रयेछे पाहाड़ेर गाये।
दूरेर पाइन स्तब्ध ध्यानमूर्तिर मतन दाँड़िये,
बातासे पाताटुकुओ नड़े ना,
मने हय समस्त पृथिवीर स्तब्धता
एखाने एसे जमाट बेँधे गेछे।
विराट स्तब्धता एवं श्यामल प्रशान्तिर माझे
एकटुखानि चञ्चलता एनेछे खालि झर्नार जलेर धारा।

हठात् मने पड़े कत बड़ मायार खेला चलेछे एखाने।
पाइनेर स्तब्धता छद्मवेशी,
तारइ आड़ाले चलेछे बाँचबार की निष्ठुर संग्राम।
कठिन पाथर भेद करे येखाने माटीर एकटुखानि कणा

प्रतारणा

निकटवर्ती पहाड़ के तन पर
हरी घास का अस्तर,
सुदूर पहाड़ की चोटी पर
पाइन वृक्षो की पाँत
मानो शत-शत मंदिरो के शिखर हो।
बीच से बहा जा रहा छोटा-सा पहाड़ी झरना;
जितना उसमें पानी
उससे अधिक कलरव।
घास का आच्छादन निस्पन्द!
देखकर लगता है मानो प्राणहीन,
गभीर प्रशान्ति जैसे बिखरी है पहाड़ के तन पर।
सुदूर स्तब्ध है पाइन के वृक्ष
ध्यानमूर्ति बन खड़े हुए
हवा से पत्ता तक हिलता नहीं
लगता सम्पूर्ण पृथ्वी की स्तब्धता
यहॉ सिमट आई है
विराट स्तब्धता और श्यामल प्रशान्ति के बीच
तनिक सी चञ्चलता ला दी है
एक झरने की जलधारा ने।

हठात् याद आता
माया का कितना बड़ा खेल चल रहा है यहॉ।
पाइन की छद्मवेशी स्तब्धता,
उसी की ओट चल रहा है
बचे रहने का कसा निष्ठुर संग्राम।
कठोर पत्थर को भेद
जहाँ मिट्टी का तनिक-सा कण

तार रस निःशेष क'रे पाइनगुलिर बाँचबार की कठिन प्रयास !
शिकडे शिकडे से की जीवनरसेर जन्य काड़ाकाडि,
एके अपरके छापिये उठे
आलो पावार की आकुलता !
घासेर वनेओ जीवनेर सेइ दुर्निवार क्षुधा।
प्रतिटि घासेर शिकडे बाँचबार आकाङ्क्षा,
दूर्वादलेर श्यामल आच्छादनेर प्रतिटि तृण
अन्य सबाइके वञ्चित क'रे आलो-जल-वायुर पियासी।
देखतेइ शुधु पाइनतरु स्तब्ध समाधिमग्न,
देखतेइ शुधु घासेर कोमल गालिचाय सबुज प्रशान्ति।
झर्नार जलधारार चञ्चलतार मध्ये रयेछे प्राणेर आभास।
सेखाने संग्राम नेइ, सेखाने आछे गति।
ढेउये ढेउये माखामाखि,
जलेर कणाय कणाय ठेलाठेलि,
दुरन्त आवेगे शुधु सामने छुटे चले।
कठिन पाथरके भिजिये,
शुकनो माटीके सरस क'रे,
रुक्ष शिकडके प्राणेर रस जुगिये,

अपना जीवन-रस निःशेष कर
पाइन-वृक्षो का बचे रहने का
चल रहा कैसा कठिन प्रयास !
वृक्षो के प्रत्येक मूल मे
जीवन-रस के लिए यह कैसी खींचातानी,
एक दूसरे को दबाकर छा जाना है
प्रकाश को पाने की यह कैसी आकुलना !
घास के वन मे भी है
जीवन की वही दुर्निवार क्षुधा।
घास के प्रत्येक मूल मे
जीवित रहने की आकांक्षा,
दूर्वादल के श्यामल आच्छादन का हर तृण
अन्य सबको वंचित कर
प्रकाश-जल-वायु का प्यासा है।
देखने मे ही पाइनतरु स्तब्ध समाधिमग्न,
देखने मे ही घास के कोमल गलीचे पर
हरीतिमायुक्त प्रशान्ति।
झरने की चञ्चल जलधारा में
है प्राणो का आभास।
वहाँ संग्राम नहीं,
वहाँ है गति।
लहर-लहर में गुत्थमगुत्था
जल के कण-कण मे धक्कमधक्का,
प्रबल वेग से
केवल सामने की ओर छूटा जाता है।
कठिन पाथर को भिगो,
सूखी माटी को सरस कर,
रुक्ष मूल को प्राणो का रस जुटा.

पृथ्वी के चारो ओर प्राण बिखराता,
समस्त प्रशान्ति के बीच
जीवन की चञ्चलता ला,
हरी बांस के गलीचे को लिए,
पाइनो के मृत्युशीतल
हरित अंधकार को भेदकर,
वर्णहीन—फिर भी
हजार वर्णों में विच्छुरित—जल की धारा
दिनरात किसके आह्वान पर
कहाँ बही जाती है?

हुमायूँ कबीर

म रा ठी

चयन : कुसुमावती देशपांडे
मं. वि. राजाध्यक्ष

अनुवाद : प्रभाकर माचवे

कवि-नाम	कविता
इंदिरा	अँधेरे के धीमे जल में से
	मैंने ही डुबाया
	गगरी
कांत	जोगी
कुसुमाग्रज	मिट्टी का गाना
गुणाकर देशपांडे	स्रोत
ना. घ. देशपांडे	उत्कंठा
	बकुल-फूल ओ !
पुरुषोत्तम शिवराम रेगे	मैंने धरती देखी
बा. भ. बोरकर	अब भी सखि ! हँसने पर तू
बा. सी. मर्ढेकर	अगर तुम्हारी पत्थर-सी भौं
म. म. देशपांडे	मन के बंद दरवाजे पर
मंगेश पाडगाँवकर	रुकी नहीं रात जरा भी
	इतना ही
वसंत बापट	अभी भी
विंदा करंदीकर	क्षण में अद्भुत होना
	चहक भरी पौ में
शरच्चंद्र मुक्तिबोध	हे मर्त्य !
सरिता पदकी	

अंधाराच्या संथ जळांतुन

अंधाराच्या संथ जळांतुन
असतां चालत....
नसतें वरतीं अभाळ काळें
क्षितिजानें जें हो वलयांकित
नस ते खालीं धूसर रस्ता
दोबिंदूंनीं जो मर्यादित,
नसतें अवती भवतीं कांहीं,
शब्दानें जें हो संज्ञांकित,
असते एकच....

निगूढ काळ्या वलयांमधुनी
असतां चालत ...
नसतें कांहीं नयनीं चित्रित,
नसते कांहीं कानीं अस्फुट,
नसतें अवतीं भवतीं कांहीं
स्पर्शानें जें हो संवेदित,
असते एकच....

असते एकच हट्टी जाणिव
दंडापाशीं....पदरापाशीं....
मनोमनाला जी संवेदित
—तुझ्यासवें मी असतें चालत.

इंदिरा

अँधेरे के धीमे जल में से

अँधेरे के धीमे जल में से
चलते हुए....
नहीं होता है ऊपर काला आसमान
जो कि क्षितिज से वलयांकित हो,
नहीं होता है नीचे धुँधला रास्ता
दो बिंदुओं से जो मर्यादित हो,
नही होता है आस-पास कुछ,
जो शब्दो से संज्ञांकित हो,
होती है केवल एक ...

निगूढ काले वलयो मे से
चलते हुए....
नयनो मे कुछ भी चित्रित नहीं होता,
कानो में कुछ भी अस्फुट नहीं होता,
स्पर्श से जो संवेदित हो
होती है केवल एक...

होती है केवल एक ही हठी चेतना
वाहुओ के पास.. .आँचल के पास....
मन-ही-मन में जिसका मै संवेदन करती हूँ
—तुम्हारे साथ मै चलती हूँ

इंदिरा

मींच बुडविलें

ऐकुन घेणारा . तूं
समजुन घेणारा . तू
तुझ्याचपाशी म्हणुन वागलें
म्हणुन बोलले—

उगाच कांहीं—खुळे भाबडे
मन मोकळें .अर्थशून्यही.
मुरडुन थोडे नाक बुद्धिचें
हासुन थोडें उपहासाचें
म्हणालास तू

"सांगशील का मोजुन मजला
ह्या उथळपणाची . खोली?"
—गळ्यांत आला एक आवढा
डोहच काळा उथळपणाचा
भिडले काळें पाणी येउन
काजळावरी.

आणि तुला मी—
मींच बुडविलें त्या डोहामधि
उच तुझ्या त्या .
हिमशिखरांसह

इंदिरा

मैंने ही डुबाया

• सुन लेने वाला....तू
समझ लेने वाला....तू
तुम्हारे ही साथ इसलिए मै रही
इसलिए मै बोली—

यो ही कुछ भोले-भाले
खुले मन से. अर्थशून्य भी...
थोड़ा-सा बुद्धि की नाक चढ़ाकर
थोडा-सा उपहास से हँसकर
तू बोला

"कहोगी क्या नापकर मुझे
इस छिछलेपन की ..गहराई?"
—गले में जैसे कुछ अटकन हुई
सरोवर ही है काला. . छिछलेपन का
उससे काला पानी आकर मिला
काजल पर .

और तुझे मैंने—
मैने ही डुबाया उस सरोवर मे
तुम्हारे ऊँचे उन.. .
हिम-शिखरो के साथ।

इंदिरा

कळशी

परतुन येतां पाणवठ्याहुन, काल कुठें तरि
हिसकळलें तें
कळशीमधल्या पाण्यावरतीं.. .
आणि वितळली पायतळींची वाट धुक्याची,
तरंगली अन् माथ्यावरची भरली कळशी
तरल पिसापरि—घाबरलेल्या ..
दुष्ट नष्ट अन् रात्र तिच्यांतच
टाकितसे एकेक चांदणी ...

आज सकाळीं जातांना परि पाणवठ्याला,
कळशी नाहीं उरली कळशी,
रितेपणाचें झालें पाणी ..
हिरवा सागर
धडका देतें जें क्षितिजावर....
—घाम डंवरला, भिजलें कुंकू,
अडलें पाउल तुटलेल्या निःश्वासावरतीं,
दमली वाहुन. . विश्व शिरावर.
उतट अनावर वाट पाहतें—
क्षणांत यावी खालीं
खळ्कन
काळी खापर
चिंब भिजावें.. वाहुन जावें
जळधारांतुन... त्या प्रलयांतुन....

इंदिरा

गगरी

पनघट से लौटते हुए, कल कहीं
छलका वह
गगरी में के पानी के ऊपर ...
और पैरो के नीचे की कोहरे की राह पिघली।
सिर पर की भरी हुई गगरी तैरने लगी
तरल पंख की तरह, घबराये हुए....
दुष्ट नटखट रात उसीमें
एक-एक सितारा डाल रही है. ..

आज सवेरे पनघट पर जाते हुए
गगरी गगरी न रही,
खालीपन का पानी बन गया....
हरा समुद्र
जो क्षितिज पर टकरा रहा है...
—पसीना डबडबाया, कुंकुम भीग गया,
टूटे निश्वासो पर कदम अड़ गए,
ढोकर थकी... विश्व सिर पर।
किनारे तक भरी बेसक राह देख रही है—
क्षण में नीचे आ जाये
टूटे कॉच की तरह
काले ठीकरे
पूरे भीग जाय....बह जायँ
जल-धाराओ में... उस प्रलय में....

जोगी

यांतील तुझें घर वद कुठलें ?
बुडतां दिस हें नगर गवसले

फिरलों भ्रमलो विदीविदीतुनि
साद घातली सदनीं-सदनीं
पडसादहि नच उठले फिरुनी

सुने सुने पथ नेत्रांचि थिजले
यातील तुझें घर वद कुठले ?

धूसर काळी भयाण वसती
मुके गवाक्षीं दीप उजळती
प्रतीक्षेंत हृदये जळती

बघ पश्चिमेतुनी घन उठले
यांतील तुझे घर वद कुठलें ?

दिशा ढगे थारावुनि गेल्या
गांव वादळे हलला फुटला
धरिला तरुही पथि उन्मळला

वीज-पदर चाटून चालले
याताल तुझे घर वद कुठलें ?

दीपही न घारें तुवां लाविला
खूण ठेविला नच सुमझेला
कां शून्यीं बोलविलें मजला !

परततां नगरदारहि मिटले
यांतील तुझें घर वद कुठलें ?

कांत

जोगी

बताओ इनमें तुम्हारा घर कौन-सा है?
दिन डूबते हुए यह नगर पाया

भटका घूमा गली-गली में
सदन-सदन में पुकारा
उनमें से प्रतिगूँज भी नहीं उठी
सूने-सूने रास्ते, आँखे ठिठकी
बताओ इनमें तुम्हारा घर कौन-सा है?

धुँधली काली भयानक बस्ती
मूक गवाक्षो में दीपक जलते हैं
प्रतीक्षा में हृदय जल रहे है
देखो पश्चिम में से घन उठे
बताओ इनमें तुम्हारा घर कौन-सा है?

दिशाएँ मेघो से धारामय हो उठीं
गॉव तूफान से हिला और फूटा
पक्का पेड़ भी राह में उन्मूलित हो गया
बिजली अपने अचल का छोर छुआकर चल दी
बताओ इनमें तुम्हारा घर कौन-सा है?

दीप भी तुमने घर में नहीं लगाया
फूलो का गजरा भी चिह्न की तरह नहीं रखा
क्यो शून्य में मुझे बुलाया?
लौटते हुए नगर का दरवाजा भी बद हो गया
बताओ इनमें तुम्हारा घर कौन-सा है?

कांत

मातीचें गायन

माझ्या मातीचें गायन
        तुझ्या आकाशश्रुतींनीं
जरा कानोसा देऊन
        कधीं ऐकशील का रे ?

माझीं धुळींतील चित्रें
        तुझ्या प्रकाशनेत्रांनीं
जरा पापणी खोलून
        कधीं पाहशील का रे ?

वर्खं लावून कागदी
        माझें नाचतें बाहुलें
कधीं कराया कौतुक
        खालीं वाकशील का रे ?

माझ्या नावेचा प्रवास
        चाले ढगांत धुक्यांत
तुझ्या किनाऱ्यास दिवा
        कधीं लावशील का रे ?

माझी रांगडी रात्र ही
        तेजावांचून रेंगाळे
तुझ्या उषेच्या ओठांनीं
        कधीं टिपशील का रे ?

कुसुमाग्रज

मिट्टी का गाना

मेरी मिट्टी का गाना
तुम्हारी आकाश-श्रुतियो से
ज़रा कान लगाकर
रे, कभी सुनेगा?

मेरी धूलि के चित्र
तुम्हारे प्रकाश-नेत्रो से
ज़रा पलके खोलकर
रे, कभी देखेगा?

चमकीले कागज़ चिपकाकर
मेरा खिलौना नाचता है
कभी इसकी तारीफ करने
रे, नीचे झुकोगे?

मेरी नौका का प्रवास
मेघों में कुहरे में चलता है
तुम्हारे किनारे को दीया
रे, कभी जलाओगे?

मेरी यह अनगढ़ रात
तेज के बिना ठिठक रही है
तेरी ऊषा के ओठो से
रे, कभी सोख लोगे?

कुसुमाग्रज

जिव्हाळी

खुळ्या जळाची कळी खुलावी
जशि वाऱ्याची झुळुक लागुनी
तशीं तुझ्या दृष्टींत जागती
तरल कंपनें मला पाहुनी

त्या लहरींतिल अधीर तगमग
हलवुन जाते मुग्ध लव्हाळी
खोल खोल हृदयांत मुळाशीं
लावुनि जाते मुकी जिव्हाळी.

गुणाकर देशपांडे

स्रोत

पागल जल की कली खिलती है,
जैसे हवा का झोका लगकर,
वैसे ही तुम्हारी दृष्टि में जगते है
तरल कंपन मुझे देखकर

उन लहरियो मे की अधीरता और तिलमिलाहट
मुग्ध तल-तृणो को हिला जाती है
गहरे में गहरे में हृदय के मूल मे
कोई मूक स्रोत शुरू हो जाता है

गुणाकर देशपांडे

उत्कंठा

खोल जमीनीमधून अश्रुत तरी असावा असा—
झऱ्याचा नाद जसा चालतो,
नील तरल तिमिरांत झाकल्या पुष्करिणीचा जसा—
निळा थर हळूहळू हालतो,

धुक्यांत भुरक्या, दूर, निवळत्या संध्यारंगामधे
भासते मात्र जशी चांदणी,
असूनही नऽ आठवणारी, हृदयतरंगामधें—
जशी कल्पना विविधरंगिणी,

परिमळ भरते सभोंवार, पण अगोचरच राहते—
जशी घनवनांत फुलती कळी,
सर्वातीत तरी सर्वकष निरंतरच वाहते—
जशी वास्तवामधे पोकळी,

अगम्य असला असा, तरी वाटतें असावास तूं !
सख्या, वाटतें दिसावास तूं !

ना. घ. देशपांडे

उत्कंठा

गहरी जमीन में अश्रुत और फिर भी चलता है
जैसे झरने का नाद,
नील तरल तिमिर में ढकी हुई पुष्करिणी की जैसी
नीली सतह धीरे-धीरे हिलती है,

भूरे कुहरे में, दूर, बिलमते संध्या-रंगों में
जैसी एक तारिका भासित होती है
होकर भी याद न आने वाली, हृदय-तरंगों में
जैसे कल्पना विविध रंगिणी है

परिमल चारों ओर भरती है, परंतु अगोचर रहती है
जैसी घन-वन में फूली हुई कली,
सर्वातीत फिर भी सर्वरूप निरंतर वहता है—
जैसा वास्तव में 'ईथर'

अगम्य होने पर भी मुझे लगता है, तू जरूर कहीं होगा!
सखे! लगता है तू दिखाई देगा!

ना. घ. देशपांडे

बकुल-फुला

सात जन्मांची निनांवी आशा धरुन मनांत
बकुल-फुला, कधींची तुला धुंडतें वनांत !

टाकून दूर नदीच्या पार
उघडें माझे घराचें दार
सदैव पिशी हिंडतें अशी निःसंगपणांत
बकुल-फुला, कधींची तुला धुंडतें वनांत !

टाकून सारा शृंगार साज
तुझ्याचसाठीं फिरतें आज
होईल कसे : झालें रे हसें सगळ्या जनांत !
बकुल-फुला, कधींची तुला धुंडतें वनांत !

श्रावण घन-गर्जन वाजे :
दिपव दोन्ही नयन माझे—
एका आंधळ्या गहन निळ्या सोनेरी क्षणांत
बकुल-फुला, कधींची तुला धुंडतें वनांत !

ना. घ. देशपांडे

बकुल-फूल ओ!

सात जुनम की अनाम आशा रखकर मन में
बकुल-फूल ओ, तुझे कब से खोज रही हूँ वन में!

दूर नदी के पार
मेरे घर का द्वार
खुला छोडकर सदा पगली-जैसी ऐसी निस्संगपन में
बकुल-फूल ओ, तुझे कब से खोज रही हूँ वन में!

तजकर सरा शृंगार-साज
तेरे लिए घूमती हूँ आज
अब क्या होगा! हँसी हो गई सारे जन में
बकुल-फूल ओ, तुझे कब से खोज रही हूँ वन में!

श्रावण-घन-गर्जन वजता है
दीप मेरे दो नैन ही हैं
एक अंधेरे गहन नीले सुनहले क्षण मे
बकुल-फूल ओ, तुझे कब से खोज रही हूँ वन मे!

ना. घ. देशपांडे

मीं धरा पाहिली

त्या तिथे
झगमगती जेथें नवल-पांखरें
आकाशाच्या शालीवरतीं,
अन् एकाएकीं
निश्चल साऱ्या वृक्षराजितुन
एकच लहरी गदगद पानें हलवुन थरकत पुढें
कुठें तरी निघून जाते.
हाकेवर एका
तळ्यांत जेथें स्वच्छ बिलोरी
निळ्या-पांढऱ्या कळ्या कडेला
जरा बिलगत्या, जरा मोकळ्या
अन् लांब सांवल्या
विसरुन जेथे
काळोखाच्या वाटेवरतीं
आळसती

त्या तिथे
पहिल्यानें मीं धरा पाहिली
रात्रींची.
उदास, भोळी,
चांदण्यांत कधि अंग न अंग आळविणारी,
मनोमन अंधारांतच फुलणारी

त्या तिथे
सहजच माझीं झालीं जेथें
ठिपठिपक्यांचीं

मैंने धरती देखी

वहाँ उधर
जहाँ नवल विहग झिलमिलाते
आकाश की शाल पर
और एकदम सहसा
निश्चल सारी वृक्ष-राजि में से
एक ही लहरी गद्गद् पत्ते हिलाकर आगे थिरकती ह
कही नो भी चली जाती है।
एक पुकार के अतर पर
तालाब में जहाँ स्वच्छ बिल्लौर-जैसे
नीली-सफेद कलियाँ किनारे....
जरा चिपटती, जरा खुलती हुई
और लम्बी छायाएँ
भूलकर जहाँ
अँधेरी की राह मे
अलसाती हैं

वहाँ उधर
पहली बार मैने धरती देखी
रात की...
उदास, भोली,
चाँदनी में कभी अग-अग अलापती,
मन-मन-में अँधेरे में खिलने वाली

वहाँ उधर
सहज ही जहाँ मै बन गया
बूँद-बूँद वाले

मंद, लाजरीं, गवती, दवती फुले,
अन् अफाट माळावरच्या वाटा
अनोळखेपण विसरुन अपुले
चहु बाजूंनीं गीतवाहिन्या होउन आल्या,
जेथें लागुन कलिकेच्या अंगा
वायु विसरला धागडधिंगा .
जगाचें जगपण आलें फळा .

त्या तिथें
पहिल्यानें मीं धरा पाहिली
पहाटची
अनपेक्षित, नवोढ, फुसलावी, भिजलेली
उगाच कांहीं मनांत मोहर करणारी

त्या तिथें
स्तब्ध एकला जरा बाजुला जेथें
लाल फण्यांचा पांगारा,
अधीर माझें मन मोजूं बघणारा
अन् ठार अलक्ष्य आकाशाच्या शुभ्र आगिला
विंझण झाला वारा,
जेथें कात टाकुनी भुजंग होतो
प्रत्यहिं माझा मीच नवा—

त्या तिथें
पहिल्यानें मीं धरा पाहिली
भर माध्यान्हीची....
सत्त्वस्थ, विशाल,

मद, लज्जालु, घास के, शबनमी फूल
और अछोर खेतो पर की पगडडियाँ
अपना बेपहचानापन भूलकर
चारो ओर से गीतवाहिनी बनकर आईं,
जहाँ कलिका के अंगो से छूकर
वायु नाच नाचने लगा....
दुनिया का दुनियापन फलित हुआ .

वहाँ उधर
पहली बार मैने धरती देखी
सवेरे की ...
अनपेक्षित, नवोढा, फुसलाने वाली, भीगी हुई,
यो ही मन में कुछ बौराने वाली

वहाँ उधर
स्तब्ध अकेला जरा एक बाजू मे जहाँ
लाल फन वाली भीड,
अधीर मेरा मन नापना चाहने वाला
और भरी अलक्ष्य आकाश की शुभ्र आग को
हवा बीजना बनी,
जहाँ केचुल गिराकर भुजग बनता हूँ
प्रतिक्षण मै अपने-आप नया—

वहाँ उधर
पहली बार मैने धरती देखी
सीधी मध्याह्न की....
सत्त्वस्थ, विशाल,

होळपणारी सगळ्यांसाठीं स्वतः
कळण्यापूर्वी जिचीच माया
पहिल्यानें मीं केली,
जागविली.

पुरुषोत्तम शिवराम रेगे

सबके लिए खुद जलने वाली
जिसकी ममता जानने से पहले
मैंने ही की,
जगाई।

पुरुषोत्तम शिवराम रेगे

अजूनही सखि हसल्यावर तूं

अजूनही सखि हसल्यावर तूं
जीर्ण वटा या फुटे धुमारा
आणि पोळल्या पाषाणांतुन
जडावलेला ठिपके पारा

अजूनही सखि हसल्यावर तू
नभीं रुणझुणे सागर-वीणा
अन स्वप्नांवर झरझर चढतो
नाक्षत्रिक गगनाचा मीना

अजूनही सखि हसल्यावर तू
सरसर येते सर मोत्यांची
दीप जिवींचा चमकुनि उठतो
झडे काजळी अन् वातीची

अजूनही सखि हसल्यावर तूं
चिरात चिणलें हसे चांदणें
जुन्या व्यथांच्या हिऱ्यांस जडवी
रित्या क्षणांचीं सुनीं कोंदणे

अजूनही सखि हसल्यावर तू
शरद मिळे अपुल्या मधुचंद्रा
उधाण स्मृतिचें अवचित येतें
अनुभावांच्या क्षीरसमुद्रा

अब भी सखि! हँसने पर तू

अब भी सखि! हँसने पर तू
इस जीर्ण बरगद की शाखे फूटती हैं
और जलते हुए पाषाण में से
जमा हुआ पारा बूँद-बूँद गिरता है

अब भी सखि! हँसने पर तू
नसो मे सागर-वीणा रुमझुमती है
और सपनो पर जल्दी से चढती है
नाक्षत्रिक गगन की मीनाकारी

अब भी सखि! हँसने पर तू
झर-झर मोतियो की झडी बरसती है
प्राणो का दीपक चमक उठता है
बत्ती का काजल झर पडता है

अब भी सखि! हँसने पर तू
ऐसी हँसी मानो चाँदनी पत्थर में चिन दी हो
पुरानी व्यथाओ के हीरे जड़ उठते है
रीते क्षणो की सूनी मुद्रिका मे

अब भी सखि! हँसने पर तू
शरद् अपने मधुचद्र से मिलता है
स्मृतियो का उफान अचानक आता है
अनुभावो के क्षीर-समुद्र में

अजूनही सखि हसल्यावर तू
जागे माझा कविचा बाणा
अवसेच्याही घन अंधारीं
पुनव रसांची भेटे प्राणा.

बा. भ. बोरकर

अब भी सखि! हँसने पर तू
मेरे कवि का बाना जाग पड़ता है
अमावस के घने अँधेरे में
ऐसे ही पूर्णिमा प्राणों को मिलती है।

बा. भ. बोरकर

फक्त तुझी जर दगडी भिंवयी

हासडल्या तुज शिव्या तरीही
तुझ्याच आलों पायीं लोळत,
मुठींत धरुनी नाक, लाविले—
तव डोळ्यांशीं डोळे पोळत.
कधीं जन्मली पृथ्वी? जमल्या—
निळ्या वायुच्या लगडी सलग—
कधीं?
कधीं अन् जडतेला त्या
मनामनाचे आले पोत?
तेजाच्या अन् निळ्या नळींतुन
जसा फुलावा निळसर चांफा
सपोत सझेमधून तैसा
अनुभूतींचा फुलला वाफा
पहावें तेजांतुन ह्या—
काय?
कुणाला शोधावें अन्!
दळभद्याच्या आग लागली
पायाखालीं इथें अचेतन?
खंत कशाला जिरेल का रग—
आकाशाची? जगेन पोळत,
फक्त तुझी जर दगडी भिंवयी
चळेल थोडी डोळ्यांदेखत!

अगर तुम्हारी पत्थर-सी भौं

तुझे गालियाँ दी जी-भर पर
आया तेरे पद पर लोटता हुआ,
मुट्ठी में नाक दबाकर, लगाये
तप्त नयन तेरे नयनो से।
कब जनमी थी पृथ्वी? जभी
नीली हवा की ईंटे क्रम से
कब?
और उस जड़ता में कब
मन-मन का पोत आया?
और तेज की नील नीलिमा में से
जैसे नीलम चम्पा फूले
स-पोत संज्ञा में से वैसे
अनुभूतियों के थाले खिले
इस तेज में से देखे
क्या?
और किसे खोजे?
दलिद्दर के आग लगी है
पैरों के नीचे यहीं अचेतन?
शोक व्यर्थ, यह ताकत मिटेगी
आसमान की? तप्त जिऊँगा।
अगर, तुम्हारी पत्थर-सी भौं
आँखो के सामने से जरा-सी सरक

हासडल्या तुज शिव्या तरीही
तुझ्याच आलों पायीं लोळत,
मुठींत धरुनी नाक, लाविले—
नव डोळ्यांशीं डोळे पोळत

बा. सी. मर्ढेकर

तुझे गालियाँ दीं जी-भर पर
आया तेरे पद पर लोटता हुआ,
,मुट्ठी मे नाक दबाकर, लगाये
तप्त नयन तेरे नयनो से

बा. सी. मर्ढेकर

मनांच्या बंद दारांवर

मनांच्या बंद दारांवरच
उभे असतों एकमेक
बद दारासमोरील
पायरीवर बसूनच
शहरांतील शेजाऱ्यागत
बोलत असतो
म्हणूनच फसत नि फसवीत असतों...

तुझ्यांतील कोणीतरी
बाजूच्याच खिडकीच्या गजांतून
पाहत असतें न्याहाळून
माझ्यांतील कोणी आंत
दारालाच कान देऊन उभें असतें.

—मनांच्या बद दारांवरच
उभे असतों असेंच बोलत
जन्मभर !

म. म. देशपांडे

मन के बंद दरवाजे पर

मन के बद दरवाजे पर ही
हम दोनो खड़े रहते है
बद दरवाजे के सामने की
सीढी पर बैठकर
शहरो के पड़ौसियो की तरह
बोलते रहते है
और इसीलिए फॅसते और फॅसाते रहते हैं .

तुममें से कोई
पास की खिडकी की छडो मे से
देखता रहता है निरखकर
मेरे भीतर का कोई अंदर ही
दरवाजे को कान लगाकर खडा रहता है।

—मन के बंद दरवाजो पर ही
हम खड़े रहते है ऐसे ही बोलते हुए
जनम भर!

म. म. देशपांडे

थांबली न रात्र मुळीं

तू म्हटलें थांब तरी
थांबली न रात्र मुळी
अनोळखी देशांतिल
अनोळखी पक्ष्यापरि
ओझरत्या ओळखिचें पुसट पीस
झुरत आणि रेंगाळत
केवळ मागें उरले .

तूं म्हटले थांब तरी
थांबली न रात्र मुळी
जाणवली फुटतांना
काच धुक्याची हळवी
अन् दिसला त्यांतूनच, विसकटल्या—
गडद रंगचित्रांचा
गूढ जपानी पखा....
क्षितिजावर उलगडला
...तोही विरण्यासाठीं .

तूं म्हटलें थांब तरी
थांबली न रात्र मुळीं ...
आणि स्वप्न-यमुनेच्या पाण्याने भरलेला
रात्रीच्या निद्रेचा घट नाजुक
रिक्त पुन्हां जाणवला,
झाडांच्या गौळणिही
तिमिराच्या ओढणींत लपलेल्या
कळलें नव्हत्याच मुळीं !

रुकी नहीं रात जरा भी

तुमने रुकने को कहा, फिर भी
रुकी नहीं रात जरा भी
अनजान देशो के
अनजान पछी की तरह
जरा-सी पहचान का छूता हुआ पर
विरह से अकुलाता, मॅडराता
केवल पीछे बचा.

तुमने रुकने को कहा, फिर भी
रुकी नही रात जरा भी
फूटती हुई जान पड़ी
कुहरे की कॉच सवेदनशील
और उनमें से दिखाई दिया, फैला हुआ—
गहरे रंगचित्रो का
गूढ जापानी पखा
क्षितिज पर खुलता हुआ
वह भी खोने के लिए

तुमने रुकने को कहा, फिर भी
रुकी नही रात जरा भी
और स्वप्न-यमुना के पानी से भरा हुआ
रात की निद्रा का घट नाजुक
रिक्त पुनः जान पड़ा।
पेडो की गोपियॉ
तिमिर की ओढनी में छिपी हुई
लगा—वे थी ही नही!

दोनो को जान पडा
पेड पेड़ बन गए
पुरानी रात-शाखो के
और हरे पत्तो के—
पककर झरने के लिए फूटे हुए ।

मंगेश पाडगाँवकर

एवढेंच

मंद फिक्या गंधाच्या
त्या कुरळ्या रात्रींतुनि केसांच्या
फिरतांना पांच पक्षि बोटांचे
स्वतःलाच हरवुनि होते बसले ..
अन् नकळे
परत पुन्हा
परतले कसे अवचित
घेउनिया चोचींतुन
पांच चांदण्या बुजऱ्या

रात्र तुझी नेलिस तू,
पण अजुनी
बोटें हीं गुणगुणती—
एवढेच हे माझे
एवढेच माझ्यास्तव उरलेले....

मंगेश पाडगाँवकर

इतना ही

मंद फीकी गंध की
'उस कुंचित रात में से बालो के
पाँच पंखी अँगुलियो के घूमते ही
खुद को वे हार बैठे थे
और अनजाने में
फिर से पुनः
लौटे कैसे अचानक
लेकर चोंच में
पाँच लजीली तारिकाएँ

रात तेरी ले गई तू
पर अब भी
ये अँगुलियाँ गुनगुनाती हैं—
इतना ही यह मेरा
इतना ही मेरे लिए बचा .

मंगेश पाडगाँवकर

अजून

अजून त्या झुडुपांच्या मागें
सदाफुली दोघांना हसते
अजून अपुल्या आठवणींनीं
शेवंती लजवंती होते

तसे पहाया तुला मला ग
अजून दंवबिन्दू थरथरतो
अर्ध्यामुर्ध्या कानगुजास्तव
अजून ताठर चपक झुरतो
पाठ आठवुन तुझी बिलोरी
अजून हिरवळ हिरमुसलेली
चुंबायाला तुझीं पावलें
फूलपांखरे आसुसलेलीं
अजून गुंगीमधें मोगरा
त्या तसल्या केसांच्या वासें
अजून त्या पात्यांत लव्हाळीं
होतच असतें अपुले हासें
अजून फिक्कट चंद्राखालीं
माझी आशा तरळत आहे
गीतांमधलें गरळ झोकुनी
अजून वारा बरळत आहे....

वसंत बापट

अभी भी

अभी भी उन झाड़ियो के पीछे
सदा बहार दोनो पर हँसती है
अभी भी अपनी यादो से
सेवती लजवंती बनती है

वैसे तुझे और मुझे देखने के लिए
अभी भी ओस की बूँदें थरथराती हैं
अधूरी कानाफूसी के लिए
अभी भी अकड़ा हुआ चंपक अकुलाता है
तेरी आईने-जैसी पीठ याद करके
अभी भी हरियाली रूठी है
तेरी पद-तलियो को चूमने
तितलियाँ ललचाती है
अभी भी मोगरा नशे में है
उन वैसे बालों की सुगंध से
अभी उन पत्तियों में, जल-तृण में
हमारी हँसी होती रहती है
अभी भी फीके चाँद के नीचे
मेरी आशा तरलित होती है
गीतो में का विष चढाकर
अभी भी हवा उन्मादिनी-सी बोलती है ..

वसंत बापट

क्षणांत अद्भुत होतें....

मला न मिळलें होते मीपण माझे—
जरी समजलें होतें,
किलबिलणारीं पानें
पिउनी दूध उषेचें
पुटपुटती कां टिपटिपणारें गाणे

मला न मिळलें होते मीपण माझें—
जरी उमगलें होतें,
साधे भोळे दिसणारे हे डोंगर
पसरुन अपुल्या शरिराचें अवडंबर
गुडघ्यामध्ये खुपसुन अवजड डोकें
वाट पाहती पुढच्या उग्र क्षणाची

मला न मिळलें होतें मीपण माझे—
जरी उमगलें होते,
आम्रतरूच्या सगुण सावलीखालीं
रवथ करणाऱ्या रेड्याला पडतें
स्वप्न भाबडें अजुनी ज्ञानेशाचें.

मला न मिळले तरिही मीपण माझें
मला न कळलें होतें मीही आहें :
जरी समजली होती
महानुभावी भाषा, सकेत तिचे
परंतु जेव्हां
तुझ्या उरांतिल गुदमरणारें गाणें
गाउं लागलें स्पर्शपल्लवी गाथा
अन् फुटला क्षण,

क्षण में अद्भुत होता...

मुझे मेरा मै-पन नही मिला था—
यद्यपि समझ में आया था,
चहकने वाले पत्ते
उषा का दूध पीकर
बुदबुदाते हैं क्यो टिप-टिप करता गाना

मुझे मेरा मै-पन नही मिला था—
यद्यपि भॉप लिया था,
सीधे-सादे दिखाई देने वाले ये पर्वत
अपने शरीर का आडबर फैलाकर
घुटनो में अपना भारी सिर खोलकर
राह देखते है अगले उग्र क्षण की

मुझे मेरा मै-पन नहीं मिला था—
यद्यपि भॉप लिया था,
आम्र-तरु की सगुण छॉह के नीचे
जुगाली करने वाले भैसे को
स्वप्न भोला अभी भी ज्ञानेश्वर का आता है।

फिर भी मुझे मेरा मै-पन नही मिला
मुझे यह पता नही चला कि मै भी हूँ :
यद्यपि समझ में आई थी
महानुभावी भाषा और उसके संकेत
परंतु जब
तेरे हृदय का अवरोधित गान
गाने लगा स्पर्श-पल्लव की गाथा
और क्षण फूटा,

अनुभवले मीं प्रथमच माझें मीपण, रक्तस्वप्नसें.
मी धडपडलो,
ठेच लागुनी चंद्राची, सूर्याची
आणि चाटली वीज भयानक, स्वेदगंधितां.
मला उमगलें मीही आहें, आहें,
मीही होतों आणिक मीही होइन
त्रिगुणसत्य हें त्रिकालदर्शी
ओहळलें तव अंगावरुनी,
आणिक तें गिळण्यास्तव
चोंच उघडली अलगद चित्रलिपीनें, मन्मनातल्या.

अजुनी सुद्धां नकळत,
अनुभूतीच्या आठवणीचा पडतो दाब विलक्षण
अन् फुटतो क्षण.
आणिक नंतर,
क्षणांत अद्भुत होतें ...
अलगद माझेपण माझ्याशीं येतें.

विंदा करंदीकर

मैने अपना मै-पन अनुभवा, रक्त-स्वप्न की भाँति।
मै लड़खड़ाया,
चाँद से, सूरज से ठोकर लग गई
और मुझे बिजली भयानक, स्वेदगधिता लगी।
मुझे जान पडा मै भी हूँ, हूँ,
मै भी था अधिक मै ही होकर
त्रिगुण सत्य यह त्रिकालदर्शी
तेरे अगो पर से उमड़ा।
और वह निगलने के लिए
चोच खोली धीमे से चित्रलिपि ने, मेरे मन के भीतर।

अब भी अजाने,
अनुभूति की याद का दबाव विलक्षण पडता है
और क्षण फूटता है।
और बाद मे
क्षण में अद्भुत होता है ...
सहज धीमे से मेरापन मेरे पास आता है।

विंदा करंदीकर

किलबिलल्लेलें उजाडतांना

किलबिलल्लेलें उजाडतांना
ओठ उगवतीचा थरथरला
गुलाबलेला ओल्लालसर

तुडुंबलेले
सथ निळेपण
पसरत गेलें चार दिशांना
तांबुसवेडें.

हळूहळू मग निःस्तब्धांतुन
स्वप्नें उडलीं गुलाल घेउन
लालचुटुकशा चोचींमध्यें,
पिंजर-पंखी,
आणिक नंतर
आपखुषीनें अभ्र वितळलें,
उरलें केशर
आणि भराभर
उधळण झाली आकाशावर
आकारांची
रंगदंगल्या
नाहिं उमगलें
केव्हां सरला रजतराग हा,
ही अस्ताई,
आणि उमटला रौप्यतराणा

चहक भरी पौ में

चहक भरी पौ में
होठ जगने वाली का थरथराया
गुलाबी गीला लाल-लाल-सा

उमड़ता हुआ शांत नीलापन
फैलता चला गया चारो दिशाओं को
लालिमा से पगलाया।

धीमे-धीमे फिर निस्तब्धो में से
स्वप्न उड़े गुलाल लेकर
लाल चमकती चोच में
पिंजर-पंखी।
और बाद में
अपनी खुशी से बादल बिखरे,
बता रहा केशर
और जल्दी से
फैल गए आकाश पर
आकारो की
रंग दंगल
नहीं पता चला
कब समाप्त हुआ रजत राग यह,
यह अस्ताई,
और उभरा रौप्य तराना

झगमगणाऱ्या जलद लयींतिल
....असा विसरलों, विसावलों अन्
नीरवतेच्या गुहा समेवर
आणिक नंतर

न कळे कैशी,
मनांत माझ्या—कांहिं न करतां—
जाणिव भरली कृतार्थतेची.

विंदा करंदीकर

चमक-झमक वाला जल्दी की लय का
. ..ऐसा भूला, विश्राम लिया और
नीरवता की गुहा सम पर
और बाद में

न जाने कैसे,
मन में मेरे—कुछ न करते हुए—
चेतना भर उठी कृतार्थता की।

विंदा करंदीकर

मृत्यो

मृत्यो !
जेव्हा आकाशभर पसरून तुझा पंजा
लांब नखाचें पाते तू
खोलवर गळ्यावर दाबतोस
नि प्राण हरून नेतोस
तेव्हां मी
पापणीहि न लववतां
तुजकडे थंडपणें पाहत राहतों.

मृत्यो !
जेव्हां कुणी वाजत्रीच्या जल्लोशांत
नाहीं, नाहीं, नाहीं म्हणत
मान हालवीत तुझ्याकडे येतात
मुग्यामुंग्या येतात
पायाखालच्या रस्त्यावर
झिंज्याझिज्या लोंबतात
सुजलेल्या डोळ्यांवर
तेव्हां मी
कोपऱ्यांतली काठी उचलून
संथ पाउलांनीं
तळ्याच्या कांठावर जातों
नि पाहत राहतों—
मावळतीचें सौम्य मृदु प्रतिबिंब !
अन् डोळे माझे भरून येतात !

हे मृत्यु!

हे मृत्यु!
जब पूरे आसमान पर अपना पजा फैलाकर
लबे नखो की धारदार पट्टी तू
गहरे गले पर दबाता है
और प्राण हरण करके ले जाता है
तब मै
पलक भी न झपकते हुए
तेरी ओर ठडे देखते रहता हूँ।

हे मृत्यु!
जब कोई बाजे के जुलूस और कोलाहल में
नही, नही, नही कहते हुए
गर्दन हिलाते हुए तेरे पास आते हैं
चींटी चींटी आते हैं
पैरो के नीचे के रास्ते पर
बाल बिखेरकर लटकते हैं
सूजी हुई आँखों पर
तब मै
कोने में की लकड़ी उठाकर
धीमे पैरो से
तालाब के किनारे पर जाता हूँ
और देखता रहता हूँ—
अंत समय का सौम्य मृदु प्रतिबिंब
और ऑखे मेरी भर उठती हैं

मृत्यो !
तू नि तुझा जोडीदार
माझा जुना मित्र परमेश्वर
संगनमतानें आकाशांत घुमवतां—पाप, पाप
अन् छाती बडवीत
काळ्या वस्त्रांची लांबच लांब मिरवणूक वाहत असते
न केलेल्या पापाबद्दल शोक करीत,
तेव्हां मी
पोपटी माळरानावर शांतपणें बसून राहतों
नि तोडून घेतों
नुकतेंच उमललेले रानफूल
छातीशीं धरून डोळे मिटून घेतों
अन् मनाच्या पाताळांत खोल खोल
शुभ्र झरे झुळझुळतांना दिसतात
कल्पकल्पांताचे !

मृत्यो !
तुझ्या संहाराची
थडग्यांची, क्रूसांची रांगच रांग पाहून
डोळे घट्ट मिटले जातात
तुझ्या भयानें
तुझ्या जोडीदाराला—परमेश्वराला साद घातली जाते
भरलेल्या घोगऱ्या गळ्यानें
तेव्हां तेव्हां मी माझ्या तान्ह्यालाच उचलून घेतों
त्याच्या चमकत्या डोळ्यांकडे पाहत पाहत
जावळावर हळूच डोकें टेकतों
नि हृदयांत पाहतों, तों काय ?....
असंख्य तारे चमचम करीत असतात !

हे मृत्यु!
तू और तेरा साथी
मेरा पुराना मित्र परमेश्वर
मिलकर आकाश में गुँजाते हो—पाप, पाप
और छाती पीटकर
काले वस्त्रों का लम्बा-लंबा जुलूस बहता है
न किये हुए पाप के लिए शोक करते हुए,
तब मै
तोतई खेत-मैदान पर शांति से बैठा रहता हूँ
और तोड लेता हूँ
अभी-अभी खिला हुआ बनफूल
उसे छाती से लगाकर ऑखे मूँद लेता हूँ
और मन के पाताल में गहरे-गहरे
शुभ्र झरने बहते हुए दिखाई देते हैं
कल्प-कल्पात के।

हे मृत्यु!
तेरे संहार की
कब्रो की, क्रूसो की पॉत-की-पाँत देखकर
ऑखे एकदम बंद हो जाती है
तेरे भय से
तेरे साथी—परमेश्वर को पुकारा जाता है
भरे हुए भर्राये गले से
तब मै अपने छोटे-से बालक को उठा लेता हूँ
उसकी चमकीली ऑखो की ओर देखते हुए
उसके नरम बालों पर धीमे से सिर रख देता हूँ
और हृदय में देखता हूँ, तो क्या ?..
असंख्य तारे चमकते रहते हैं।

मग तूं कां आहेस ?
कशाला आहेस ?
आहेस का ?
असा विचार येतो न येतो तोंच
कळा लागून क्षणभर बेशुद्ध होते माता
(नव्हतीशी होते,
जणूं तुझी सरशी होते)
नि अकस्मात अवतरतें
टाहो फोडीत बाळाचें आक्रंदन
जंगलाच्या लाखों कळ्या
गवतांतून अवचित उमलतात.
अन् तत्काळ उमजतें
कुठें आहे मूळखांब तुझ्या काळ्या साम्राज्याचा ?
समाधानानें माझे ओठ
किंचित् विलग होतात.
किंचितच.
कारण मला तुझा स्पर्श कधींच झालेला नव्हता
नाहीं तरी, आज हजारों वर्षें....
जन्मोत्सवच पाहत आलों आहें ना
जन्मोत्सवच !!

शरच्चंद्र मुक्तिबोध

फिर तुम क्यो हो ?
किसलिए हो ?
हो भी.?
ऐसा विचार आता है न आता है त्यो ही
जरा क्षण-भर दर्द उठकर माँ बेहोश हो जाती है
(जैसे नही हो यो हो जाती है,
मानो तुम्हारी जीत होती है)
और अकस्मात् अवतरित होता है
'ट्यॉ हो–ट्यॉ हो' करते हुए नये जनमे बच्चे का क्रंदन
जंगल की लाखों कलियॉ
घास में एकदम खिल उठती हैं।
और तत्काल समझ मे आता है
कि तेरे काले साम्राज्य का मूल स्तभ कहॉ है ?
संतोष से मेरे ओठ
थोड़ से खुलते है
जरा से।
क्योकि मुझे तेरा स्पर्श कभी भी नहीं हुआ था
नहीं तो, आज हज़ारो वर्ष तक—
जन्मोत्सव ही देखता आया हूँ ना
जन्मोत्सव ही !!

शरच्चंद्र मुक्तिबोध

वाट पहावी

वाट पहावी
कातर दुखऱ्या कातरवेळीं
झापुन येतां हृदयावरतीं गडद सावली
निःश्वासावें—"येइल येइल कोणी
हे मूढ अकारण सौहृद जाणुनि माझें
भिडवील उरीं अन् गळेल अवजड ओझें !"
हरवतां त्या तशा स्वप्नमीलनीं
नकळत नयनें भिजुनी जावीं
वाट पहावी !

वाट पहावी
प्रसन्न हसऱ्या भर मध्यान्हीं
वरि निळा निरामय फुलला हर्ष असीम
तळिं जळीं खेळकर चमचमतें रेशीम
त्या तशा नाचऱ्या स्वैर तरल आनंदीं
कुणिं यावें यावें
नयनांत घेउनी विस्मित स्निग्ध निळाई
अन् अधरावरती हसरें कूजन कांहीं,
मग विरुनी सारें
जाणिव केवळ निळ्या लयींत उरावी
वाट पहावी !

वाट पहावी
नभिं डवरुनि येतां श्यामल घन श्रावणिचे
कल्लोळुनि उठतां वीणारव अंतरिंचे
तो नाद वेध तो, सुखद व्यथा ती
असह्य सारें व्हावें

राह देखूँ

राह देखूँ
कातर दुखती कातर वेला में
ढककर आती है हृदय पर जब गहरी छाँह
निश्वास छूँ—"आयेगा कोई आयेगा
मेरा यह मूढ अकारण सौहृद जानकर
छाती से लगा लेगा और सारा भारीपन झर जाय।"
ऐसे स्वप्न मिलने में खो जाते हुए
अनजाने आँखे गीली हो जायँ
राह देखूँ।

राह देखूँ
प्रसन्न हँसते हुए मध्याह्न में
ऊपर नीला निरामय फूला हो हर्ष असीम
नीचे जल में हो खेलता हुआ चमकता रेशम
उस वैसे नाचते हुए स्वच्छन्द तरल आनंद में
कोई आये आये
नयनो में लेकर विस्मित स्निग्ध नीलिमा
और अधरो पर हँसता हुआ कुछ कूजन,
फिर भूलकर सब-कुछ
चेतना केवल नीली लय की बच जाय
राह देखूँ

राह देखूँ
नभ में श्रावण के श्यामल मेघ जब झुक आए
अंतर के वीणारव कल्लोलित हो उठे
वह नाद, वह वेध, वह सुखद व्यथा
सब-कुछ असह्य हो जाय

कुणिं उन्मद वादळवाऱ्यासम कवळावें
उठवीत मान बेभान प्राण मिसळावे
अन् क्षितिज उजळतां स्मिते तृप्तिचीं
पसरुनि त्यांत जुळावी
वाट पहावी !

वाट पहावी
वाट पहावी कधिंही, जेव्हां वाटे वाट पहावी....
खंत कशाला? गांठ पडावी वा न पडावी !
वाट पहावी !

सरिता पदकी

कोई उन्मद तूफानी हवा की तरह बाँहों में भर ले
चेतना जगाते हुए प्राण अचेतन होकर मिल जाय
और क्षितिज उजला होने पर तृप्ति के स्मित
उसमें फैलाकर मिला दूँ
राह देखूँ।

राह देखूँ
राह देखूँ कभी भी, जब लगे कि राह देखूँ
क्यों शोक हो? मिलन हो या न हो।
राह देखूँ।

सरिता पदकी

म ल या ल म

चयन : मलयालम परामर्शदात्री समिति

अनुवाद : रत्नमयी देवी दीक्षित (श्रीमती)

कवि-नाम	कविता
एम. पी. अप्पन्	*मालती*
ओ. एम. अनुजन्	*आगगाडी आ रही है*
ओ. एन. वी. कुरुप्पु	*गुलाब के पौधे का गीत*
ओळप्पमण्ण	*बह जानेवाला मैं*
का. मा. पणिक्कर	*गोलोक यात्रा*
जी. शंकर कुरुप्पु	*लॅंगड़े सियार*
पैलोप्पल्ली श्रीधर मेनोन्	*एक फूल*
वयलार रामवर्मा	*तारों के पीछे*
वळ्ळत्तोळ्	*निःश्वास*
वेण्णिकुलम् गोपाल कुरुप्पु	*विश्व की गति*

मालति

परिपवित्रमी शान्ति भूसीमयिल्
पटरुमिक्कुळिर् वल्लीमतल्लियिल्
परिमलोर्मि परत्ति मिन्नुन्नोरु
सरस कोमलप्पोन्पुष्पतल्लज ।
ओलि कलर्न्नु तषुकुन्नतामिरु
तळिरुकल्कु नडुक्कु निल्कुन्निता
इरु सहजर्किडयिल् विळङ्ङिट्टु-
मरुमयामोरु पेण्कोटिपोलवे ॥

अषकोषुकुमुषस्सन्ध्ययेन्नपोल्
मिषियिलार्कुममृतं चोरिववळ्
तलकिलुक्कियिश्यामळमाय पुल्
त्तरयिलेप्पोषुमोडिक्कळिच्चवळ्
अलरितळुकळ् वीणु विचित्रमाय्
विलसुमी मलर् मामरच्चोट्टिलाय्
उणरुवानिटयाकात्त शान्तमा-
मनघशय्ययिल् निद्र कोळ्ळुन्निते
अतिरेषातुळ्ळ पोन्निन् किनावुक-
ळरुळुमानन्दमार्नु कोण्टाङ्ङिने ।

कनिवियन्नु पतिवुपोलेट्टनुं
अनियनुं तन्टे पेरु विळिक्कवे
तरळचित्तयाय् पुञ्चिरि पूण्टनि
वरिकायिल्लुयच्चेणेषुं मालति ।

मालती

इस पवित्र शान्तिमय भूतल पर
छैली शीतल सुन्दर लता मे
परिमल-ऊर्मि का संचार करके दमकती हुई
सरस, कोमल, कनक-कुसुम-कलिका
अपने को सहलानेवाले दो सुन्दर
पल्लवो के मध्य खड़ी है—
दो सहोदरो के बीच शोभायमान
दुलारी, छोटी-सी बहन जैसी।

सौन्दर्यधारा प्रवाहित करनेवाली उषस्संध्या जैसी
सब के नयनो में अमृत ढालती हुई
पायलो की रुनझुन के साथ श्यामल तृण-
संकुल भूमि पर दौड़ दौड़ कर खेलनेवाली वह,
झरे हुए फूलो से सुसज्जित,
सुन्दर, इस पुष्प-वृक्ष के तल में
शान्त अनघ शय्या पर
चिर-निद्रा में मग्न है—
अनवरत सुवर्ण-स्वप्नो से
मिलनेवाला आनन्द अनुभव करती हुई।

प्यार के साथ सदा के समान अग्रज
और अनुज नाम ले कर बुलाएँगे
तब तरल-हृदय हो कर, मुसकान के साथ, अब
वह प्यारी-प्यारी मालती नहीं आएगी।

निरघशान्तिप्पटर्प्पु तिङ्ङुन्नोरी
निरुपमाभमामेकान्तभूमियिल्
अमितवात्सयल्मार्नु निशीथिनी
हिमकणङ्ङळ् तळिक्कुन्नुवेंकिलु,
पिरयुयर्निळं वेणुकातिरमालयाल्
नरुमलरुकळ् तूकुन्नुवेकिलु,
कतिरवन् कनिञ्ञेन्नु पुळरियिल्
पुतिय कुकुमं पूशुन्नुवेकिलुं,
करळलियुमोरोरो परवकळ्
सरलगानङ्ङळ् पाटुन्नुवेकिलुं,
तटवेषातुळ्ळोरानन्दमेकुमा
नेटिय निद्र विट्टुन्निल्ल "मालति"
कलितकौतुकं लोलकळान्नोरा
ललितबालतन्नंगमोरोन्नुमे
प्रकृति तन्निललिञ्ञु नवीनमा-
मकृतकाभयिल् मिन्नुकयायिटां
मधु तुळुम्पुमिपुष्पमारोमलिन्
मृदुमनोज्ञ हृदयवुमायिटां ॥

एम. पी. अप्पन्

निरघ शान्ति परिपूर्ण
निरुपम आभामयी इस एकान्त भूमि पर
अमित वात्सल्य के साथ निशीथिनी
हिम-कणों का सिंचन करती है तो भी,
बालचन्द्र अपनी सुधांशु-मालाओ से
नये-नये फूलो की वर्षा करता है तो भी,
मरीचिमाली करुणार्द्र हो कर नित्य प्रभात में
कुंकुम लेपन करता है तो भी,
पक्षिगण हृदय को द्रवित करने योग्य
तरल गीत गाते हैं तो भी,
निर्बाध आनन्ददायिनी
इस दीर्घ निद्रा को मालती छोड़ती नहीं।
कौतुक-भरित, लीलामयी उस
ललित बालिका का अग-प्रत्यग
प्रकृति में विलीन हो कर किसी नये
अकृत्रिम सौन्दर्य से सुशोभित होता होगा
और मधु छलकानेवाला यह पुष्प उस लाड़िली का
मृदु, मनोज्ञ हृदय होगा।

एम. पी. अप्पन्

तीवण्टि वरुन्नू

(१)

वण्टि कुतिच्चेत्तुमारव माटटोलिः
क्कोण्टु केळ्कुन्नू दिगन्तरभित्तियिल्
पोरू, वरन् वरान् काक्कुं नववधु
पोले तलताषति निल्पू कोटिमर।
विद्यालयत्तिलरिविन् कतिर्कुला
कोत्ति मटङ्ङुमेन् कोच्चुतत्ते। वरू।
नम्मे विळिक्कयां नल्लकालावस्थ
माम्पू मणं चेर्न्न मन्दवातात्तिनाल्।
अन्तिय्कु निन्ने तिरञ्ञु करयुन्न
बन्धुक्कळुं निन्टे मातापिताक्कळुं
इन्नरियट्टे, गृहपञ्जरान्तर-
बन्धनातीतं मनस्सिन् चिरकाटि।
एल्लां वेटिञ्ञु नी पोरू, जनिच्च नि-
न्निल्लिवुसुटट् निन् मातापिताक्कळुं
कारिरुम्पेक्काळ् प्रबलमां पूमलर्
मालयाल्लुळ्ळोरी केट्टिन्नरुक्कणं।

(२)

मिण्टाते तेङ्ङिक्करयुन्नतेन्तु ? निन्-
कण्णुनीर् तूवालयाले ञान् मायूचिडां।
पुस्तकं चीन्ति वलिच्चेरियू सखी।
पुत्तन् परिज्ञानलाभेच्छु वल्लि, नी ?
नम्मळे जीवितलक्ष्यमेन्तिक्कुवान्
वन्नुचेराराय् पुकवण्टि चारवे।

आगगाड़ी आ रही है

(१)

आगगाड़ी दौडती आ रही है। उसका आरव प्रतिध्वनित
होकर सुनाई दे रहा है दिगन्तर-भित्तियो में।
आओ, वर की प्रतीक्षा में निरत नववधू के जैसा
शिर झुकाये खड़ा है सिग्नल।
शाला में ज्ञान-धान की पोची बाले
चुग कर लौटनेवाली मेरी नन्ही शुकी, आओ!
हमें न्योता दे रही है यह सुहावनी ऋतु
माकन्द-मजरी के सौरभ्य से परिपूर्ण मन्द पवन के द्वारा।
सन्ध्या समय में तुमको खोजते हुए रोनेवाले
तुम्हारे माता-पिता और बन्धुजन
आज जान ले, गृह-पंजरान्तर
बधनातीत हृदय-पखो की फड़फड़ाहट!
सब छोड़ कर तुम आ जाओ! तुम्हारा जन्मगृह
और तुम्हारे प्रिय माता-पिता
इस पुष्प-माल्य के लोह से भी दृढ़
बधन को आज आकर जरा तोडे तो!

(२)

बिना कुछ बोले तुम हिचकियाँ बाँध कर क्यो रो रही हो? तुम्हारे
ये आँसू मै रूमाल से पोछ लूँ।
पुस्तको को फाड कर फेक दो, मेरी सखी!
नया नया ज्ञान प्राप्त करने की इच्छुक हो न तुम?
हमें अपने जीवन-लक्ष्य पर पहुँचाने के लिए
धुआँ गाड़ी यहाँ पहुँचने ही वाली है।

नागरिकन्मार पुळ्युमिग्गद्दूटरि-
लाका नमुक्कोरु याम पोरुक्कुवान्,
घोरापवादमेट्टुग्र पिटय्कुन्न-
मारिले चोर नुणय्कुवानार्तराय्
चुट्टुनीरीडुं व्रणङ्ङळिल् काकोळ-
लिप्तरसनकलाषतुवोराणिवर्,
दाहिच्चु नोक्कुमिवरुटे दृष्टिकळ्
चारित्र दाहकाग्नेय शस्त्रङ्ङळां।
निन्टेयात्माविल् तुटिक्कुन्न पैंकिळि-
पेण्णिने काट्टालर कोल्वतिन् मुन्नमें,
पोरू, श्रविक्कुन्नतिल्लयो नी, सखि :
दूरे निन्नेत्तुन्न वण्टि तन् काहळं ?

(३)

नम्मळ् पिरन्न गृहत्तिन्टे भित्तिकळ्
नम्मे तळच्चिट्ट कारागृहङ्ङळाय्।
विज्ञानमाराञ्ञणञ्ञ विद्यालय
तत्तम्म पाटुन्न पंकिलिक्कूडुमायु
मोहनस्वातन्त्र्य पक्षङ्ङळिलिवर्
स्नेहलूतातन्तु बन्धिक्कायिल्लयो ?
केवलं नम्मळ् तन् जीवितसीमयुं
कालदेशोन्नत प्राकार दुस्तरं,
तुगमाभित्तियुं लंघिच्चुयरट्टे
नम्मळ् तन् कान्ति दाहिक्कुं चिरकुकळ्
अल्लेंकिली चर्मबद्धमां मारेल्लु
तल्लित्तकर्तु परक्कुमस्मन्मनं
पाटिल्ल-भाविपोलेत्तुन्नु तविाण्टि
पाटियुमाटियु माञ्ञ चाञ्चाटियुं

नागरिक-समूह बिलबिलाते इस पनाले में
हम एक क्षण भी रुक नही सकते।
घोर अपवाद से विद्ध हो कर उग्रता से तड़पनेवाले
हृदय के रक्त का आस्वादन करने के लिए
जलते हुए व्रणो में विषलिप्त
रसनाओ को डुबानेवाले हैं ये सब!
प्यासे भाव से देखनेवाली इनकी दृष्टि
चरित्रदाहक आग्नेयास्त्र है।
तुम्हारी आत्मा में फड़फड़ानेवाली सुन्दर शारिका का
यह निषादजाति हनन कर डाले उसके पहले ही
आ जाओ, मेरी सखी! तुम सुनती नही हो—
दूर से आनेवाली गाड़ी की सीटी?

(३)

हमने जिन गृहों में जन्म लिया वे
हमें बॉध रखनेवाले कारागृह बन गये।
ज्ञान खोजते हुए हम जिस शाला में पहुँचे
वह तोतो के पढ़ने का पिंजरा बन गई।
ये सब मोहन स्वातत्र्य-पक्षो को
स्नेह रूपी लूतातन्तु से बाँध नही रहे हैं?
हमारी यह जीवन-सीमा भी
काल-देशादि उच्च प्राकारो से दुस्तर है।
इन उत्तुग भित्तियो को भी लॉघ कर ऊँचे उडे
प्रकाश के लिए तरसनेवाले हमारे ये पंख।
अन्यथा, इस चर्मबद्ध वक्षोस्थि को भी
तोड़-फोड़ कर उड़ जायेंगे हमारे मन!
यह न हो! भविष्य जैसी यह आगगाडी आ रही है—
गाती हुई, झूमती हुई, नाचती हुई, डोलती हुई।

(४)

तीवण्टि केरि नां पिन्निट्टु पोकणं
भूतकालत्तिनूटे तिक्तस्मरणये।
नम्मळ् तन् वीडुकळ्, रोडुकळ्, सायाह्न-
सम्मेलनाघोष रम्यमां वल्ब्बुकळ्
नञ्ञु कलक्किय वीज्जु कणक्के नां
आञ्ञु दूरे कलञ्ञिन्नु नटक्कणं।
हिन्दिगानं तमिष् "बाणि" यिल् पाटुन्न
कण्णु पोट्टन् मुतल् मन्त्रिमुख्यन् वरे
स्वागतं चेय्युन्नु तीवण्टि, यात्रिक-
लोकरे ज्ञातिवर्गादि निर्भेदमाय्।
नम्मळेतुं नाळे वैरुध्य मेलन-
निम्नोन्नतदीर्घ दाम्पत्य रथ्ययिल्
मामक शाखाभुजत्तिल् तव लता-
पाणियुं चेर्त्तु नां मुन्नोट्टु पोकवे,
निन् नेटुवीर्पु ञानुम्म वेच्चोप्पुवन्,
निन् कण्णुनीरिन्नुञान् पकवीट्टुवन्।
सर्पदंशत्ताल् वषिय्कु नी वीषकिले-
न्नल्पायुषार्ध निनक्कुञान्, नल्कुवन्।
वण्टि वन्नेत्ति कषिञ्ञिट्टुमिङ्ङिने
मिण्टाते तोङ्ङ्ङकरयुवतेन्तु नी ?

(५)

पत्तु मिनिट्टिन्नटुप्पं विरहत्ति-
लुद्वमिक्कुन्न नेडुवीर्पुमायता
वण्टि नीङ्ङीटुन्नु मन्द, मिटरुन्न
तोण्टयोडंपे तळर्न्नं काल्वेप्पोडुं

(४)

चलो चले आगगाड़ी में बैठ कर, पीछे छोड़ कर—
भूतकाल की इन तिक्त स्मृतियो को।
अपने घर, रथ्याओ, सायं-सम्मेलनो के
उत्सवो से रम्य क्लब आदि को,
विष घोली हुई मदिरा के समान, हम
दूर छोड़ कर आगे चले चलें।
हिन्दी गाने तमिल स्वर में गानेवाले
अन्धे याचको से ले कर मुख्यमन्त्री तक सभी का
स्वागत कर रही है यह आगगाडी—यात्रिओ के
जाति-वर्ग आदि भेदो की गणना किये बिना ही।
हम कल पहुँच जायेंगे वैरुध्यो को मिलानेवाली
उस निम्नोन्नत और दीर्घ दाम्पत्य-वीथी में।
मेरी भुज-शाखा में तुम्हारी पाणि-लता
लपेट कर हम जब आगे चलेंगे
तब तुम्हारे दीर्घ निःश्वासो को मै चुम्बनो से मिटाऊँगा,
तुम्हारे आँसुओं का मै प्रतिशोध लूँगा।
सर्प-दंश से तुम मार्ग में गिर जाओगी तो
अपनी अल्पायु का भी आधा मै तुम्हें दे दूँगा।
गाड़ी आ-पहुँचने पर भी इस प्रकार
हिचकियाँ बाँध कर तुम क्यो रो रही हो?

(५)

दस मिनट के मिलन के बाद विरह के कारण
निकलनेवाले दीर्घ निःश्वास के साथ
गाड़ी धीरे धीरे आगे खिसकने लगी—गद्गद्
कंठ और कंपित चरणो से।

वानिन्टे हृत्तिललिञ्ञुपोय्, धूमिल-
वातवुं वण्टि तन् हृस्पन्दनादवु
आविल चित्तनाय् सन्ध्य तन् पून्तोप्पिल्
रावोटु यात्र चोदिच्चु निल्पू पकल् ।
पोक नी वैद्युत दीपिका साक्षियाय्
पाति विजनमि प्पातयिलूटवे ।
नामिनि चुटिट त्तिरियुवतोन्तिनि
प्रेमनगर त्तेरुवीथि नीळवे
एल्लां कषिञ्ञुकषिञ्ञव, वीटिटल् नी
चेल्लू सकलं मरन्न मनस्सुमाय्
निन्निळं तोळिल् विरय्कुन्न कैवेच्चु
निन्नुअनिन्नन्त्य यात्र चोल्लट्टयो ?
"ओमने ! नी सहिय्केणं, चपलमी-
प्रेमान्धनेय्त कणकळ तन् वेदन ।
ओट्ट्य्कु पोमेन् तणुत्त निषल् विर-
होत्तप्तमाकुं मरुभूविलूटवे ।
आ मणल् काट्टिन् मटित्तटिटलाट्टयेन्
जीवित काट्टुपूंचोलतन् विश्रमं

ओ. एम. अनुजन्

अतरिक्ष के ह्रदय में विलीन हो गया, धूमिल
वायु और गाड़ी के ह्रत्स्पंदन का रव।
संध्या की पुष्पवाटिका मे आकुल-ह्रदय होकर
रात्रि से विदा माँग रहा है दिन!
जाओ तुम, विद्युत्-दीपिका के साक्षित्व में
आधे विजन हुए इस पक्ष से।
हम अब वृथा क्यो भटकते फिरे
इस प्रेम-नगर की लम्बी वीथी में?
जो हो चुका सो हो चुका, अब तुम
सब भूल कर घर जाओ।
तुम्हारे इस सुकुमार कंधे पर कॉपता हुआ हाथ रख कर
आज मै अतिम विदा ले लूँ?
मेरी प्रियतमे! तुम सह लो, चपलता से
इस प्रेमान्ध के मारे हुए तीर की वेदना!
अकेले जायेगी मेरी ठडी छाया
विरहोत्तप्त मरुभूमि से।
उस मरुवन की गोद में ही होगा मेरी
जीवन रूपी वन-निर्झरिणी का विश्राम

ओ. एम. अनुजन्

गुलाब के पौधे का गीत

इस गुलाब के पौधे में खिले सभी पुष्पो में
किसी अरुणिमा का नृत्य देख कर कुछ लोगो ने ऑखे मूँद लीं।
निर्निद्र निशाओ में अपने हृदय का रक्त
सीच-सीच कर इनके प्रत्येक दल को मैने यह रग दिया।
सहसा किसी ने कहा—"फूलों के कृश डंठलो में,
हाय ! कितने पैने कॉटे चुभने को खडे हुए हैं !"
हे निन्दे ! तुम अपना हाथ मेरी ओर क्यो बढाती हो ?
तुम्हारा रक्त अशुद्ध है, मेरे शरीर मे मत लगाओ !
वेदना के कटकमय प्राकारो के अन्दर भी मेरा जीवन
पुष्प मे मदहास बुन कर तैयार करने के लिए प्रस्फुरित होता है।

द्वितीय

जीवन, एक सुन्दर निर्झरिणी के जैसा, किसी वन के
हृदय मे कलकल भरता हुआ जब जागा,
तब उस नदी-तीर पर था मै ! उस दिन वह पहला
कुसुम जो विकसित हुआ, उसके नन्हे कपोलो पर मैने फैला दिया
कुकुम-सम्पुट जैसा अपने हृदन्त का राग !
उस दिन भूमि का कला-बोध उसको देखता हुआ जाग उठा।
"पूविळी"[1] करते हुए, नन्हे-नन्हे हाथ फैला कर नृत्य किया
जीवन ने, मेरे चारो ओर एक कोमल गान गाते हुए—
"नन्हे-से फूल, मेरे लाल लाल फूल,
इतने दिनो तक कहॉ गये थे ?"

१. ओणम्—त्योहार के दिनों मे नित्य प्रातःकाल बच्चे "पू-पू" (फूल-फूल) आवाज लगाते मित्र-मण्डली को एकत्र करते हुए फूल तोड़ने जाते हैं। इस पुकार को "पूविळीं" कहा जाता है।

पूविरुक्कुवानेतु जीवितत्तिनु काणि-
प्पूवुकळ् कोरुक्कुवानेन् करळ् तुटिक्कुन्नू।

मून्नु

हारियां वसन्तत्तिन् तेन् चोरुमुरवक-
ळारो तीर्त्तोरु मञ्ञुमेत्तमेलुरङ्ङवे,
इप्पनीरच्चेडि कुळिर् कोरिनिन्नतिन् करळ्-
च्चेप्पिलङ्ङने पुत्तन् निरकूट्टोरुक्कवे,
कूम्पटञ्ञता निल्पू पूच्चेटि—तोरातनु-
कम्प तूकुन्नू, कम्पप्पूपरत्तुन्नू चिलर !
कैविरल्त्तुम्पिल् कण्णीरोप्पिय ननवुमाय्
जीवितं वन्नू वीण्टु गद्गदगानं पाटिः

ओ. एन. वी. कुरुप्पु

फूल तोड़ने आनेवाले जीवन के लिए
प्रभात-पुष्पोपहार पिरोने को मेरा हृदय प्रस्फुरित होता है।

तृतीय

मनोहर वसन्त के मधुमय स्रोत
किसी के द्वारा निर्मित हिमशय्या पर जब सो रहे थे,
और यह गुलाब का पौधा पुलकित होकर अपने हृदय-सम्पुट में
नया अंगराग जब तैयार कर रहा था,
तब कली ही सूख गई और पौधा खडा रहा—निरन्तर अनुकम्पा
प्रवाहित करने लगे कुछ लोग, और कुछ लोग फुलझडियॉ छोड़ने लगे।
ऑसू पोछने से गीली अगुलियो के साथ
जीवन गद्‌गद्‌ गान करता हुआ फिर से आया।

ओ. एन. वी. कुरुप्पु

ओलिच्चुपोकुन्न आन्

इडवप्पकुतियिल् कालवर्षं पट-
कुतिरयेप्पोले इक्कुग्राम भूमियिल्
चक्रवाळङ्ङळिल् पोलुं कुळम्पटि-
च्चेत्तमुण्टाक्कि कुतिच्चणञीडवे;
पोक्काच्चि नन्तुणि मीट्टियुं मण्णट्ट
पीप्पी विळिच्चुं उन्मेषं पकरवे,
उण्णिकळम्मतन् वक्षास्सिलेन्नपोल्
तण्णीरलकळेन् मुटटत्तु नीन्तवे,
विण्णिले नीलक्किडात्तिकल् भूमि
पोन्नरआणङ्ङळूरि कोडुक्कवे,
लोलस्वनङ्ङळुतिर्क्कवे पूमुख-
जालकवातिलिल् तण्णीर् विरलुकल्,
एकान्ततयुडे नूलिलूडङ्ङने
पोकान् पुरप्पेट्टु निल्कुमेन् कण्कळिल्
मत्तेडुत्तोडी नटक्कुन्नु, चङ्ङल
पोट्टिच्चु भूमियिल् वन्नोरैरावत।

तळ्ळियलय्कुं जलप्रवाहङ्ङळेन्
उळ्ळिलुन्मादत्तिरकळुयर्त्तवे,
तोरात्तमारितन् कूट्टनलकळेन्-
तोळत्तेडुत्तु नडन्नु पोकुन्नु आन्।
वेय्कुन्न कालटी, वेय्कुन्न कालटी
नक्कुकयत्रे तुटुत्त नाय्कुट्टिकळ्।
विण्डल ताषत्तिडि ञ्ञुवीषुंपाडि
पिन्नयुं पेमारि पैतु कनक्कवे,

बह जाने वाला मैं

वैशाख की वर्षा युद्धाश्व के समान
इस छोटे-से ग्राम की भूमि पर
अपनी टापो की आवाज से दिग-दिगन्तर को भी प्रतिध्वनित
करती हुई कूद कर जब आ रही थी;
मेंढक अपनी "नन्त्रुणी"[१] बजाकर और झिल्लियॉ
पी-पी बजाकर जब उन्मेष फैला रही थीं;
मॉ के वक्षस्थल पर नन्हे नन्हे बच्चो के समान
पानी की लहरे जब मेरे घर के ऑगन में तैर रही थी;
स्वर्ग की नीलवर्ण पंचमकन्याऍ अपनी सुवर्ण-मेखलाऍ
उतार-उतार कर भूमि को जब दे रही थीं;
सामने की खिड़कियो पर जल रूपी अंगुलियॉ लोल स्वनो
का जब निर्माण कर रही थीं;
तब एकान्तता के सूत्र द्वारा जाने के लिए
तैयार होकर खड़ी मेरी आँखो में,
मानो, अपनी जंजीरे तोड़ कर भूमि पर उतरा हुआ
ऐरावत मदमत्त होकर भागता फिर रहा था।

उछलता-छलकता वह जल-प्रवाह
मेरे मन में जब उन्माद की तरगे उठा रहा था,
तब निरन्तर वृष्टि के बडे-बडे कल्लोलो को
अपने कंधो पर लेकर मै चला जा रहा था।
आगे पड़ने वाले एक-एक पग को हृष्टपुष्ट
शुनक-शिशुगण मानो चाट रहे थे।
आकाश ही मानो टूट कर नीचे गिर रहा है, ऐसी
वह घनघोर वर्षा जारी थी।

---

१. नन्त्रुणी : केरल का एक ग्रामीण तंत्रवाद्य-विशेष।

काट्टुवेळ्ळत्तिन् मरिच्चिलुं कण्टुको-
ण्डोट्टुवक्कत्तु आन् निन्नुपोयङ्ङिने
तेङ्ङिन् तलमुटि चुटिटप्पिडिक्कुन्न
तेन्नलिन् कालुकळ् वारिनाळा नदी।
तीरवृक्षङ्ङलोडोप्पमत्तेन्नलु
नीरिन् चुषिकळिल् वीणु करङ्ङवे,
नाना विकारतरळितचित्तनां
आनुळ्ळिलोतिनेन् "केमत्ति तन्ने नी"
पोट्टिच्चिरिच्चू पतक्कळाला नदी
तिट्टलिच्चारक्तचन्दनं पूशिनाळ्।
कैक्काळिल् पोन्तयुं काट्टुमरङ्ङळुं
काळियेक्काळुं मनोहरियाणवळ्,
अन्नदि पोङ्ङियुं मुङ्ङियुं चावुन्न
जन्तुक्कलेक्कोण्टु पन्ताडि निल्कवे,
नीरनाय कण्णु मिषाच्चितेन् कण्कळिल्
नीर्काक्कयिल् आन् चिरकु विडुर्तिनेन्।
कुंकुमप्पोट्टिटानेत्तुमुषस्सिन्टे
कण्णाटि पोले किडन्नतेक्काट्टिलुं,
काट्टुतीपोले पटर्न्नुपोयीडुमी-
वाट्टिले घोर सौन्दर्य मनोहरं।
कण्णिलेयकामलन्तण्णीरोलियुकवे
निन्नोनोरुन्मत्त जन्तुविल् तेट्टिड
नीर्कोलिपोलेआनाद्यमिषञ्ञतुं
नाल्कालिवन्नु नीर्कोलिये कोन्नतुं,
पिन्नीटिरुक्कालि वन्नु नाल्कालिये
कोन्नतुमुळ्ळिले कण्णिल् किटक्कवे,
पोत्तिप्पिटिय्कलुं कय्यंकमाटलुं
कत्तुन्न काटुं कलङ्ङिय वेळ्ळवु

उस पहाड़ी बाढ की उछल-कूद देखता हुआ
नदी-तट पर मै खडा हो गया।
नारिकेल-वृक्ष की केश-राशि को पकड़ कर खींचनेवाली
वायु के चरणो को उस नदी ने समेट लिया।
तीर-तरुओ के साथ वह वायु भी
नदी के भँवरो में गिर कर जब घूमने लगी
तब नाना-विकार-तरलित हृदय से
अन्दर ही अन्दर मै कह उठा—"है तू समर्थ!"
नदी ने फेनो से खिलखिला कर हँस दिया।
पुलिनों को घोल कर रक्तचदन लगाया।
हाथो में सब प्रकार के वन-तरु ले कर
नृत्य करनेवाली वह भद्रकाली से भी अधिक मनोहारिणी दीखती थी।
वह डूबते-उतराते मरनेवाले
भाँति-भाँति के प्राणियो को ले कर जब कन्दुक-क्रीड़ा कर रही थी
तब जल-शुनक मेरी आँखो के द्वारा देखने लगा,
जल-वायस के साथ मैने अपने पंख फैलाये।
कुंकुम-तिलक लगाने आनेवाली उषादेवी के लिए
दर्पण बन कर पड़ी थी तब की अपेक्षा
दावानल जैसी फैलकर हुंकार के साथ गमन करनेवाली
महावाहिनी का यह घोर सौन्दर्य कितना आकर्षक है।
वह पहाड़ी प्रवाह मेरी आँखो में जब लहराने लगा,
मेरी अन्तर्दृष्टि एक उन्मत्त जन्तु में जाकर रुक गई।
जल-फणि के जैसा मैने जो सर्पण किया था,
चतुष्पाद ने आकर जो उस सर्प को मारा,
फिर द्विपाद ने आकर जो उस चतुष्पाद को मारा,
सो सब एक-एक करके अन्तर्दृष्टि मे प्रतिफलित हुआ।
आपस की हाथापाई, छोटे छोटे द्वन्द्वयुद्ध,
जलनेवाले जंगल और वह मटमैला जल,

एन्निलुळ्ळोर्मयिल् पोन्तिवन्नीटवे,
निन्नुपोय् ञानोरुन्मादियिल् तेल्लिडा
पिन्नेयुं तल्लिळयलय्क पेरुंपुष़—
त्तण्णीरिलेय्कु पटार्त्ति नोक्कीटवे
पेट्टेन्नु निन्नितेन् कण्कळ् ओलिच्चुव-
न्नेत्तुन्नतेन्तोरु चत्त मनुष्यनो ?
चत्त मनुष्यन् ! इज्जन्तुविल् पेट्टेन्नु
ञेट्टियुणर्न्नुंपोय् निद्राविट्टीश्वरन् ।
चत्तु पारीडुमा दुर्भगमानुषन्
पुत्रनुं भर्तावुमच्छनुमायिडां;
तोणि मरिञ्ञिट्टोलिच्चतो, तन् चेरु-
वीडिटिञ्ञप्पोष़डिप्पेट्टुपोयतो ?
पेट्टेन्नु निन्नितेन् चिन्तकळुल्काति-
लेत्तुन्नु "नीयाणु चत्तता मर्त्यनिल्" ।
ञानङ्शवात्तिलोलिच्चुपोयिल्लत्ते,
नालिरयत्तु मटङ्ङिवन्नोंकिलुं ॥

ओळप्पमण्ण

जब यह सब मेरी स्मृति में उठने लगा, तब
मै एक उन्मादी जैसा क्षण भर के लिए खड़ा रह गया।
फिर से लहराती हुई उस महानदी की
विशाल जल-विस्तृति की ओर आँखे फैलाई,
तब एकाएक मेरी दृष्टि रुक गई—बहता हुआ
वह क्या आता है? एक मृत मनुष्य?
"मृत मनुष्य!"—इस जीव की याद आते ही
भगवान चौक कर जागा निद्रा से।
मरा हुआ वह अभागा मनुष्य
पुत्र और पति और पिता भी होगा।
नाव उलटने से बह गया, अथवा उसकी
छोटी-सी कुटिया टूट पड़ी तो पानी मे गिर गया?
सहसा मेरी चिन्ता-गति रुक गई; आंतरिक
श्रवणो मे एक आवाज पड़ी— "तुम ही मरे हो उस मनुष्य में!"
सचमुच उसी मृत शरीर मे मै बह गया।

ओळप्पमण्ण

गोलोकयात्रा

पीयुषमहांभोधिकल्लोललसिताढ्यं,
वायुविलाडुं कल्पलतिकामनोहरं,
उत्तमसुखाधारद्वीपत्तिन् महिमावु,
वृद्धनाविकर् चोल्लियत्रे नां केट्टु मुन्नं।
पाष् कथयाकामतु पोकट्टे, आकाशत्ति-
लार्कुमे काणामल्लो भासुरगोलोकत्ते।
कण्टिडामतु सन्ध्यारश्मियाल् शोणाभमाय्।
पत्तुयोजन नीलमुण्टुपोलतिनोत्त
विस्तृतियुण्टु गोलाकारमाणतु कण्टाल्।
अतिने चुटिटयुण्टु पोन्निनाल् पणितुळ्ळो-
रतिगभीरमाय कोट्ट कोत्तळमेल्लां
गोपुरं नालुण्टतु वैरवु माणिक्यवुं
शोभयिलिटचेर्तु रचिच्चुळ्ळतुतन्ने
मेरु तन् तुंगश्रृंगं कविञ्ञाणतिन् स्थानं
चारत्तु कैलासमो क्रीडाशैलमाय् काणां।

अप्पुरि काणानुळ्ळ वाञ्छायलोरिक्कल् प-
ण्टुल्प्रीति पुण्टु राजहंसत्तिन् गळमेरि
व्योमत्तिलुयर्न्नुञान् मानसतटाकत्तिन्
सीमयिल् शोभिकुन्न गन्धर्वपुरियेत्ति।
नूनमत्तडाकत्तिल् क्रीडचेय्तीडु शीत-
भानुवुमकंपटिसेविच्चु कूटे प्पोन्नु।
चेन्नुञानन्नु वेगमप्पुरं भरिक्कुन्न
गंधर्वश्रेष्ठन् वाषं कांचन प्रासादत्तिल्
हरिच्चु निर्विशंकमायवन् सूक्षिक्कुन्न
चेरुप्पु रण्डुं, दिव्यशक्तियुळ्ळवकले

गोलोक यात्रा

पीयूष-सागर के कल्लोलो से शोभायमान, सुन्दर
पवन में लहराती कल्प-लतिकाओ से अलंकृत,
उत्तम सुखो के आधार द्वीप की महिमा
वृद्ध नाविको की कहानियो से हमने सुनी ही है।
ये तो कपोल-कल्पनाएँ हो सकती है, होने दो। आकाश में
भासुर गोलोक को तो कोई भी देख सकता है।
वह संध्या-रश्मि में अरुणाभ होकर दिखाई देता है—
गगन में घिरी हुई घटाओ के बीच।
सुना है, वह दश योजन लम्बा है और उसके अनुरूप ही
चौडा है और देखने में गोलाकार है।
उसके चारो ओर स्वर्ण-निर्मित अति विशाल दुर्ग है।
चार गोपुर द्वार है, जो हीरे और माणिक्य-रत्न
जड़ कर बनाये गये हैं।
उसका स्थान सुमेरुपर्वत के तुंग शृंग के भी ऊपर है
और सामने कैलास क्रीड़ा-पर्वत के रूप में दिखाई देता है।

उस पुरी को देखने की इच्छा से एक बार
आनन्द के साथ राजहस पर सवार होकर
व्योम में उड़ कर मै मानस-तडाग की
सीमा पर शोभायमान गंधर्वपुरी में पहुँचा।
उस तड़ाग में खेलनेवाला
शीतभानु साथ-साथ आ गया।
मैने शीघ्रता से जाकर तत्कालीन नगर-शासक
गंधर्व राजा के कांचन-प्रासाद में,
निःशंक हरण की यत्न से रखी हुई उसकी
दिव्य शक्तियुक्त दोनो पाद-रक्षाएँ।

धरिच्चु केरी मेघसोपानमोरोन्नाई
शरिय्कु गोलोकत्तेय्क्कणयुं मार्गत्तूडे
कण्टुञान्वाषिमध्ये भास्करनेषन्नळ्ळान्
वेण्टपोल् वेषं केट्टि मरञ्ञु निल्कुन्नतु;

समय सूचिप्पिय्क्कानिन्द्रन्टे पूवन् कोषि-
क्रममाय् सुधर्म तन् मुकळिल् कूवुन्नतुं;
अंबरनदि तन्निल् कुळिच्चु सप्तर्षिमार्
उण्मायिल् ध्याननिष्ठराकुवान् निल्कुन्नतु;
वैडूर्यमहागिरि, भीममामिन्द्रनील-
मेडुकल्, वैरं पूवाय् शोभिय्कु वृक्षङ्ङ्ळुं;

भावन कविञ्ञुळ्ळ काञ्चकळ् पलविध-
मेवं ञान् वषिनीळे कण्टहो सन्तोषिच्चू।
अरिञ्ञतिल्ला, मार्गमोन्नोडे काणाताई;
निरञ्ञ कल्पवृक्षप्पूक्कलेन् वषि मूडी
निन्नु ञानिन्द्रनीलमलयिल् कैय्युं ताङ्कि
एन्तिनि वेण्टतेन्नु चिन्तिप्पानाळाकाते
एतुमोट्टरिञ्ञिल्ला मोहत्तिन् महालस्य
बाधिच्चु वेरुं स्तंभप्रायनाय् निल पूण्टु

* * *

ञेट्टलोडुणर्न्नु ञान् प्रेतभूतङ्ङळ् चेय्युं-
मट्टहासत्तेक्केट्टु पेडिच्चु चुटट्टुं नोक्की।
असख्यं सिंहङ्ङळ् तन्नारवमोन्निच्चपो-
ललरुं वेळ्ळच्चाटटं कण्टुञान् पेडिच्चुपोय्।
घोरकानन भ्रान्त्या हन्त ञान् विरच्चुपोय्
पारिय्कुमन्धकारं कण्टु ञान् नडुङ्ङिप्पोय्।
अटर्न्नुवीणीडुमारिड्डुङ्ङिङ्क्काणुं पार-

उन्हे धारण कर चढने लगा मेघ-सोपान पर—
गोलोकगामी मार्ग में।
मार्ग में देखा भास्करदेव को, चलने के लिए
सज-धज कर खड़े हुए;

समय बताने के लिए इन्द्र के कुक्कुटवर को,
सभास्थल के ऊपर कूजन करते हुए;
सप्तर्षिगण को, अम्बरनदी में स्नान करके
नित्योपासना के लिए तैयार होते;
और देखा—वैदूर्य-महागिरि, इन्द्रनील समतल,
हीरक-पुष्प-शोभित वृक्षवृन्द।

इस प्रकार कल्पनातीत भाँति-भाँति के दृश्य
मार्गभर में देख-देख मै बहुत प्रसन्न हुआ।
अब छिप गया मार्ग एकाएक, समझ में कुछ न आया।
कल्पवृक्ष के पुष्पो से वह आस्तरित था।
इन्द्रनील गिरि पर हाथ टेक मै खड़ा हो गया—
आगे क्या करूँ सोच भी न सका।
कुछ जान नही पाया। मोह-मूर्छा से बाधित हो स्तब्धप्राय खड़ा रहा।

* * *

चौक कर मै जागा। भूत-प्रेतो के
अट्टहास सुनकर भय से चारों ओर देखा।
असंख्य सिंहो के आरव के समान
गर्जन करने वाला जल-प्रपात देख कर मै डर गया।
घोर कानन के भ्रम से मै कॉप उठा।
गहन अन्धकार से मै त्रस्त हुआ।
टूट पड़ेगी ऐसी दीखनेवाली शिलाएँ

यट्टुङ्ङमेलोट्टेटटमुयर्न्नुकाणाकुन्नू
इरुण्ट मेघजाल दिङ्मुखं करुप्पिच्चू।
प्रचण्ड जगत् प्राणन् लोकत्ते विरप्पिच्चू।

* * *

भंगियिल् केल्क्काकुन्नू मंगलध्वनि दूरे,
रंगमो मारी, रौद्रभावङ्ङळ् मरञ्ञुपोयु।
वानत्तिन् कल्कवाडमोन्नोडे तुरन्निता
काणायितिन्द्रोपलसुन्दरं विष्णुपदं।
अन्तमट्टाकाशत्ते कविञ्ञुकिडप्पतिल्
पन्तुपोल् चाञ्चाडुन्नु सूर्यनुं शशांकनुं।
पूविरिच्चतुपोले शोभिप्पू तारापथ,
देविकळ् कळिय्कुन्नोरारामं पोलाय् वानं।
वार्मषविल्लां नल्ल भासुरांबर चार्त्तु।
व्योमत्तिल् कण्टू दुग्धवारिधि फेनं पोले।
मन्दमाय् वरुवतु वानवस्त्रीकळ् रत्न-
स्यन्दनङ्ङळिल् दिव्यमन्दारमाल्यं चूडि।
चामरं वीशीडुन्नुण्टारथङ्ङल्कु मीते
कोमलहंसाळिकळ् पक्षङ्ङळ् विरिच्चहो।
आ नतांगिकळ् मीट्टुं वीणातन्त्रिकळ् शीत-
भानुविन् करजालं, गानमो सुधावर्ष।
आश्चर्यपरतन्त्रन् कण्मिषिच्चाविश्वास
वाच्चुञान् नोक्कुम्पोषो कण्टतेन् कट्टिल् मात्र।
पूनिलावाले तीर्त्त गोलोकं मरञ्ञु पोय्
पूषियाय् तीर्न्नितितिन् पुञ्चिरिप्रासादङ्ङळ्।

का. मा. पणिक्कर्

दोनो ओर ऊँची-ऊँची खड़ी थी।
काले मेघजाल ने दिगन्त को काला बना दिया।
प्रचड जगत-प्राण ने सारे संसार को कॅपा दिया।

* * *

बहुत दूर से सुन्दर मंगल-ध्वनि सुनाई दे रही है।
रंग बदल गया, रौद्रभाव अप्रत्यक्ष हो गया।
आकाश के शिला-कपाट सहसा खुल गये
और यह इन्द्रोपल सुन्दर विष्णुपद दिखाई दिया।
अनन्त आकाश से भी अधिक व्यापक इसमें
कंदुक जैसे सूर्य और शशि झूम रहे है।
तारा-पथ पुष्पास्तृत जैसा शोभित हो रहा है।
आकाश देवियो का क्रीडोद्यान जैसा दिखाई दिया।
इन्द्र धनुष रूपी सुन्दर अम्बर पहने
व्योम पर दुग्धवारिधि के फेन जैसी दिखाई दीं
धीरे धीरे आती हुई देव-बालाएँ—
रत्न-स्यंदनों में बैठी, दिव्य मन्दार-माल्य धारण किये।
उन रथों पर चॅवर डुला रही हैं
सुकुमार हंसावली पख फैला कर।
देव-सुन्दरियॉ बजा रही हैं वीणा
जिनके तत्र हैं शीतभानु के कर-जाल
और गान तो सुधा-वर्षा ही है।
आश्चर्यविवश होकर, ऑखे खोल कर, अविश्वास
के साथ जब मैने देखा तो सामने मेरी खाट ही दिखाई दी।
श्वेत चन्द्रिका-निर्मित गोलोक तो तिरोहित हो गया
और धूल बन गया उसकी मुसकराहट से बना प्रासाद।

का. मा. पणिक्कर

मुटन्तन् कुरुक्कन्मार्

तिमूरिन्टे कोटिनिषलिनाल् भय
विमूढ "मध्येष्य" विर्च्चुनिल्कवे,
चमूसमूहत्तिन् समूढगर्वमां
चरणपातत्ताल् चतञ्ञुपोकयाय्
किषक्कन् खण्डत्तिन् पनिनीर्प्पून्तोप्पे
न्नषकिनालेङ्ङु पुकळ् पोङ्ङुं पेरष्या

(रण्टु)

करुत्त मुन्तिरिप्पषङ्ङळ् आन्नाटि्टन्-
करय्केषु मरनिर तन् मर्मरं,
जपमाला कैय्यिलुलयुं "सूफिकळ्
प्रपञ्चनं चेय्युं जगन्मिथ्यावादं,
तटुप्पतेङ्ङिने मनुष्य चेन्नायकळ्
नेटुवाळिन् नावु कोतियाल् नीट्टुम्पोळ्?
विर्च्चुपोय् "शाह" तन् किरीटरत्नवुं
करुकप्पुलिले हिमकण पोले !

(मून्नु)

पतिव्रतकळ् तन् कषत्तिलेप्पोन्नु-
मतिलुं रम्यमां कुलीनमानवुं
पुरुषरक्तङ्ङळ् पुरण्ट कैकळ् तन्
परुषशैलियाल् परिञ्ञु पोकयाय्
ननयात्त कण्णो, कविळो पाषुकुन्त-
मुनकळेल्कात्त मुलत्तटङ्ङळो
निणत्तिल् मुङ्ङात्तोरुडुपुडवयो

लँगड़े सियार

तैमूर की पताका की छाया से भयभीत होकर
विमूढ बना मध्य एशिया जब कॉप रहा था,
तब चमू-समूह के मूर्खतापूर्ण और मदमत्त
पाद-पतनो से कुचला जा रहा था—
"पूर्ण-खण्ड का गुलाब-बाग" नाम से
अपने सौन्दर्य के कारण विश्व-विख्यात पारस।

द्वितीय

श्यामल द्राक्षाफलो से समलंकृत सरिता-तटवर्ती
वृक्ष-पंक्तियो के मर्मर स्वर,
और जप-माला फेरनेवाले सूफियो द्वारा
प्रचारित जगन्मिथ्यावाद,
कैसे रोक सकते हैं मनुष्य रूपी भेड़ियो को,
जब वे अपनी तलवार रूपी जिह्वा लालच के साथ लपलपाते हैं?
शाह के किरीट-रत्न भी कॉप उठे,
मानो दूर्वादल के हिमबिन्दु हो!

तृतीय

पतिव्रताओ के सुवर्ण-हार
और उनसे भी अधिक मनोरम मान-मर्यादा
उनके पुरुषो के रक्त से सने हाथो के
घोर कृत्यो से नष्ट होने लगी।
अश्रुहीन नयन वा कपोल और
खड्ग-धार से अक्षत स्तनतट अथवा
रक्त में न डूबे हुए वस्त्र

क्षणत्ताला नाट्टिलवशेषिक्कातायू !
कोटु तिर पोले कुतिच्चेरुं गर्व-
चटुलमां पटकुतिरकळाले
नटुङ्ङिप्पोयू राज्य, मरणत्तिन् चुषि-,
नटुविल् पेटटपोल् करङ्ङिदिक्चक्र ।

(नालु)

ओरु कवियुटे शवकुटीरत्ति
न्नरुकिलक्कोल्ळत्तलवनेत्तवे,
कटिञाण् वेट्टिच्चु पिटिच्चुकोण्टवन्
करिंकुतिरये यटक्किनिर्त्तिनान् ।
इटिवाळु कालिल् कडुं काटटमार्न्न
पटुकूटटन् रक्त मषमुकिल् पोले
उलकिने इटटु विरप्पिकुन्नोरा-
खलन्टे दर्शनं सहिप्पतेङ्ङने;
मरणत्तिन् द्दढस्वयंग्रहाश्लेष-
करनिलीननायू कषिञ्ञालुं कवि ?
भयमारियात्त कविमुखत्तुनि-
न्नुयर्न्नु पोल् ञ्ञेङ्कु निशितमां गान !

(अञ्चु)

"नर रक्तात्तिल् कूटि यूळियिट्टाह्लादिक्कु
नरक च्चेकुत्ताने ! नी चरित्रत्तिन् शापं !
पुकपोल् व्यापिक्कुन्नू दुर्गन्धं वीशु निन्टे
पुकळिन् करुप्पेङ्ङुं श्वासिक्कु श्मशानमे !
केवलं पुषक्कळ् कान्निलियोक्कयुं तीन्नों-
रावणक्कु पोल् दीनदर्शनं एप्या खण्डं ।

एकदम उस देश मे निःशेष हो गये।
भयानक लहरो के जैसे लपकनेवाले
मदमत्त युद्धाश्वो से
देश चौक उठा। मृत्यु-गर्त में
गिरा जैसा दिक्चक्र घूमने लगा।

चतुर्थ

एक कवि की कब्र के पास जब वह
डाकू-नेता (तैमूर) पहुँचा
तब लगाम खीच कर उसने
अपने काले घोड़े को हठात् खड़ा कर दिया।
विद्युत् रूपी असि और चरणो में तूफ़ान
लिए भीषण रक्त-वर्षा करनेवाले मेघ के समान
समस्त विश्व को कँपा देने वाले उस भयानक
दुष्ट का दर्शन कैसे सहे कवि—
मृत्यु के स्वयं-ग्रहाश्लेष के करो मे
विलीन हो जाने के बाद भी?
भय को न जाननेवाले कवि के मुख से भी
मन को सिहरा देनेवाला तीक्ष्ण गान निकल पड़ा—

पंचम

"नर-रक्त मे डुबकियाँ लगा कर आह्लादित होने वाले
"हे नरक के शैतान! तुम इतिहास के अभिशाप हो!
"धुआँ जैसी सर्वत्र व्याप्त हो रही है दुर्गन्ध फैलानेवाली तुम्हारी
"कीर्ति की कालिमा, हे श्वासवान श्मशान!
"जिसके सब पत्ते कीड़ो ने खा कर नष्ट कर दिये हो
"उस एरण्डक के जैसा एशिया-खंड दीनदर्शन हो गया है।

वीरनो, छीः नी अधार्मिकमां युद्धत्तिन्टे
चोर चिन्तुं निन् कैवाळ् काणुंपोळरच्चुपों ।
सटकळ् विटर्त्तिय केसरिप्रवरन्मार्
स्फुटपौरुषं मुन्पु संचरिच्चतां दिक्किल्,
मुटन्तन् कुरुक्कन्मारोरियिट्टार्कु काष्च
तटयान् कालत्तिन्टे कैय्यिनिल्लेन्नो नीळ ?

(आरु)

चरित्र वीथियिल् तिमूरोरु वेरुं
करियिल पोले कोषिञ्ञलिञ्ञुपोय्,
कोलयुं कोळ्ळयु नटत्तुं साम्राज्य-
क्कोति मात्रं वेषं पुतुक्कुन्नू नित्य !
मुरिवुणक्कुन्नू मुरिवुण्टाक्कुवा-
नरिवु तेटुन्नितरिविल्लाताकान् !
निवर्न्न कालिन्मेल् नटक्कुमिन्नत्ते
श्शव क्कोतियर्कु मुटन्ताणात्माविल्
अवरोरियिट्टु नयप्रस्तावन-
यवसानिक्कुमा प्पकल् पुलर्न्नोकिल् !

जी. शंकर कुरुप्पु

"छिः! तुम वीर हो! अधार्मिक युद्ध मे
"रक्त बहानेवाला तुम्हारा करवाल देख कर घृणा होती है।
"सटाएँ जृंभित किये हुए केसरी-प्रवीर
"जहाँ पहले स्फुट-पौरुष होकर विचरण करते थे
"वहाँ लँगड़े सियारो के हुआ-हुआ कर विचरण करने के दृश्य को
"रोकने के लिए क्या काल के हाथ काफी लम्बे नहीं हैं?"

षष्ठ

इतिहास-वीथी में तैमूर एक
सूखे पत्ते का जैसा गिर कर सड़ गया;
हत्या और डकैती करवानेवाली साम्राज्य-लिप्सा
ही प्रतिदिन नया नया वेष बदलती जाती है।
घाव को सुखाते हैं अधिक घायल करने के लिए,
ज्ञान ढूँढते हैं ज्ञान को नष्ट करने के लिए।
सीधे पैरों पर चलनेवाले आज के
शव-लोभियो की आत्मा लँगड़ी है।
काश! इनके हुआए नय-प्रस्तावो का
अन्त करनेवाला प्रभात आ जाता!

जी. शंकर कुरुप्पु

वीरनो, छीः नी अधार्मिकमां युद्धत्तिन्टे
चोर चिन्तु निन् कैवाळ् काणुंपोळरच्चुपों।
सटकळ् विटर्त्तिय केसरिप्रवरन्मार्
स्फुटपौरुषं मुन्पु संचरिच्चितां दिक्किल्,
मुटन्तन् कुरुक्कन्मारोरियिट्टार्कु काष्च
तटयान् कालत्तिन्टे कैय्यिनिल्लेन्नो नीळ ?

(आरु)

चरित्र वीथियिल् तिमूरोरु वेरुं
करियिल पोले कोषिञ्ञलिञ्ञुपोय्,
कोलयुं कोळ्ळयुं नटत्तुं साम्राज्य-
क्कोति मात्रं वेषं पुतुक्कुन्नू नित्यं !
मुरिवुणक्कुन्नू मुरिवुण्टाक्कुवा-
नरिवु तेटुन्नितरिविल्लाताक्कान् !
निवर्न कालिन्मेल् नटक्कुमिन्नत्ते
श्शव क्कोतियर्कु मुटन्ताणात्माविल्
अवरोरियिट्टु नयप्रस्तावन-
यवसानिक्कुमा प्पकल् पुलर्न्नोकिल् !

जी. शंकर कुरुप्पु

"छिः ! तुम वीर हो ! अधार्मिक युद्ध मे
"रक्त बहानेवाला तुम्हारा करवाल देख कर घृणा होती है।
"सटाएँ जृंभित किये हुए केसरी-प्रवीर
"जहाँ पहले स्फुट-पौरुष होकर विचरण करते थे
"वहाँ लँगडे सियारो के हुआ-हुआ कर विचरण करने के दृश्य को
"रोकने के लिए क्या काल के हाथ काफी लम्बे नहीं हैं?"

षष्ठ

इतिहास-वीथी में तैमूर एक
सूखे पत्ते का जैसा गिर कर सड़ गया;
हत्या और डकैती करवानेवाली साम्राज्य-लिप्सा
ही प्रतिदिन नया नया वेष बदलती जाती है।
घाव को सुखाते हैं अधिक घायल करने के लिए,
ज्ञान ढूँढते हैं ज्ञान को नष्ट करने के लिए।
सीधे पैरो पर चलनेवाले आज के
शव-लोभियो की आत्मा लँगड़ी है।
काश ! इनके हुआए नय-प्रस्तावो का
अन्त करनेवाला प्रभात आ जाता !

जी. शंकर कुरुप्पु

ओरु पुवु

परयुन्नू कवियोटाय्
पाञ्जुवरुं पोन् किरणं,
"मानत्तिन्नतिर विट्टी-
ञानित्थं वेगत्तिल्
अत्र कोतिच्चित्रकुति-
च्चेत्ति वरु नेरत्तिल्
एन्ने विळर्प्पिकुन्नू
कण्णिलिरुट्टेट्टुन्नू
मन्निलेयी ज्जीवितमां
पुण्णिलेषुं वैरूप्यं
ऊषियिल् ञान् मटटोन्न-
लुटलेषुवोरुळ्ताप।"

परयुन्नू कवियोटाय्
पारिवरुंपुलरवातं;
"मानत्तिन् वनिविट्टी
ञानित्थं वेगत्तिल्
अत्र तकन्नांशु वळ
न्नेत्तिवरुं नेरत्तिल्
एन्ने विराप्पिकुन्नू
एन्ने वेरुप्पिक्कुन्नू
मन्निलेयीज्जीवितमां
पुण्णिलेषु दुर्गन्धं।
ऊषियिल् ञान् मट्टोन्न-
लुषरिटुवोरुच्छ्वासं।"

एक फूल

कवि से कहती है
दौड कर आनेवाली सुवर्ण-किरण—
"आकाश का आवास छोड़ कर
"मै इतने वेग से
"लालच के साथ छलॉगे भरती हुई
"जब आती हूँ तब
"मुझे पाण्डुर बना देता है
"मेरी ऑखो मे अधेरा भर देता है
"भूमि के जीवन रूपी
"व्रण का वैरूप्य।
"इस भूमि पर मै और कुछ नही हूँ—
"केवल मूर्तिमान सन्ताप!"

कवि से कहता है
लहराता हुआ आनेवाला प्रभात-पवन—
"आकाश की वनस्थली छोड़ कर
"मै इतने वेग से
"थक कर और आशा सँजो कर
"जब पहुँचता हूँ तब
"मुझे कँपा देती है
"बहुत घृणा पैदा करती है
"भूमि के जीवन रूपी
"व्रण की दुर्गन्ध।
"इस भूमि पर मै और कुछ नही हूँ—
"केवल एक आकुल उच्छवास!"

परयुन्नू कवियोटाय्
पारिवरु वर्षकणं;
"मानत्तिन् मटि विट्टी-
ञ्ञानित्थं वेगत्तिल्
"अत्र किळर्त्तुल्लु कुळु
त्तेंत्तिवरुं नेरत्तिल्,
एन्टे मन वाट्टुन्नू
चुण्टिलरप्पेट्टुन्नू,
मन्निलेयिज्जीवितमां
पुण्णिलेषुं मालिन्यं
ऊषियिल् ञान् मटटेन्ता-
णून्निंडुवोरश्रुकणं।"

कवियोती—"स्नेहितरे!
काणुविनी वन पुष्प
रञ्जिप्पू नल्चिरियाल्
रश्मिक्कुं सौन्दर्यं;
चिन्निवरुं वासनयाल
तेन्नालिनु पुतुवीर्यं;
उळ्ळोक्कुं तेनाल् नीर-
तुळ्ळिक्कु माधुर्यं!

"जीवितसौभाग्यत्तिन्
देवतयी पू निल्के
दुस्सहमो वैरूप्यं?
दुर्गन्धं? मालिन्य?"

पैलोप्पळ्ळी श्रीधर मेनोन्

कवि से कहती है
गाती हुई आनेवाली वर्षा की बूँद—
"आकाश का अंक छोड़ कर
"मै इतने वेग से
"उन्मेष के साथ, शीतल हृदय से
"जब पहुँचती हूँ तब
"मेरे हृदय को सुखा देता है
"अधरो में घृणा ढाल देता है
"भूमि के जीवन रूपी
"व्रण का मालिन्य।
"भूमि में मै और क्या हूँ ?
"केवल झरता हुआ एक अश्रु-कण !"

कवि ने कहा—"मित्रो,
"देखो इस वन-पुष्प को
"भर देता है अपनी हँसी से
"रश्मि में भी सौन्दर्य,
"फैलते हुए सौरभ्य से
"पवन में भी नया वीर्य;
"अन्तस्तल के मधु से
"जल-बिन्दु में भी माधुर्य।"

जीवन-सौभाग्य का
देवता यह फूल जब तक है—
दुस्सह है यह वैरूप्य,
यह दुर्गन्ध, यह मालिन्य ?

पैलोप्पल्ली श्रीधर मेनोन्

नक्षत्रङ्ङ्ळुटे पिन्नाले

वेळ्ळप्पाल्चुणङ्ङुकळ् पुळ्ळिकुत्तिय मारुं
तळ्ळिच्चु नीलाकाश रात्रियिलुरङ्ङुम्पोळ्,
मानत्तु कण्णु नट्टु पातियुं मरविच्च
मातिरि निल्कारुण्टा साहित्यप्रवाचकन् ।
अन्तरीक्षत्तिन नेञ्चिल् कैविरलोटिच्चुंको-
ण्टङ्ङने नखक्षतमेल्पिक्कुमद्देहत्ते,
कण्टुकाणणं निङ्ङळ्जीवितभारत्तिन्टे
वण्टियु वलिच्चुकोण्टावषि पोकु पोक्किल् !
उरुळुं चक्रङ्ङळ् तन् शब्दमो, पतयुन्न
करळिल् विङ्ङिप्पोङ्ङुं निङ्ङळ् तन् गानङ्ङळो
श्रद्धिक्किलुद्देह,—(मी क्षणिकप्रपंचत्तिन्
मुग्धतय्क्केङ्ङाणुळ्ळता सनातनमूल्यं ?)
कालत्तिन् तलोटलिलहुग्रप्रतिषेध
ज्वालयिल् कुरुत्तितळिट्टतां सस्कारङ्ङळ्,
चङ्ङिकलेअरम्पुकळ् तङ्ङळिल् कोळुत्तिको-
ण्टङ्ङिने युगङ्ङळे सृष्टिच्च सस्कारङ्ङळ्,
नैतिषयटुप्पिच्च जीवितक्रमङ्ङळिल्
पैतिराङ्ङिय मिषिनीरलकलेप्पटिट,
अवयिल् विटरुन्न मानवप्रयत्नात्तिन्
नवचैतन्यं वीशुं पूंकुलकलेप्पटिट,
श्रद्धिकुकिलुद्देहं, कविया,—णाकाशत्तिन्
मुग्धभावङ्ङळ्क्कुले काणू शाश्वतमूल्यं ?
आनिन्नाळोरु घोषयात्रयिल् नाटिन्नभि-
मानवुं स्वप्नङ्ङळुं विटरुं मिषियोटे,
एन चुण्टिल् मनुष्यन्टे मुक्तिगाथयुमायि

तारों के पीछे

सर्वत्र सेहुओं की बिन्दियाँ लगे हुए वक्षस्थल
को आगे करके वह नील आकाश, रात्रि को जब सोता है
तब उस गगन में आँखे गडा कर, अर्ध स्तब्ध बना
खड़ा हुआ करता है वह साहित्य-प्रवाचक !
अन्तरिक्ष के वक्षस्थल पर अंगुलियाँ चला कर
वैसे नखक्षत लगानेवाले उस महानुभाव को
आपने देखा होगा—जीवन-भार की
गाड़ी खींच कर उस मार्ग पर जाते हुए।
घूमते चक्रो का चरमर अथवा फेनायित हृदयो से
उमड़ कर निकलनेवाले आपके गीत
उसके ध्यान को आकर्षित नही करते—इस
क्षणिक प्रपंच की मुग्धता का उसकी दृष्टि में क्या सनातन मूल्य है ?
काल के लाड़-प्यार में नही, उग्र प्रतिषेध रूपी
ज्वाला में अंकुरित होकर पल्लवित हुए संस्कार,
हृदय की शिराओ को परस्पर शृंखलित करके
युग-युगान्तर की सृष्टि करनेवाले संस्कार
बुन कर—ताना-बाना मिला कर—निर्मित जीवन-क्रम में
बरसे हुए आँसुओ की लहरो के बारे में,
उनमें विकसित होने वाले मानव-प्रयत्नों की
नव-चैतन्य फैलानेवाली पुष्प-मजिरियो के बारे में,
वह ध्यान नही देगा। कवि है। आकाश के
मुग्धभावो में ही शाश्वत मूल्य देख सकता है न !
उस दिन एक बार मै एक जुलूस में, देश के
स्वाभिमान तथा भविष्य के स्वप्नो से विस्फारित-नेत्र,
और अपने अधरो में मनुष्य की मुक्तिगाथा लेकर

सञ्चरिच्चप्पोळ् दूरे कण्टु ञानद्देहत्ते।
एन्नेर्कु कैय्यु चूण्टि जल्पिच्चुपोलद्देहं :—
"एन्निनि इवरोक्के शाश्वतमूल्यं नेटुं ?"
ञान् पोट्टिच्चिरिच्चुपोय् ;—जीवितस्पन्दङ्ङळिल्
नाम्पिटु सगीतमकगानमेखलकळे,
मानवप्रयत्नत्ते प्पाट्टु पाटिक्कानुळ्ळ
मामक गानात्मक काव्यनिम्नगकळे,
नाषिमण्णुं कोण्टोन्नु तटयान् भ्रमिक्कुमा-
नाषिकवट्टत्तिन्टे कावल्कारने काण्के !
कवियाणद्देहवुं, कालत्तेत्तळ्ळिच्चिटान्
कटिञाणिळक्किक्कोण्टविटे काणामेन्नुं।
एन्ननुकम्पकोन्नु चिरिक्कान् मात्रं तोन्नी :—
"नन्नु, निङ्ङळेयोक्के रक्षिच्चुकोळ्ळु दैवं—"
"नूरोळं युगङ्ङळाय् कालुकळ् नीट्टिक्कुत्ति
केरिय मनुष्यनाणेन्टे शाश्वतमूल्य।
निङ्ङळक्कताकाशन्तन्नव्यक्तस्थलिकळिल्
निन्नोलिवीशुं कोच्चुपूमिन्नल् कोटि मात्रं !"

वयलार रामवर्मा

जब चल रहा था, तब, दूर मैने उसको देखा।
मालूम होता है, मेरी ओर अंगुलि-निर्देश करते हुए उसने कहा—
"ये सब कब शाश्वत मूल्य को पा सकेंगे?"
मै खिलखिला कर हँस पड़ा—जीवन-स्पन्दनो में
अंकुरित होनेवाली सर्गात्मक गान-मेखलाओं को,
मानव-प्रयत्नो को गीत गवानेवाली
मेरी गानात्मक काव्य-निम्नगाओं को,
एक पाव मिट्टी से रोकना चाहनेवाले उस
घटिका-यंत्र के चौकीदार को देख कर!!
वह भी कवि है—काल-चक्र को बॉध रखने के लिए
लगाम हिलाता हुआ सदा वहाँ दिखाई देता है!
मेरी अनुकम्पा को एक बार हँस देना ही सूझा—
"अच्छा है! ईश्वर ही तुम्हारी रक्षा करे!
"शत-शत युगो से कदम बढा बढा कर
"चढता जानेवाला मनुष्य ही मेरा शाश्वत मूल्य है।
"तुम्हारे लिए तो वह आकाश के अव्यक्त स्थलो से
"प्रकाश दिखानेवाली छोटी-सी कोमल विद्युल्लता मात्र है!"

वयलार रामवर्मा

निश्वासङ्ङळ्

प्राणनायक, भवानेतोरुदिक्किल् गूढं
वाणरुळुन्नु तन्टे दासिये स्मरिक्काते ?
एन् कण्णिल् निन्नीवण्ण मेन्टे लोकत्तिन् वार्पू-
न्तिकळे मरय्कुन्न कारमुकिल्निरयेतो ?

अनिशमनेक पेरङ्ङये पूजिप्पानु-
ण्टेनिय्कौ परदैवमविटुन्नोराळ् मात्रं ।
मेच्चात्तिलविटेय्काय् तन्नेयिङ्ङोरुक्किय
पिच्चकप्पूच्चोण्टिता निन्नंग संगालाभाल्,
चन्दनद्रवं कूटे कूटे आन् ताळिक्किलु
मन्दिच्चुवाटीटुन्नू मन्मनस्सिनोटोप्पं ।
क्षिप्रमेन् केश चीकिक्केट्टुम्पोळ्, वेरुतेय-
ल्लपाल्पं करञ्ञितेन् कैवळकळे ! निङ्ङळ
ड्प्पानिनीर्पूवतिल् कनिञ्ञुचूडिटकुवा-
निप्पोषुमेषुन्नल्ळीलप्पोन्नु तृक्कय्यय्यो !

तेन्नले ! मन्त्रिय्कुन्नतेन्तु नी, लीलोद्यान-
तन्निले तळिर्च्चोटिपटर्प्पिलोरोन्निलु,
तेन् कुळिरलर् वल्लिक्केट्टुकळिलुं, मदि-
च्चाणूकुयिलुकल् पाडुंमाकन्दवनात्तिलु,
पोन्पोळयाणि नल्किप्पोय्कयेचमयिक्कु
चंपकत्तोप्पिङ कलु तोटिनेन्, कण्टीलेन्नो ?
व्यर्थमेन्निनवय्यो ! निन् पक्कलेळ्पिच्चिट्टुं
एत्तेण्टुमिटत्तेतीलेन्नुटे निश्वासङ्ङळ् ।

काण्मतेप्पोषेन् कण्णाल्, कान्त ! निन् मृदुहासं,
प्रेममां वाटाप्पूविन् पेलवसमुल्लासं,

निःश्वास

हे प्राणेश्वर, आप कौन-सी दिशा में छिप कर
रहते हैं, अपनी दासी का स्मरण किये बिना ?
मेरी आँखो से इस प्रकार मेरे संसार के मोहन
चन्द्र-बिम्ब को छिपानेवाली मेघमाला कौन-सी है ?

आपकी दिन-रात पूजा करनेवाले अनेक लोग
हैं, पर मेरे तो इष्टदेव आप अकेले ही हैं।
विशेष रूप से आपके लिए ही बनाया हुआ
चमेली का गुलदस्ता आपका अग-संग न पाने से
बार-बार चन्दन-द्रव छिड़कने पर भी
खिन्न हो कर मेरे हृदय के साथ ही मुरझा जाता है।

जब मै अपने बाल सॅवार रही थी तब
मेरी चूड़ियो ! तुम थोड़ा-थोड़ा रो रही थीं, सो वृथा नही,
क्योकि यह गुलाब का फूल जूड़े में प्यार के साथ लगाने के लिए
वह श्रीहस्त अब तक पधारा नही।

हे पवन ! तुम मन्द स्वर में क्या बोल रहे हो ? "लीलोद्यान
के एक-एक सुन्दर लता-विटप में,
मधुमय शीतल पुष्पोंवाले लता-कुंजो में,
मादक वन में जहॉ पुस-कोकिल मदमत्त होकर गान करते हैं,
और सुवर्ण-सम्पुट-आभूषण देकर पुष्करिणी को सजानेवाले
चंपकवन में भी मैने खोजा, पर मिले नहीं"—ऐसा
हाय ! मेरी सब आशाऍ व्यर्थ हो गई ! तुम्हारे हाथ सौपने पर भी
मेरे निःश्वास उद्दिष्ट स्थान पर नही पहुँचे !

हे कान्त ! अपनी ऑखो से तुम्हारा मृदुहास मै कब देखूँगी ?
वह मृदुहास प्रेम रूपी सदा-प्रफुल्ल पुष्प का मोहन समुल्लास है

सुन्दरविशुद्धमां सत्वसंपात्तिन् चेरु-
कन्दलं ? अतोन्नत्रेमज्जीवितत्तिल् पाटे
तूवेळ्ळि पूशीट्टुन्नू—हा शान्तमितो वेरुं—
धावळ्याक्रिय—साक्षालमृते निरय्कुन्नू ।

वळ्ळत्तोळ्

और सुन्दर विशुद्ध सत्त्व-सम्पत्ति का छोटा-सा अकुर है।
वही मेरे सारे जीवन में
चॉदी का लेप लगाता है—
नहीं, यह तो केवल धावल्य-क्रिया हुई,
वह तो सचमुच अमृत ही भर देता है।

वळ्ळत्तोळ्

विश्वचलनं

तीरङ्ङळे फलपूर्णङ्ङळाक्कुवान्
नीरं जनङ्ङळ्कु नल्किप्पुलर्त्तुवान्
धीरमाय् क्लेशङ्ङळेल्लां सहिच्चुको-
ण्टोरो निमिषवुं पायुन्नु वाहिनी ॥

तन् चलनत्ताल्, खरादित्यरश्मियिल्-
त्तङ्ङुन्न तापं शमिप्पिच्चु नाळ्क्कुनाळ्
जंगमाजगमलोकं चलिप्पिच्चु
मगल नीळेत्तळिप्पू सदागति ॥

कूरिरुळ्च्चार्तुमाय् सन्धियिल्लात्तोरु
पोरटिच्चार्तरेक्कात्तु नक्तं दिवं
तूवेळिच्चं नल्कि निल्पू, जगत्तिन्टे
सेवकोत्तंसङ्ङळीसूर्यचन्द्रादिकळ् ॥

ऊषितन्नुळ्ळं कुळुर्प्पिच्चु, तन्कळि—
त्तोषियाय् कलिपच्चु, सम्मानमेकुवान्
पाषुनुरमालयां वेर्पुमायेप्पोषुं
पाटु पेट्टीडुन्नु नीडुटट सागरं ॥

इम्महाशक्ति स्वरूपङ्ङळोक्केयुं
कर्मकाण्डात्तिन् रहस्यं तेळिक्कवे,
कण्मङ्ङिनिल्कुन्न मूढने काक्कुन्न
धर्मदैवङ्ङळेङ्ङेन्नरिञ्ञीलञान् ॥

विश्व की गति

तटों को फलपूर्ण बनाने के लिए,
जल प्रदान करके लोक का पालन करने के लिए,
सब क्लेशो को धीरता से सहन करती हुई
वाहिनी प्रति-निमिष दौड़ रही है।

अपनी गति से आदित्य की तीव्र किरणो की
ताप-शक्ति का शमन करके, दिन प्रति दिन
समस्त चराचर लोक को चलाता हुआ
सदागति पवन सर्वत्र मंगल फैलाता है।

घोर अंधकार के साथ बिना संधि किये,
निरंतर युद्ध करते हुए, दुखियो को सँभालते हुए, दिन रात
सुन्दर प्रकाश देते हुए खड़े रहते हैं—जगत के
सेवकोत्तंस, सूर्य-चन्द्र आदि।

भूमि के हृदय को शीतल करता हुआ, उसे अपनी
बाल्यसखी मान कर पारितोषिक देने के लिए,
फेनरूपी स्वेद से युक्त, सदा
प्रयत्नशील रहता है महासागर।

ये महाशक्ति स्वरूप सब
कर्मकाण्ड का रहस्य जब स्पष्ट कर रहे हैं, तब
अंधे बन कर खड़े रहने वाले मूर्ख के रक्षक
धर्मदेव कौन-कौन हैं—मै नहीं जानता।

आलस्य द्वारा हाथ बढा कर सम्मुख रखे गये
थाल में क्या है—शून्यता के सिवा ?
परिश्रम में दैव और भव्य मिल जाता है।
उसके बराबर श्रेष्ठ इस संसार में और क्या है ?

वेण्णिकुलम् गोपाल कुरुप्पु

संस्कृत

चयन : सर्वपल्ली राधाकृष्णन्
के. ए. एस. ऐयर

अनुवाद : शान्तिकुमार नानूराम व्यास

कवि-नाम	कविता
आर. एंटोइने	छात्र-संगीत
एन. भीम भट	कश्मीर का एकीकरण
कविशेखर राजशेखर	शरद्-वर्णन
के. वी. कृष्णमूर्ति शर्मा	श्वान-दूत
के. वी. सुब्रह्मण्य शास्त्री	मनःसन्देश
गौरीप्रसाद चुनीलाल झाला	मातृत्व-भावना
जयनारायण रामकृष्ण पाठक	भारत-कथा
पी. नारायण नायर	कावेरी का तटवर्ती प्रदेश
बहादुरचन्द छाबड़ा	शिव को उलाहना
भट्ट मथुरानाथ शास्त्री	संस्कृत व्याकरण
मथुराप्रसाद दीक्षित	गान्धि-विजय नाटक
माधव श्रीहरि अणे	मन्मथ-संवत्सर का स्वागत
रुद्रदेव त्रिपाठी	जागरण-गीत
विद्याधर शास्त्री	संस्कृत में एक नवीन काव्य की आवश्यकता
वी. गोपाल आयंगर	यदि मैं भारत-सम्राट् बन जाऊँ
वे. राघवन	कालिदास की प्रिय वस्तु

छात्र-सङ्गीतकम्

तरुणान् नवजीवनहर्षरतान्
बलिनो विजयोत्सवविश्वसितान् ।
कुशलान् गुणशास्त्रविचारपरान्
भगवान् सतत प्रणतानवतु ॥

वपुषां स्थिरता प्रबलीक्रियतां
मनसां ग्रहणं पृथुतां लभताम् ।
सुहृदां प्रणयाद् हृदयं ज्वलतु
गुरुभक्तिरपि प्रतिभातु नये ॥

कुलमार्गमनुप्रचलाम सदा
जनिभूमिहिते समवेतबलाः ।
भुवनेश्वरसेवनपूतहृदो
विहनाम तमस्तनवाम सुखम् ॥

आर. एंटोइने

छात्र-संगीत

ईश्वर उन तरुणो की सदैव रक्षा करे, जो नवीन जीवन के हर्ष से भरे हुए है, जो बलवान् हैं, जो सफलता-प्राप्ति मे विश्वास रखते है, जो कुशल है तथा जो गुणवान्, शास्त्रो का मनन करने वाले और विनम्र है।

शरीर की दृढता और प्रबल करो। मन की ग्रहण-शक्ति का विस्तार हो। सुहृदो के स्नेह से हृदय प्रकाशित हो। व्यवहार में गुरु-भक्ति को भी स्थान मिले।

हम सदा अपने कुलोचित मार्ग का अनुसरण करे। जन्म-भूमि के हित के लिए अपनी शक्ति को संगठित कर तथा भगवान् की सेवा से अपना हृदय पवित्र कर हम अन्धकार को दूर करे और सुख की वृद्धि करे।

आर. एंटोइने

काश्मीर-सन्धान-समुद्यमः

भूमौ लब्धप्रतिष्ठा विबुधपरिवृढैर्देवसंसत्समाना
पाश्चात्यैर्मुक्तकण्ठं प्रतिदिनमपि संस्तूयमाना च देवी ।
स्वातन्त्र्यं प्राप्य सर्वान्निजतनयवरानापयित्वाऽभिवृद्धि
प्राप्तामोदा समग्रं वितरतु भवतां मङ्गलं भारताम्बा ॥

स्वातन्त्र्यसमरे धीमानहिंसाकवचावृतः
शान्तिशस्त्रधरः पायाद्गान्धिदेवो जगद्गुरुः ॥

यावद्वेदोपनिषदां प्राबल्यं वर्तते भुवि ।
तावद्भारतवर्षस्य प्रभावोऽस्ति न संशयः ॥

योऽयं स्वीयतनुं मनो धनमथो सर्वं समर्प्य स्वयं
गान्धीवादपरायणो ह्यतितरां सम्प्राप्तदुःखोऽभवत् ।
देशे नायकतामवाप्य समरे सत्याग्रहे भासुरः
निश्शस्त्रो युयुधे प्रचण्डबलिभिः पाश्चात्यवीरैस्समम् ॥

अयि ! सुरनरगीते ! भारति ! क्वासि ? कामं
निजगुणनिकुरम्बैराहृताशेषलोके ।
क्षणमिह जनचित्ते त्वं कुरुष्व प्रसादं
विलसितनिजबुद्धिर्येन जायेत लोकः ॥

पक्षं स्वार्थसमीहया प्रतिदिनं संस्थापयन्ति प्रजाः
किं वैतैर्बहुभिः समस्तजगति स्वार्थो न युक्तः खलु ।
प्राणैः कण्ठगतैरपि प्रयतते यो देशवृद्ध्यै सदा
सन्मान्यस्स भुवि प्रतापमहितः तेनैव राष्ट्रोन्नतिः ॥

कश्मीर का एकीकरण

जिसे भूमि में प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी है, जो देववृन्दो से युक्त इन्द्र-सभा के समान है, जिस देवी का पाश्चात्य लोग भी प्रतिदिन मुक्त कण्ठ से स्तवन करते हैं, जो स्वतन्त्रता प्राप्त कर, अपने समस्त पुत्रो को समृद्ध कर, आनन्दित हुई है, वह भारत-माता आप लोगो को सम्पूर्ण मगल प्रदान करे।

स्वतन्त्रता के समर में अहिसा-रूपी कवच से सज्जित, शान्ति-रूपी शस्त्रधारी, बुद्धिमान् जगद्गुरु गॉधी आपकी रक्षा करे।

जब तक पृथ्वी पर वेदो और उपनिषदो की महत्ता रहेगी, तब तक भारतवर्ष का प्रभाव रहेगा, इसमें कोई सन्देह नही।

जो अपना तन-मन-धन सब-कुछ समर्पित कर तथा अत्यन्त दुःख भोग कर गांधीवाद के भक्त बने, जिन्होने सत्याग्रह-युद्ध में प्रकाशमान होकर देश का नेतृत्व ग्रहण किया और प्रचण्ड बलवान् पाश्चात्य वीरो के साथ जिन्होने निःशस्त्र होकर युद्ध किया (ऐसे हैं जवाहरलाल)।

हे देवो और मनुष्यो द्वारा स्तुति की जाने वाली भारती, तुम कहॉ हो? तुमने अपने गुण-समूह से समस्त संसार को आकर्षित कर लिया है। तुम एक क्षण के लिए लोगो के चित्त पर अनुग्रह करो, जिससे उनकी बुद्धि निखर जाय।

लोग स्वार्थ-भावना से प्रतिदिन अपने पक्ष को सिद्ध करते हैं। ऐसे लोगो के अधिक संख्या में होने से क्या लाभ? समस्त संसार में स्वार्थ (का ही प्राधान्य हो जाना) उचित नही। जो व्यक्ति प्राणो के कंठ में आ जाने पर भी देश की समृद्धि के लिए सतत प्रयत्न करता रहता है, वही पृथ्वी पर सम्मान का पात्र है, उसीका प्रताप महान् है, उसीसे राष्ट्र की उन्नति होती है।

काश्मीरभारतसमागमहृष्टचित्ताः
सर्वेऽपि पक्षकलहं प्रतिहत्य देशे।
स्वार्थं पिशाचमपहाय महात्मनेष्ट
तद्रामराज्यमधिगम्य मुदा वसन्तु॥

एन. भीम भट

कश्मीर के भारत में विलीन हो जाने से जिनका मन प्रसन्न हो गया है, ऐसे सभी लोग देश में दलगत कलह को छोड़ दें, स्वार्थरूपी पिशाच को दूर कर दें तथा महात्माजी द्वारा वांछित रामराज्य को प्राप्त करके आनन्दपूर्वक रहें।

एन. भीम भट

शरद्वर्णनम्

द्राग्गर्जयन्ती विमदान् मयूरान् प्रगल्भयन्ती कुररद्विरेफान् ।
शरत्समभ्येति विकास्य पद्मान्युन्मीलयन्ती कुमुदोत्पलानि ॥

सा भाति पुष्पाणि निवेशयन्ती बन्धूकबाणासनकुङ्कुमेषु ।
शेफालिकासप्तपलाशकाशभाण्डीरसौगन्धिकमालतीषु ॥

सखञ्जरीटा सपयः प्रसादा सा कस्य नो मानसमाच्छिनत्ति ।
कादम्बकारण्डवचक्रवाकससारसक्रौञ्चकुलानुयाता ।

उपानयन्ती कलहंसयूथमगस्त्यदृष्ट्या सलिलं पुनाना ।
मुक्तासु शुभ्रं दधती च गर्भं शरद्विचित्रैश्चरितैश्चकास्ति ॥

क्षितिं खनन्तो वृषभाः खुराग्रे रोधो विषाणैर्द्विरदा रदन्तः ।
शृङ्गं त्यजन्तो रुरवश्च जीर्णं कुर्वन्ति लोकानवलोकनोत्कान् ।

अत्रावदातद्युतिचन्द्रिकाम्बुनीलावभासं च नभः समन्तात् ।
सुरेभवीथी दिवसावतारो जीर्णाभ्रखण्डानि च पाण्डुराणि ॥

महानवम्यां निखिलास्त्रपूजा नीराजना वाजिभटद्विपानाम् ।
दीपालिकायां विविधा विलासा यत्रोन्मुखैरत्र नृपैर्विधेयाः ॥

शरद्-वर्णन

मतवाले मयूरो को कुछ-कुछ गर्जित करती हुई तथा मुर्गों और भौरो को चपल बनाती हुई यह शरद् ऋतु (लाल) कमलो को खिलाकर कुमुदों (श्वेत कमलों) और उत्पलो (नील कमलो) को विकसित करती हुई आ रही है।

गुलाब, बाण, आसन, सिन्धुवार, सप्तपलाश, काँस, सिरस, नीलोत्पल, मालती आदि के पौधो में पुष्पो का सन्निवेश करती हुई शरद् सुशोभित हो रही है।

निर्मल जल और खंजन पक्षियो वाली तथा ईख, हस, चकवो और बगुलो के समूह से युक्त शरद् ऋतु किसके चित्त को आकर्षित नहीं करती ?

मधुर स्वर वाले हंस-समूहो को लाती हुई, अगस्त्य तारे को दिखाकर जल को स्वच्छ करती हुई तथा मोतियो में शुभ्र गर्भ का आधान करती हुई शरद् ऋतु अपने विचित्र चरित्रो से शोभित हो रही है।

खुरो के अग्र भागो से साँड पृथ्वी को खोद रहे हैं, चिंघाड़ने वाले हाथी दाँतों से किनारो को तोड़ रहे हैं तथा मृग जीर्ण-शीर्ण सींगो को छोड़ रहे हैं—इस प्रकार ये लोगो को अपनी ओर देखने के लिए उत्सुक करते हैं।

जल के समान नीले आकाश में चारो ओर निर्मल प्रकाश वाली चॉदनी छिटक रही है। ऐरावत के मार्ग से (पूर्व दिशा से) दिन निकल रहा है। जीर्ण बादलों के टुकड़े पीले पड गए है।

(शरद् में) महानवमी के दिन समस्त अस्त्रो की पूजा तथा घोड़े, हाथी और योद्धाओ की आरती की जाती है। दीपावली पर उत्सुक राजाओ द्वारा विविध विलास किये जाते हैं।

व्योम्नि तारतरतारकोत्करः स्पन्दनप्रचरणक्षमा मही।
भास्करः शरदि दीप्तदीधितिर्बुध्यते च सह माधवः सुरैः॥

केदार एव कलमाः परिणामरम्याः प्राचीनमामलकमर्घति पाकनीलम्।
उर्वारुक स्फुटननिर्गतगर्भगन्धमल्लीभवन्ति च जरत्त्रपुतीफलानि।

गेहाजिरेषु नवशालिकणावपातगन्धानुभावसुभगेषु कृषीवलानाम्।
आनन्दयन्ति मुसलोल्लसनावधूतपाणिस्खलद्वलयपद्धतयो वधूट्यः॥

कविशेखर राजशेखर

आकाश मे तारो का समूह अधिक प्रकाशित हो रहा है। पृथ्वी हिलने-डुलने और चलने-फिरने के लिए उपयुक्त हो गई है। शरद् मे सूर्य की रश्मियाँ अधिक प्रखर हो जाती है तथा देवताओ के द्वारा विष्णु जगाये जाते है।

खेतो में धान पककर सुन्दर प्रतीत होता है। पुराना पका हरा आँवला बहुमूल्य हो गया है। पक जाने के कारण गिरने वाले वृक्षविशेषो के फल सुगन्धित हो रहे है, क्योकि फूटने से उनके भीतर की गन्ध प्रस्फुटित हो रही है।

किसानो के घरो के आँगन नये धानो के कणो के गिरने से सुगन्धित और सुन्दर हो रहे है। वे ग्राम-वधूटियॉ आनन्द बिखेर रही है, जिनके हाथो की चूडियॉ मूसल को उठाने के कारण झनझना रही है।

कविशेखर राजशेखर

शुनकदूतम्

कश्चिद्दीनः कनकवलयाकाङ्क्षिणीमुद्विवक्षन्
रूपोदारां कथमपि सुतां यौवने मातुलस्य।
दर्शे नक्तं धनिकसदनाद्धाटकं द्राङ्मुषित्वा
कारागारे विहितवसतिर्बन्धितो वर्षमेकम् ॥

तत्र प्रेक्ष्य स्वमपवरकं निर्मितं ग्रावखण्डैः
स्थूलस्थूलैः सुदृढकलितं लोहदण्डैः कवाटम्।
स्थानात्तस्मात्कथमपि बहिर्धावनेऽसौ निराशः
क्षुत्तृष्णाभ्यां कृशतरतनुः श्वानमेकं ददर्श ॥

तेनैवाय निजपरिभवं प्रेयसीं प्रापयिष्यन्
त्सुत्सूशब्दैः स्वकरनिहितं दर्शयन् पूपखण्डम्।
प्राप्तं मध्य द्युमणिमपि सलक्षयन् पुष्करस्य
प्रेम्णोपांशु स्वनिकटमसुं सारमेय समाह्वत् ॥

तस्य श्रुत्वा रसनजनितं निस्वनं कुक्कुरोऽसौ
मन्द-मन्दं तमभि च चलँल्लम्बयन्नात्मजिह्वाम्।
तद्धस्तात्तं विरसमपि तत् खाद्यमास्वाद्य तप्तो
धुन्वन्पुच्छं हृदि समुदितां प्रीतिमाविश्चकार ॥

विश्वस्यानां भवसि भषकाभ्यर्हितस्त्वं तिरश्चां
यत्त्वङ्गाव सपदि निगमान्प्रापिपच्छङ्करः प्राक्।
त्वत्कूटस्थस्त्रिदिवगमने पाण्डवानां सहायः
त्वामेवातो मदुपकृतये भावयेऽहं समर्थम् ॥

द्राघीयोभिस्तनुतरपदैः क्रोशषट्कं प्रतीच्यां
धावं-धावं महिषनगरीं प्राप्य तत्र स्थितायै।

श्वान-दूत

कोई दीन व्यक्ति अपने मामा की सुन्दर युवती पुत्री से, जो सोने का कड़ा चाहती थी, किसी प्रकार विवाह करने को उत्सुक था। अमावस की रात में किसी धनिक के घर से थोड़ा-सा सोना चुराने के कारण वह एक वर्ष के लिए कारागार में डाल दिया गया।

वहाँ उसने अपने को रोकने वाला एक फाटक देखा, जो पत्थर के टुकड़ो और लोहे की मोटी-मोटी सलाखो से मजबूत बना हुआ था। इससे वह उस स्थान से किसी प्रकार निकल भागने में निराश हो गया। (तभी) भूख और प्यास के कारण दुर्बल शरीर वाले उस व्यक्ति ने एक कुत्ते को देखा।

उसी कुत्ते के द्वारा अपने पराभव की कथा अपनी प्रियतमा तक पहुँचाने के लिए उसने अपने हाथ के पूए को सू-सू शब्द करके उसे दिखाया। सूर्य को बादल के बीच आया देखकर उसने प्रेमपूर्वक उस कुत्ते को अपने निकट बुलाया

उसकी जीभ से उत्पन्न शब्द को सुनकर वह कुत्ता उसकी ओर जीभ लटकाकर धीरे-धीरे चलता हुआ आया, उसके हाथ से उस नीरस खाद्य पदार्थ को खाकर वह परितृप्त हुआ और पूँछ हिलाकर अपने हृदय में उत्पन्न हुई प्रीति को प्रकट करने लगा।

हे कुत्ते, विश्वसनीय पशुओ में तुम माननीय हो, तुम्हारे ही भाव को प्राप्त करके पूर्वकाल में शंकर ने वेदो को शीघ्रता से उपलब्ध किया था। तुम्हारे ही छद्मवेश में (धर्मराज) स्वर्गारोहण के समय पाण्डवो के सहायक बने। इसीलिए मै तुम्हें अपना उपकार करने में समर्थ पाता हूँ।

पश्चिम दिशा में शीघ्रगामी लम्बे-लम्बे डगों से दौड़ते हुए तुम छः कोस पर महिष-नगरी पहुँचोगे। तब हे कुत्ते, वहाँ रहने वाली मेरी प्रियतमा

प्रेयस्यै मे कथय भविक मद्वियोगासहायै
विस्रम्भो हि प्रणयिषु शुभोदर्कहेतुर्नराणाम् ॥

प्रासादाग्रादवसितनिजाहारयोषित्कराब्ज-
प्रास्तोच्छिष्टाधिगमकलहे मुक्तकण्ठं भषद्भिः ।
कृत्वा द्वन्द्वं नगरशुनकैः प्राप्तकीर्तिः पुरस्ता-
द्धावन्दृप्तः सुहृदुपकृतेर्न प्रमत्तो भवेस्त्वम् ॥

सौधैः पूर्णमिथ च नगरीमप्रमत्तः प्रविष्टो
रथ्याः क्रामन्प्रहिणु नयन सर्वतः सारमेय ।
यावन्नामी जवनशकटा यन्त्रिणः स्यन्दना वा
चक्रस्याधः पतितमाचिरात्त्वां नयेयुः कृतान्तम् ॥

भ्राम्यन् सर्वा महिषनगरी दक्षिणस्यां दिशायां
द्रष्टासि त्वं कतिपयगृहां सारिणीतीरवीथीम् ।
तस्यां पक्वेष्टकाचितबहिर्भित्तिकं नातिदभ्र
गन्तव्य ते सदनमरुणेऽस्ताचलोर्ध्वं प्रपन्ने ॥

तस्य स्थित्वा क्षणमिव सखे वेश्मनो वेदिकायां
मत्प्रेयस्याः क्रमणजमथो मञ्जुमञ्जीरशिञ्जम् ।
श्रोत्रानन्दप्रदमनुभवन् दुर्भगस्य स्मरन् मे
तस्याः खेदापनयविधये सर्वथा त्वं यतेथाः ॥

तत्रैव त्वं निवस दिवसान् पञ्चषान् विश्रमार्थी
क्रीडन् वत्सैरपि च विशिखाचारिणीभिः शुनीभिः ।
यावच्छीघ्र मयि कथयितुं भद्रवार्ता प्रियायाः
प्रत्याधावन् पिशुनय जयं पुच्छमुत्तम्भयंस्ते ॥

के. वी. कृष्णमूर्ति शर्मा

से, जो मेरे वियोग में असहाय हो गई है, मेरी कुशल कहना। प्रेमियो पर विश्वास करना ही मनुष्यो के लिए भावी शुभ फल का सूचक है।

महलो के अग्रभाग में भोजन करती हुई महिलाओ के कर-कमलों द्वारा फेके गए उच्छिष्ट को प्राप्त करने में तुम जोर-जोर से भौकना और शहर के कुत्तो के साथ द्वन्द्व-युद्ध में कीर्ति-लाभ करते हुए आगे की ओर दौड़ जाना। देखो, अपने सुहृद् का उपकार करने में कही असावधानी न कर बैठना!

अट्टालिकाओ से भरी उस नगरी में तुम होशियारी से घुसना। रास्तो को नापते समय, हे कुत्ते, तुम चारो ओर नजर दौड़ाते रहना, जिससे ये तेज चलने वाली मोटर गाड़ियॉ या इक्के-तॉगे अपने पहियों के नीचे कुचलकर तुम्हें अविलम्ब यमलोक न पहुँचा दें।

सारी महिष-नगरी में घूमते हुए तुम सारिणी नदी के तीर पर थोड़े-से घरो वाली एक गली देखोगे। वहॉ तुम सूर्यास्त के समय उस घर में जाना, जिसकी बाहरी दीवार पकी ईटो से बनी है और जो बहुत ऊँची नही है।

उस घर के बरामदे में, हे मित्र, तुम क्षण-भर ठहरना, मेरी प्रिया के चलने से पैदा होने वाली मजीरो की मधुर झकार सुनकर तुम अपने कानो को सुख देना और मुझ अभागे का स्मरण करते हुए उसका दुःख दूर करने का पूरा प्रयत्न करना।

वहीं तुम बछडो और बाण-जैसी तीव्रगामी कुतियो के साथ खेलते हुए पॉच-चार दिन विश्राम करना, और फिर शीघ्रता से मेरी प्रिया का शुभ सन्देश मुझे कहने के लिए दौड़कर लौटना और पूँछ उठाकर अपनी सफलता की सूचना देना।

के. वी. कृष्णमूर्ति शर्मा

आस्ते पुर्यां स च खलु नवद्वारवत्या महात्मा
सा तु छन्ना सततमभितो धातुमय्या च भित्त्या ।
भित्तिस्सापि प्रतिदिनमहो वर्ध्यतेऽन्नैर्विचित्रै-
स्तस्यावासो न खलु सुलभो वेदितुं तेन वक्ष्ये ॥

दृष्ट्वा भीतिं प्रकृतिरचितां तामथो दृष्टनष्ट-
स्वाभाव्यां मा भज विश पथा दक्षिणेनोत्तरेण ।
अन्तस्तत्राप्यधिकचतुरान् पञ्च दृष्ट्वा न ते स्याद्-
भ्रान्तिः सर्वो भ्रमति हि सदा बाह्यमालोक्य रूपम् ॥

एते पञ्च प्रकृतिचपला मोहयन्तो वसन्ति
भ्रातस्तेषां मधुरवचने भोगजातेऽथवा त्वम् ।
मोहं मा गाः पुनरपि ततो गच्छ चान्विष्य नाथं
सर्वो लोकः शुभमिह पदं प्राप्नुयाद्यत्नशीलः ।

आवृत्यास्ते तव सुहृदहो सन्ततं माययात्र
प्रेष्ठ दूराद्विविधविषयान् पञ्चभिश्चौर्यदक्षैः ।
आहृत्यामुं य इह नितरां मोहयत्यञ्जसा त्वं
तं चाश्वास्य प्रियतमपथं पृच्छ तेजोविशिष्टम् ॥

के. वी. सुब्रह्मण्य शास्त्री

वह महात्मा नव-द्वारो वाली नगरी मे रहते है, किन्तु वह नगरी सदा धातुमयी दीवार से चारो ओर से बन्द रहती है। वह दीवार भी विचित्र अन्नो से प्रतिदिन बढ़ती रहती है। अत' उनका घर सहज ही नही मिल सकता। इसीलिए मै उसके बारे में तुम्हे बता रही हूँ।

देखते ही नष्ट हो जाने वाली उस प्रकृति-रचित भित्ति को देखकर उसमें अनुरक्त न हो जाना, अपितु उत्तर-दक्षिण के मार्ग से प्रवेश करना! वहाँ भीतर अपने से अधिक चतुर पाँच (प्राणो) को देखकर तुम्हे भ्रम नही होना चाहिए, क्योकि सभी बाहरी रूप को देखकर भ्रान्त होते रहते है।

ये पाँचो स्वभाव से ही चचल है और मोहयुक्त होकर वहाँ बसते है। हे भाई, तुम उनके मीठे वचनो अथवा भोग्य-सामग्री के मोह में न पड जाना' फिर तुम वहाँ से भी चल देना और स्वामी की खोज मे लग जाना। प्रयत्न करने पर सभी इष्ट-सिद्धि पा लेते है।

यहाँ तुम्हारा मित्र निरन्तर माया से ढका हुआ रहता है। चौर्य-कर्म मे दक्ष उन पाँचो द्वारा दूर से नाना प्रकार के विषयो को लाकर जो उसे निरन्तर मोहित करता रहता है, उसे तुम तुरन्त आश्वासन देना और उससे प्रियतम तक पहुँचने का प्रकाशपूर्ण मार्ग पूंछ लेना!

के. वी. सुब्रह्मण्य शास्त्री

मातृत्वभावना

भूतस्य भाविना सार्धं घटनं कुर्वती शुभा।
वर्तमानात्मना नित्यं जीयान्मातृत्वभावना॥

मुग्धा कन्दुकपुत्रिकादिषु रता या शैशवेऽद्यावधि
स्नेहार्द्रस्य च मातृचेतस इता चिन्तास्पदं चंचला।
क्रोडे सैव निवेश्य बालमचिराज्जातं धयन्तं पुन-
र्वात्सल्याद् गरिमाणमुत्तममहो कञ्चिद् गतेयं वधूः॥

गतं क्व तद्विभ्रमलोलमीक्षितं
मदोद्धतं घूर्णितमद्य नेत्रयोः।
गतं क्व साकूतमपि स्मितं प्रियं
विलोकयन्त्या युवतेर्यदुद्गतम्॥

अङ्के बालं निधाय स्तनधयनपरं किञ्चिदाशङ्कमाना
नेत्रे संचार्य सद्यः पुनरधिगतविश्रम्भलब्धप्रसादा।
दृष्टिं संस्थाप्य शीर्षे निजतनुजनुषो निर्मलामुच्छ्वसन्ती
वात्सल्यासारसिक्ते किमियमुपगता स्तब्धतामीक्षमाणा॥

पत्यात्मनो यदद्वैतं स्नेहसार विभाव्य तत्।
कानि-कानि न सस्मार स्वानुभूतानि चेतसा॥

क्षणद्वयमपश्यन्ती किञ्चिदप्यानिमेषिणी
अन्तःप्रसारिताक्षीव तस्थौ मुग्धेयमात्मना॥

अतीतपरिचर्वणोत्थितमुदातिरेकस्य सा
वशेन सहसा व्यधात्तनयभालमाचुम्बितम्।
करेण मुहुरामृशन् मृदुतलेन तं कुर्वती
प्रतीतिमिव चात्मनः परमसौख्ययोगं प्रति॥

मातृत्व-भावना

वर्तमान का रूप धारण करके जो भूत को भविष्य के साथ मिलाती हुई सुन्दर सृष्टि करती है, उस मातृत्व-भावना की जय हो।

जो भोली-भाली (बालिका) बचपन में गेद और गुड़िया के खेल में निरत रहती थी, वह चंचला (अब) स्नेह-सिक्त मातृ-हृदय की चिन्ताओं का घर बन गई है। सद्यःप्रसूत बालक को अपनी गोद में लेकर दूध पिलाती हुई वह वधू, वात्सल्य के कारण, किसी उत्तम गौरव को प्राप्त हो गई है।

मद से मतवाली और घूमती तथा कटाक्षो से चचल वह दृष्टि कहाँ गई? वह साभिप्राय प्यारी मुसकराहट भी कहाँ गई? दृष्टिपात करती हुई उस युवती की वे सब बाते कहाँ गई?

बच्चे को गोद में लेकर जब वह स्तन-पान कराती है, तब सशंकित होकर अपनी आँखों को इधर-उधर दौड़ाती है। फिर शीघ्र ही जब उसे (बच्चे की सुरक्षा का) विश्वास हो जाता है, तब वह प्रसन्न होकर अपनी निर्मल सजीव दृष्टि अपने शरीर से उत्पन्न पुत्र के सिर पर, जो वात्सल्य-रस से सींचा गया है, रखती है—ऐसी वह दृष्टि देखते हुए भी कैसे स्थिर हो गई?

पति की आत्मा से प्राप्त, एक-मात्र स्नेह के सार इस पुत्र को देखकर उसने अपने चित्त से अपने किन-किन अनुभवो का स्मरण नहीं किया?

दो क्षण भी पुत्र को न देखने पर जिसकी दृष्टि एकटक रह जाती है, ऐसी इस मुग्धा की आँखें मानो भीतर की ओर फैल गई हैं।

अतीत के स्मरण से उत्पन्न आनन्द के आधिक्यवश उसने सहसा अपने पुत्र के मस्तक का चुम्बन ले लिया। कोमल हथेली वाले हाथों से वह उसे बार-बार सहलाने लगी। प्रतीत होता था, मानो उसकी आत्मा का परम सुख से संयोग हो गया है।

प्रसादश्रीः केय लसति वदनेन्दावथ कुतः
परः स्नेहोत्पीडो हृदयपरिवाहं जनयति।
अहो गाम्भीर्यस्यानवधिरिव जाता गहनता
सुतं निध्यायन्त्याः प्रथमजननीभावभजनात्।

हिमाचलस्य गाम्भीर्यमब्जानां सुकुमारता
जननीहृदये न्यस्ता सागराणामगाधता॥

यथात्मानं रात्रिः क्षपयति नितान्त सुविशदां
यतश्चन्द्रः पुष्येच्छ्रियमधिकमासादितकलाम्।
सुतस्यार्थे तद्वत् क्षयमुपनयन्ती निजतनुं
परित्यागस्येयं रचयति नु गाथामनुपमाम्॥

बीजत्वं वा फलत्वं वा कृतार्थं क्रियतेऽनया
प्रकृतित्व गतैषात्मापहारोपनिषत् परा॥

गौरीप्रसाद चुनीलाल झाला

(उसके) मुख-रूपी चन्द्रमा पर प्रसन्नता की यह कैसी शोभा विराज रही है! यह आत्यन्तिक स्नेह का स्रोत हृदय में कहाँ से उल्लास पैदा कर रहा है? आश्चर्य है, अपने पुत्र के ध्यान में लीन इसकी गम्भीरता की गहनता, पहले-पहल माता बनने के कारण, कितनी असीम हो रही है!

माता के हृदय में हिमालय की गम्भीरता, कमलो की सुकुमारता और समुद्र की अगाधता स्थापित की गई है।

जिस प्रकार रात अपने को इसलिए नितान्त क्षीण कर देती है कि चन्द्रमा अपनी कला को अधिकाधिक प्राप्त करके अपनी सुविशद शोभा को परिपुष्ट कर सके, उसी प्रकार माता पुत्र के लिए अपने शरीर का क्षय करती है और इस प्रकार त्याग की एक अनुपम कहानी का निर्माण करती है।

बीज हो या फल, यह उसे कृतार्थ करती ही है। इसकी आत्मा, प्रकृति-रूप होकर, परम त्याग की उपनिषद् बन गई है।

गौरीप्रसाद चुनीलाल झाला

भारत-कथा

अयि भारतीयभूमे विगतार्गलां स्वतन्त्राम् ।
त्वामम्ब वीक्ष्य सर्वे बहुनन्दिता भवामः ॥

बहुवर्षपीडितान्यैः प्राप्तं त्वया स्वराज्यम् ।
धीमान् जवाहरस्ते नेता जनैर्वृतोऽयम् ॥

यो विश्वमर्त्यमान्यो राजेन्द्रवर्मसुज्ञः ।
अस्तीह राष्ट्रपः सन् जीव्याच्छतं समानाम् ॥

मर्त्या मृतास्त्वदर्थे स्मर्यास्त्वयाऽनुवारम् ।
श्रेयो विधाय तेषां निर्वाणमम्ब देयम् ॥

पक्षैः समैर्मिलित्वा त्राणं तवेह चिन्त्यम् ।
वैरं मिथो विहेयं साध्यं स्वदेशकार्यम् ॥

यः सत्यवागहिंसानिरतो दयार्द्रचित्तः ।
त्रिदिवं गतो महात्मा गान्धी स तावकीनः ॥

मान्योऽरविन्दघोषः निजयोगधर्मवित्तः ।
हहहा स विस्मृतः किं परमात्मतत्त्वविज्ञः ॥

भूयात् स्वधर्मरक्षा भूयात्स्वदेशरक्षा ।
सुरभारती सुरक्षा भूयात्तवाधिराज्ये ॥

स्वातंत्र्यमस्ति लब्धं मातर्यदा चिरात्तत् ।
एधेत राष्ट्रभूमौ सुरवन्दनीय भाषा ॥

राज्ये न कोऽपि दुःखं व्याध्याव्युपाधियुक्तम् ।
जलभक्तवस्त्रमिश्रं विन्देत्कदाऽपि भूमौ ॥

जयनारायण रामकृष्ण पाठक

भारत-कथा

हे भारत-भूमि, तुम्हें (दासता की) बेड़ियो से मुक्त, स्वतन्त्र देखकर हम सभी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

तुमने विदेशियो से अनेक वर्षों तक कष्ट भोगकर स्वराज्य पाया है। लोगों से घिरे यह बुद्धिमान् जवाहर तुम्हारे नेता हैं।

सारे संसार के लोगो के माननीय, विद्वान् राजेन्द्र वर्मा राष्ट्रपति हैं; वह सौ वर्ष जिएँ।

जो प्राणी तुम्हारे लिए मरे है, उन्हे सदैव स्मरण रखो। हे माता, उनका कल्याण करके उन्हें मुक्ति प्रदान करो!

यहाँ सभी पक्षों को मिलकर तुम्हारी सुरक्षा की चिन्ता करनी चाहिए, परस्पर वैर छोड़कर अपने देश का कार्य करना चाहिए।

जो सत्य और अहिंसा में निरत रहते थे और जिनका हृदय करुणा से भरा रहता था, वह तुम्हारे महात्मा गाँधी स्वर्ग सिधार गये।

अपने योग-धर्म एवं परमात्म-तत्त्व के ज्ञाता माननीय अरविन्द घोष को, हाय, क्या भुला दिया गया है?

तुम्हारे साम्राज्य में स्वधर्म की रक्षा हो, स्वदेश की रक्षा हो तथा देववाणी संस्कृत की रक्षा हो।

हे माता, चिर काल के बाद जब स्वतन्त्रता मिल गई है, तब इस राष्ट्रभूमि में देव-वन्दनीय संस्कृत भाषा की भी अभिवृद्धि हो।

तुम्हारे राज्य में किसी प्रकार का दुःख, व्याधि (शारीरिक रोग), आधि (मानसिक पीड़ा) या उपाधि (छल-कपट) न हो। पृथ्वी पर जल, भोजन और वस्त्र हर समय प्राप्त होते रहें।

जयनारायण रामकृष्ण पाठक

कावेरीतीरभूमयः

यदिह जन्मभुवो बहुदोहदान्
समुपनीय निकामफलाप्तये ।
वितरतीह कृषीवलवृद्धये
सरिदियं किमु धार्मिकता जडे ॥

स्वसुतानिव पाति सर्वसत्त्वान्
पयसा सन्ततमात्मविस्मृतेन ।
न तु केवलमङ्गपोषणं स-
न्तनुते नूनमघौघशोषणं च ॥

तटिनी तीरोद्देशं
नानासस्याढ्यमक्षिरमणीयम् ।
तेऽपश्यन्नतिविपुल
कावेरीवारिसेकपरिपुष्टम् ॥

फलेन नम्राः सहकारमुख्याः
पलाशितां स्वामपनेतुकामाः ।
प्रणामतस्ते निजमातरं भुवं
प्रसादयन्त्यः किल जातबोधाः ॥

केराः कवेरतनया परिपूततोय-
पानेन पूरितफलाश्च समुन्नताश्च ।
तिष्ठन्ति विष्णुपदमेत्य सतोऽप्युदाराः
भव्यां गतिं विनिविशन्त्यचराश्च लोके ॥

विलसति विततेयमिक्षुवाटी
जनयति या रसमग्रिमं रसानाम् ।
अभिनवमसृणैः स्वदण्डषण्डै-
रविरलभूतिमयी च पुष्पिताग्रैः ॥

कावेरी का तटवर्ती प्रदेश

किसानो की समृद्धि के लिए जब यह नदी, सम्पूर्ण फल की प्राप्ति के उद्देश्य से, मातृभूमि की अनेक कामनाओ को इकट्ठा करके वितरित करती है, तब निष्क्रिय बने रहना कहाँ की धार्मिकता है ?

अपने से निकले हुए पय (दूध, जल) से वह सब जीवो का अपने पुत्रो की तरह पालन करती है। वह केवल अंगो का पोषण नही करती, बल्कि पापो को भी नष्ट करती है।

लोगो को इस नदी का अति विस्तीर्ण तट दृष्टिगोचर हुआ, जो नाना प्रकार के धानो से हरा-भरा होने के कारण ऑखो को सुन्दर लगता था तथा जो कावेरी-जल से सीचा जाने के कारण समृद्ध था।

फलो से झुके हुए तथा अपने पत्तो को त्यागने के इच्छुक आम्र आदि प्रमुख वृक्ष ज्ञानी बनकर प्रणाम करते हुए अपनी मातृभूमि को प्रसन्न कर रहे हैं।

कावेरी के पवित्र जल का पान करने के कारण फलो से परिपूर्ण ये ऊँचे केर के पेड़ खड़े हैं। संसार मे ये उदार वृक्ष, जड होने पर भी, विष्णु-पद प्राप्त करके, भव्य गति के भागी बनते हैं।

रसों में अग्रगण्य (माधुर्य) रस को उत्पन्न करने वाली यह विस्तीर्ण गन्नो की वाटिका सुशोभित हो रही है। अपने नए निकले कोमल दण्डो से, जिनके अग्रभाग पुष्पो से खिले हैं, वह निरन्तर समृद्धि से युक्त है।

केदारपङ्क्तिषु तताः कलमाः प्रवृद्धाः
भूजानिरेष भविता किमितीव मत्वा ।
वातेरितायत-नमद्धनमञ्जरीभि-
राराधयन्ति किमु कोवलमादरेण ।।

शाल्यङ्कुरग्रन्थिभृतो युवत्यः
कृषीवलाः पीतसुराः प्रसन्नाः ।
प्रयान्ति गायन्ति सलीलमात्म-
वर्णैः स्वरैर्हन्त पिकायिताश्च ।।

दृश्यन्ते गुल्मवल्लीततिषु सुमनसो नैकवर्णाः समन्तात्
श्रूयन्ते मञ्जुनादाः पिकमुखपतगश्रेणिसन्तन्यमानाः ।
नीयन्ते शारदाम्भोधररुचिमहिता धेनवः शाद्वलेषु
गीयन्ते वेणुभेदैः परिमृदुपशुपैरस्ति किं नात्र हृद्यम् ।।

पी. नारायण नायर

खेतो की पंक्तियो में पके हुए धान, हवा से हिलकर झुकने वाली अपनी बालो से, इस कोवल (प्रदेश) की आराधना क्या यह सोचकर कर रहे हैं कि वह एक दिन पृथ्वी का स्वामी बनेगा ?

धानो की बालो के गट्ठर उठाये हुए युवतियाँ तथा सुरा पीकर प्रसन्न हुए किसान, स्वरो में कोयल बनकर लीलापूर्वक चल-फिर और नाच-गा रहे हैं।

लता-पौधो की पक्तियो में चारो ओर रग-बिरंगे फूल दिखाई दे रहे हैं; पक्षि-श्रेणियो की, जिनमें कोयल प्रमुख है, मधुर चहचहाहट सुनाई दे रही है; शरत्कालीन बादलो के समान कान्ति वाली शुभ्र गौएँ गोचर-भूमियो में ले जाई जा रही है, तथा ग्वाले मधुर वंशी बजा रहे है—इस प्रकार यहाँ ऐसी क्या वस्तु है, जो हृदय को आकर्षित नही करती ?

पी. नारायण नायर

ईशोपालम्भः

न यस्य रूपं न गुणा न वित्तं
गृहं न वस्तुं न तनौ च वस्त्रम् ।
शक्त्यैव देवानपि योऽतिशेते
तस्मै प्रणामाञ्जलिरेष कस्मै ॥

कैलासे शक्तिमानस्ति पञ्चास्यः कोऽप्यलौकिकः ।
यो गजाननमुद्वीक्ष्य संतृप्यति न कुप्यति ॥

अपूर्वं पञ्चवक्त्रस्य तस्य शीलं न संशयः ।
शिवापि क्रोडमाविश्य यस्य क्रीडति निर्भयम् ॥

भृशं कौतूहलं तेने कपाली कोऽपि कौतुकी ।
अनङ्गं भस्मसाच्चक्रे भस्म चाङ्गीचकार यत् ॥

अङ्गेन गौरीं शिरसा च गङ्गां
भालेन बालेन्दुकलां च बिभ्रत् ।
निर्दह्य कन्दर्पमुवाह युक्त्या
तुर्यां वधूटीं रतिमात्मनेशः ॥

गङ्गा मूर्धाभिषिक्तास्ते गौरी सिंहासने स्थिता ।
कलया पट्टबन्धश्च प्राज्यं स्त्रीराज्यमीश ते ॥

क्वचिच्छ्वशुरसम्पत्त्या जामाता जायते धनी ।
गिरीन्द्रतनयाकान्तो गिरीशस्तन्निदर्शनम् ॥

अहंकारं कथंकारं मन्येऽहं बन्धकारणम् ।
शिवोऽहमित्युदाहृत्य मुच्यते भवबन्धनात् ।

बहादुरचन्द छाबड़ा

शिव को उलाहना

जिसका न रूप है, न गुण है, जिसके पास न घर है, न कोई वस्तु है, और न शरीर पर वस्त्र हैं, शक्ति में जो देवो से भी बढकर है, ऐसा वह जो कोई है, उसे यह प्रणामांजलि है।

कैलास पर्वत पर कोई अलौकिक शक्तिशाली पंचास्य (पंचमुखी शंकर अथवा सिह) है, जो गजानन (गणेश अथवा हाथी का मुख) को देखकर क्रुद्ध नही होता, अपितु सन्तुष्ट होता है।

उस पंचवक्त्र (शिव अथवा सिंह) का चरित्र निस्सन्देह अपूर्व है, जिसकी गोद में शिवा (पार्वती अथवा लोमड़ी) निर्भय होकर खेलती है।

किसी खिलाडी कपाली (शकर अथवा अघोरी) ने उस समय एक महान् कौतूहल उत्पन्न कर दिया, जब उसने अनंग (कामदेव अथवा जिसका कोई शरीर नहीं) को भस्म करके उसकी भस्म को अपने अगो पर मला।

वामाग में गौरी, सिर में गगा तथा मस्तक पर बाल-चन्द्रमा की कला धारण करके उस परमेश्वर ने, युक्तिपूर्वक कामदेव को जलाकर, चौथी रमणी रति से भी विवाह कर लिया।

गंगा का तो तुमने सिर पर अभिषेक किया, गौरी को सिंहासन पर बैठाया, चन्द्रमा की कला से पगड़ी बाँधी; हे ईश, इस प्रकार तुम्हारे यहॉ स्त्रियो का ही प्रशस्त राज्य है।

यदि कही ससुर की संपत्ति से दामाद धनी बन जाता है, तो इसका उदाहरण गिरिराज (हिमालय) की पुत्री के पति गिरीश (शंकर) है।

मै यह कैसे मान लूँ कि अहकार बन्धन का कारण है, क्योकि 'शिवोऽहम्' (मै शंकर हूँ) कहकर मनुष्य बन्धनो से छूट जाता है।

बहादुरचन्द छाबड़ा

वर्तमानयुगस्यापेक्षा संस्कृतभाषा च

संस्कृतस्य व्याकरणं दृढबद्धं पुरा कृतम् ।
काठिन्यभीताः प्रायोऽपावर्तन्तेऽद्य जनास्ततः ॥

एनं ग्रन्थिं श्लथीकर्तुमुपादेयः परिश्रमः ।
संस्कृताभिमुखान् बालान् पुनश्चाक्रष्टुमिच्छुभिः ॥

पूर्वाचार्यैः शास्त्रक्लृप्तादद्य व्याकरणाध्वनः ।
बहूनां पण्डितानां तु व्यतियानं न सम्मतम् ॥

अचिरादार्षमार्गस्योच्छेदो वा स्यादुताधुना ।
ईषद् व्यतिक्रमः कार्योऽस्माभिस्तस्यैव रक्षणे ॥

इत्येवं विषयग्रस्ते विदुषामपि चेतसि ।
संमोहस्य विमर्दाय विचारः क्रियते मया ॥

स्खलितान्येव भाषाणां वृद्धिं कुर्वन्ति भूरिशः ।
इदानीं व्यतियानं यत् तत्पश्चान्नियमो भवेत् ॥

रामायणे भारते च कालिदासकृतिष्वपि ।
अपाणिनीया वर्तन्ते प्रयोगा विविधास्तथा ॥

उत्सृष्टसूत्राः सन्त्येव प्रयोगा आर्षसंज्ञकाः ।
संमताः शास्त्रकाराणां साधवः स्वीकृतास्ततः ॥

कर्मण्यदृष्टैकफले शास्त्रमेव प्रयोजकम् ।
दृष्टे फले त्वनुभवोऽप्यस्ति कर्मनियामकः ॥

संस्कृत व्याकरण

संस्कृत का व्याकरण प्राचीन काल में ही दृढ़ता पूर्वक स्थिर कर दिया गया था। उसकी कठिनता से भयभीत होकर लोग आज उससे मुँह मोड रहे हैं।

संस्कृत की ओर रुचि रखने वाले बालको को जो आकृष्ट करना चाहते हैं, उन्हें इस गाँठ को ढीला करने के लिए परिश्रम करना चाहिए।

प्राचीन आचार्यो द्वारा बनाये गए शास्त्र-निर्दिष्ट व्याकरण-मार्ग का उल्लंघन करना आज बहुत-से पडितो को मान्य नहीं।

(दूसरो का कहना है कि यदि व्याकरण की इस कठिनाई को हल न किया गया तो) अब शीघ्र ही इस ऋषि-निर्मित मार्ग का नाश हो जाने की संभावना है। इसलिए हमें उसीकी रक्षा के लिए थोड़ा-सा हेर-फेर करना चाहिए।

इस प्रकार विद्वानो का भी मन संशयग्रस्त हो रहा है। उनके मति-भ्रम को मिटाने के लिए मै अपने विचार उपस्थित करता हूँ।

अशुद्धियाँ ही भाषाओ की अत्यधिक उन्नति करती हैं, आज जो व्यक्तिक्रम (नियम-भंग) है, वही बाद में नियम बन जायगा।

रामायण, महाभारत तथा कालिदास के ग्रन्थो में भी नाना प्रकार के अपाणिनीय प्रयोग मिलते हैं।

सूत्रो से न सिद्ध होने वाले 'आर्ष' नामक प्रयोग हैं ही, जो शास्त्रकारो के सम्मत होने के कारण शुद्ध गिने गए हैं।

जिस कर्म का फल दृष्टिगोचर न होता हो, शास्त्र ही उसका प्रयोजक होता है, किन्तु जिस कर्म का फल दृष्टिगोचर होता है, अनुभव भी उसका नियामक होता है।

शास्त्रं वस्तुस्थितिं ब्रूते प्रायेण विषमे निजे।
प्राक्कालोपलब्धां वा तत्तत्कालेषु लक्षिताम्।

वृद्धौ सत्यां केचिदशः क्षीयन्तेऽन्ये तु केचन।
भवन्त्युपचिताश्चानुवर्तन्ते स्थायिनोऽपरे ॥

अयं स्वभावो लोकेऽस्मिन् विषयानखिलानपि।
परिगृह्णाति नैवं स्यात् संस्कृतस्यापवादता ॥

कालिदासादिकालेषु प्रसिद्धानि पदानि च।
लुप्यते चेत् प्रयोगेष्ववीक्काले का क्षतिर्भवेत् ॥

रूपाणि नूतनान्येव मुदियुश्चेत् प्रयुक्तिषु।
पूर्वग्रन्थेष्वदृष्टानि किं तत् प्रक्षोभकारणम् ॥

कस्य वांशस्यापचयाद्रूपहानिर्भविष्यति।
भाषायाः कस्य वा नाशः संवृद्धौ पर्यवस्यति ॥

अत्र कर्तुं नैव शक्या क्लृप्तिः शास्त्रेण केनचित्।
शरणं केवलं तत्र कवयोऽन्ये च पण्डिताः ॥

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री

शास्त्र तो प्रायः अपने विषय से सम्बन्धित उस वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन कराता है, जो प्राचीन काल से (परम्परा से) प्राप्त है अथवा जो उसके समय में लक्षित होती है।

वृद्धि होने पर कोई अश क्षीण हो जाता है, कोई बढ़ जाता है तो कोई स्थायी बना रहता है।

इस संसार मे (वस्तुओ का) यह स्वभाव देखा जाता है कि वह सभी प्रकार के विषयो को ग्रहण करता है। यह बात संस्कृत के बारे मे अपवाद नहीं होनी चाहिए।

कालिदास के काल में जब प्रसिद्ध पद लुप्त हो गए, तब यदि वे वर्तमान काल में प्रयोग में न आयें तो क्या हानि होगी?

प्रयोगो में यदि ऐसे नये रूप दृष्टिगोचर हो जो पहले के ग्रन्थो में न दिखाई देते हो तो इसमे क्षोभ का कोई कारण नहीं।

यदि कोई अश न पचे तो इससे किसके रूप की हानि होगी? भला किसी भाषा का कही नाश होता है! उसका अन्त तो संवृद्धि में ही होता है।

इस विषय में कोई भी शास्त्र किसी प्रकार का निर्देश देने में समर्थ नही है। इसमें तो कवि और अन्य पडित ही प्रमाण है।

भट्ट मथुरानाथ शास्त्री

गान्धिविजय-नाटकम्

निरस्त्रेष्वथ शान्तेषु प्रहारः सर्वतोमुखात् ।
व्यधायि यत्न तच्छौर्यं क्रौर्यमेवोच्यते बुधैः ॥

आज्ञाभङ्गं विना नैव दासा दासत्वयोगतः ।
मुच्यन्ते दुष्टराजेभ्यस्तस्मान्नात्रापराधिता ॥

स्वातन्त्र्यं सुगतं समस्तजनता साम्य समुत्पादितं
स्थाप्यन्ते नृपमन्त्रिणोऽतिकुशलाः संभूय राज्ये बुधैः ।
कीर्तिश्चापि समस्तदिक्प्रणयिनी राज्यप्रबन्धो दृढः
सर्वं त्वां समुपागत किमपरं भूयः प्रियं कुर्महे ॥

सर्वे सन्तु निरामयाश्च कुशलाः सस्यैः समृद्धा धरा
शान्ताः शान्तिविवर्धनैकनिपुणा दक्षा दृढाः स्युर्नराः ।
विद्वांसो नवनव्यवस्तुनिचयं निर्मापयन्तां भृशं
भूयासुः पुनरेव भारतबुधाः सर्वस्य शिक्षाप्रदाः ॥

मथुराप्रसाद दीक्षित

गान्धि-विजय नाटक

शान्त और अस्त्रहीन व्यक्तियो पर चारो ओर से जो प्रहार किया जाता है, उसे बुद्धिमान् लोग क्रूरता कहते हैं, शौर्य नहीं।

पराधीन लोग दुष्ट राजा से, उसकी आज्ञा-भंग किये बिना, छुटकारा नही पा सकते, इसलिए इसमें अपराध नहीं है।

स्वतन्त्रता भली भॉति प्राप्त हो गई, सारी जनता में समता की स्थापना हो गई, बुद्धिमानो द्वारा विचारपूर्वक अत्यन्त कुशल राजकीय मन्त्रियो की नियुक्ति की जाती है, तुम्हारी कीर्ति सारी दिशाओ में फैल गई है, राज्य की शासन-व्यवस्था भी दृढ़ हो गई है—सब-कुछ तो तुम्हे मिल गया, अब हम तुम्हारा और क्या प्रिय करे?

सब लोग नीरोग और कुशल हो, पृथ्वी धान्य से समृद्ध हो, शान्ति को बढ़ाने में निपुण लोग शान्त, दक्ष और दृढ हो, विद्वान् नई-नई वस्तुओ के संग्रह का प्रचुर निर्माण करे तथा भारत के बुद्धिमान् पुनः सबके शिक्षक बने।

मथुराप्रसाद दीक्षित

मन्मथ-संवत्सर का स्वागत

प्रजा के आनन्द के स्रोत उस मीनकेतु (कामदेव) को नमस्कार है, जिसके नाम से, जय-वर्ष की समाप्ति पर, मन्मथ-संवत्सर आरंभ हुआ है।

समस्त पृथ्वी को आक्रान्त करके जो संसार में अशान्ति फैलाते है, उन राजाओ के उस गर्व को मै व्यर्थ समझता हूँ, जो अन्य देशो को जीतने से होता है।

शस्त्र-युद्ध से विश्व-शान्ति की प्राप्ति कदापि नही हो सकती। अणु आदि बमो के निर्माण से संसार का विनाश ही होगा।

शत्रु का (हृदय-)परिवर्तन करने के लिए विनम्रतापूर्वक जिज्ञासा, स्नेहपूर्वक वार्तालाप आदि के द्वारा शान्त प्रयत्न करने चाहिएँ।

मनुष्य मन के वश मे रहता है, इसलिए उसके मन को बदल देने से असाध्य विषयो में भी निश्चित सफलता होगी।

जय वर्ष में फ़्रांसीसियों की अनुकूलता से उनके सत्ताधीन पाडिचेरी आदि प्रदेशो का भारत में समावेश हो गया।

भारत का पुत्र, उसके समुद्र का रक्षक, गोआ, पुर्तगाली सर्पों की विषजन्य पीड़ा से बड़ा व्याकुल है।

इस मन्मथ-संवत्सर में गोआ भारत के गले आ मिले—अपनी सारी गन्दगी धोकर पुत्र पिता के घर लौट आए।

विश्वास का प्रादुर्भाव हो, सन्देह का लोप हो, विश्व में स्नेह का सागर लहराये और कलह जल में डूब जाय।

माधव श्रीहरि अणे

उद्बोधनम्

विस्मृत्य सुप्ताः कथं प्राचीनमितिहासम् ।
नाश मुधा स्वकीयं कुर्मो वयं सहासम् ॥

गङ्गा-यमुना-तप्ती-वरुणा-
सरयू-कृष्णा-भीमा-तरुणा ।
आसां श्रुत्वा मन्द्रनिनाद-
मुत्पद्यते हा ! हृदये करुणा ॥
जलनिधिमप्यालोकामहे तूर्णं विगतोल्लासम् ॥ विस्मृत्य०

शशधरयुक्ता तारकमाला
जलधरमाला भूरिविशाला ।
सुर-नर-किन्नर-यक्षाः सर्वे
भूत्वा गदन्त्युन्नतभालाः ॥
मैवं विधत्त रे रे विज्ञाः । सुर-वर-वाण्या ह्रासम् ॥ विस्मृत्य०

दीनो हीनो देशो जातो
व्यथयति कं नो वार्ता ह्येषा ।
कथयति नित्यं हिमगिरिरेष
भवत जना रे सज्जितवेषाः ॥
देवगिरोऽस्याः संस्कृतवाण्याः कुर्वन्तु शीघ्रं विकासम् ॥ विस्मृत्य०

पश्चिम-शिक्षा-दीक्षायोगात् ,
पारतन्त्र्यपरिवर्धितरोगात् ।
शिथिलं जातं मनो जनानां
सुरवाणीं प्रति हन्त वियोगात् ॥
तस्मादधुना प्राणपणैरपि तन्वन्तु वाण्याः सुवासम् ॥ विस्मृत्य०

रुद्रदेव त्रिपाठी

जागरण-गीत

अपना प्राचीन इतिहास भूलकर हम कैसे सो रहे हैं? हम अपना व्यर्थ ही नाश कर रहे हैं और उपहास के पात्र बन रहे हैं।

गंगा, यमुना, ताप्ती, वरुणा, सरयू, कृष्णा, भीमा, तरुणा आदि नदियों का गम्भीर नाद सुनकर, हाय, हृदय में करुणा उत्पन्न होती है। जल का आगार समुद्र भी हमें शान्त, उल्लासहीन दिखाई पड़ रहा है।

चन्द्रमा से युक्त तारो की पंक्ति, बादलो की विशाल घनघोर घटा तथा देव, नर, किन्नर और यक्ष सभी मस्तक उठाकर कह रहे हैं कि हे बुद्धिमानो, देववाणी संस्कृत का इस तरह ह्रास मत करो!

देश दीन-हीन हो गया है, यह बात किसे कष्ट नही पहुँचाती? यह हिमालय पर्वत सदा कहता रहता है कि रे लोगो, तैयार हो जाओ, इस देववाणी संस्कृत का शीघ्र विकास करो!

पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा के प्रभाव, दासता के बढ़े हुए रोग तथा वियोग के कारण लोगो का मन देववाणी के प्रति शिथिल पड़ गया है। इसलिए अब भी प्राणपण से देववाणी की सुगन्ध को फैलाओ!

रुद्रदेव त्रिपाठी

संस्कृतेऽभिनवकाव्यस्यावश्यकता

प्रतिक्षणं यत्र मतिर्नवीना प्रतिक्षणं चाथ गतिर्नवीना।
कथं न काव्यं नवमस्तु तस्मिन् युगे युगे नव्यविमर्शशीले ॥

वृद्धिं गतः कोऽपि विचित्ररोगो महानय सस्कृतपण्डितेषु।
हितैषिभिः सत्वरमेव शाम्यो विलोक्यते येन नवं न किञ्चित् ॥

निजात्मविश्वासविहीनवृत्तिः सदा पराधीनमतिश्च कश्चित्।
गदो महान् नव्यविकासरोधी साहित्यसंवृद्धिविनाशकोऽयम् ॥

धूमावृता हन्त कृताऽद्य यस्मात् तत्सस्कृतिर्भारतजा स्वमौर्ख्यात्।
केनापि सत्येन महौजसा सा संदीपनीया त्वरयैव विज्ञैः ॥

दृष्ट्वा गति किन्तु मनोः सुतानां हत्यारतानां ज्वलतां कुभावैः।
परस्परं निन्दनतत्पराणां क स्तौमि निन्दामि च कं जगत्याम् ॥

अद्यापि काचिद्यदि शुभ्ररेखा तन्वी भवन्ती तमसि प्रगाढे।
विभासते सस्कृतसंस्कृतौ सा रक्ष्या न यावत्प्रभवेददृश्या ॥

ज्ञानोज्ज्वलाः शाश्वतदृष्टिमन्तो जयन्ति ते संस्कृतविज्ञवर्याः।
संरक्षितं यैः शतशोऽप्यनार्यैरुपप्लुतं भारतगौरवं नः ॥

विद्याधर शास्त्री

संस्कृत में एक नवीन काव्य की आवश्यकता

जहाँ मति और गति प्रतिक्षण नवीन से नवीनतर होती रहती हैं, ऐसे प्रत्येक नवीन विचारशील युग में काव्य भी नवीन क्यो न हो?

संस्कृत-पंडितो में एक विचित्र प्रकार का महारोग बढ गया है, जिसके कारण उनमें कोई नवीनता नहीं देखी जाती; इसलिए हितैषियो द्वारा वह तुरन्त शान्त किया जाना चाहिए।

आत्म-विश्वास से हीन मनोवृत्ति तथा पराधीन बुद्धि वाला यह कोई महान् रोग है, जो नूतन विकास में बाधक तथा साहित्य की श्री-वृद्धि का विनाशक है।

उस रोग के कारण हमने अपनी मूर्खता से भारत की श्रेष्ठ संस्कृति को धुएँ से ढक दिया है। विज्ञजनो को चाहिए कि उसे किसी महातेजस्वी सत्य द्वारा शीघ्र प्रज्वलित करे।

किन्तु हत्या में संलग्न, दुर्भावनाओ से जलते हुए तथा एक-दूसरे की निन्दा में तत्पर मनुष्यो की दशा देखकर मै संसार में किसकी स्तुति करूँ और किसकी निन्दा?

आज भी गाढे अन्धकार में क्षीण होती हुई प्रकाश की रेखा चमक रही है तो वह संस्कृत की संस्कृति में ही है। अदृश्य होने से पहले ही उसकी रक्षा करनी चाहिए।

संस्कृत के उन पडित-प्रवरो की जय हो, जो अपने ज्ञान के कारण उज्ज्वल हैं, जो शाश्वत दृष्टि से युक्त है तथा जिन्होने हमारे भारत के गौरव को, सैकडो बार अनार्यों द्वारा आक्रान्त किये जाने पर भी, सुरक्षित रखा।

विद्याधर शास्त्री

यद्यहं भारतसम्राट् भवेयम्

सर्वनियन्त्रणशक्तिसमन्वितसम्राड् यद्यहमभविष्यम् ।
स्वर्गं भूतलगतमिव नूनं वर्षं भारतमकरिष्यम् ॥

कृच्छ्राल्लब्धस्वातन्त्र्यस्य हि रक्षा सर्वैः करणीया ॥
गान्धिमहात्मप्रोक्ताऽहिंसानीतिः सर्वैः स्मरणीया ॥

राज्यसभायाः प्रतिनिधिवरणेष्वेषा नियतिर्विहिता स्यात् ।
संमतिदाने साक्षरतालं वरणीयत्वे वैदुष्यम् ॥

मुक्तिर्भीतेर्दारिद्र्यादपि मुक्तिर्वादविनिग्रहणात् ।
धर्मे बन्धाच्चेति चतुर्विधमुक्त्या सर्वे मोदन्ताम् ।

नागरजनसुखभोगसमृद्धिः ग्रामजनोद्यमसंसिद्धा ।
तस्माद् ग्रामसमुद्धरणार्थे सद्यः सर्वे प्रयतध्वम् ।

ग्रामे-ग्रामे विद्युद्दीपितजनतारामाः प्रसरन्तु ।
विद्याभेषजपत्रप्रेषणरक्षणशाला विलसन्तु ॥

वेतनदानेष्वेकसहस्रादभ्यधिकं नहि दीयेत ।
रूप्यकशतकान्न्यूनं क्वापि हि भृत्येभ्यो न वितीर्येत ॥

तत्तद्भाषावशतो राज्यविभागविधानं कुर्वीत ।
तद्देशस्य व्यवहारेषु च तद्भाषामुपयुञ्जीत ॥

निष्किञ्चनजनमध्यजनानां करभारं खलु लघयित्वा ।
आढ्यजनानां बह्वर्जयतां करमधिकं संविदधध्वम् ॥

भिक्षावृत्तिर्नहि कर्तव्या भारतवर्षे दीनजनैः ।
कर्मण्युचिते कलयत शक्तान् भिक्षून् विकलान् पोषयत ॥

यदि मैं भारत-सम्राट् बन जाऊँ

यदि मै सब प्रकार की नियंत्रण-शक्ति से युक्त सम्राट् बन जाऊँ तो निस्सन्देह इस भारत देश को पृथ्वी पर स्थित स्वर्ग ही बना दूँ।

कष्ट से प्राप्त हुई स्वतन्त्रता की सभी रक्षा करें, सभी महात्मा गाँधी की बताई हुई अहिंसा-नीति को स्मरण रखें।

राज्य-सभा के प्रतिनिधियो के चुनाव में यही नियम रखा जाय कि मत-दान करने के लिए साक्षरता पर्याप्त है और चुने जाने के लिए विद्वत्ता।

डर, गरीबी, मुकदमेबाजी तथा धर्म का बन्धन—इन चारो से मुक्त होकर सब आनन्द मनाएँ।

शहरी लोगो का सुख-वैभव और समृद्धि ग्रामीणो के परिश्रम पर निर्भर है, इसलिए सभी लोगो को गाँवो के उद्धार के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

गाँव-गाँव में बिजली से जगमगाते सार्वजनिक उद्यान फैल जायँ तथा स्कूल, अस्पताल, डाकखाने और थाने सुशोभित हो।

नौकरी में एक हजार रुपये से ज्यादा और सौ रुपये से कम वेतन किसी को न दिया जाय।

विभिन्न राज्यो के शासकीय विभागो की व्यवस्था उन राज्यो की (प्रादेशिक) भाषाओ में की जाय तथा देश के व्यवहार में उस देश की भाषा का प्रयोग किया जाय।

गरीब और मध्यम वर्ग के लोगो पर से करो का भार घटाकर बहुत कमाने वाले धनियो पर अधिक कर लगाओ!

भारत में गरीबो को भीख नहीं माँगनी चाहिए। जो भिखारी सशक्त है, उन्हें उपयुक्त काम में लगाओ तथा अगहीनो का पालन-पोषण करो!

सर्वजनैः प्राथमिकी विद्या संस्कृतसहिता पठनीया ।
युवभिः सर्वैः स्वस्थशरीरैः सैनिकशिक्षाभ्यसनीया ।

प्राचीनत्वादप्यमरत्वात् कविवरमुनिगणसेव्यत्वात् ।
बहुभाषान्तरमातृत्वात्स्यात् राष्ट्रियभाषा गीर्वाणी ॥

वी. गोपाल आयंगर

सब लोगो को संस्कृत के साथ प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और सभी स्वस्थ शरीर वाले युवको को सैनिक शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

देववाणी संस्कृत राष्ट्रभाषा बने, क्योकि वह प्राचीन है, अमर है, श्रेष्ठ कवियो और मुनियो द्वारा सेवित रही है तथा अनेक भाषाओ की जननी है।

वी. गोपाल आयंगार

किं प्रियं कालिदासस्य

पुंस्कोकिलः—अहं स चूताङ्कुर दंशरज्य-
त्कण्ठः प्रियस्ते ननु कालिदास ।
उत्कण्ठयत्काव्यपदैस्त्वदीयै-
र्यस्य स्वरो ह्युत्सहते तुलायै ॥

कालिदासः—पुंस्कोकिलामन्त्रयसे रसालः
किं पल्लवस्निग्धतयोपभोग्यः ।

पुंस्कोकिलः—तत्स्कन्धलग्ना वनकौमुदी च
नवप्रसूनस्फुटयौवनाद्य ॥

कालिदासः—शकुन्तले याह्यनयोर्विवाह
सन्नाहयाहं समुपैमि शीघ्रम् ।
सन्दिश्यतां मालविकामशोकं
मन्दं प्रसूनेषु पदा निहन्तुम् ॥

शकुन्तला—कवीन्द्र कि स्थावरमानसत्वं
यूनोस्तु योगे कुरुषे विलम्बम् ।

मालविका—योगाश्चिरेणास्तु, किमेवमेतौ
वियोगवह्नौ शलभीकरोषि ॥

कालिदास—लतायुवत्योर्मृगपक्षिपुंसां
न मे भिदा सुन्दरयोगदृष्टेः ।
भावान् हि नानोल्लसितानिहैका
सौन्दर्यसंवित्सरसीकरोति ॥

कालिदास की प्रिय वस्तु

नरकोकिल — हे कालिदास, मै तुम्हारा वह प्रिय कोकिल हूँ, आम्र-मंजरी को खाकर जिसका कण्ठ मधुर हो गया है तथा जिसका स्वर तुम्हारे काव्य-पदो द्वारा उत्कण्ठित होकर उनकी समता करने का साहस कर रहा है।

कालिदास — हे नरकोकिल, क्या तुम यह कह रहे हो कि आम्र-वृक्ष ही, अपने स्निग्ध पल्लवो के कारण, सेवन करने के योग्य है?

नरकोकिल — आज उसकी शाखाओ पर फैली वन की चॉदनी का यौवन, नव-विकसित फूलो के रूप में खिला हुआ है।

कालिदास — हे शकुन्तला, जाओ, इन दोनो का विवाह रचाओ, मै भी शीघ्र आ रहा हूँ। उस मालविका से कहो कि अशोक को कुसुमित करने के लिए उस पर धीरे से पाद-प्रहार करे।

शकुन्तला — हे कविवर, क्या तुम्हारा हृदय जड़ हो गया है, जो युवक-युवती के विवाह में विलम्ब कर रहे हो?

मालविका — इनका संयोग चिरकालीन हो! तुम इन्हे वियोगाग्नि में पतंगा क्यो बना रहे हो?

कालिदास — मेरी सौन्दर्य की योग-दृष्टि में लता, युवती, मृग, पक्षी और पुरुष में कोई भेद नही है। वही अकेली इस संसार में विविध प्रकार से उठने वाले भावो को इकट्ठा करके सौन्दर्य का ज्ञान-रूपी सरोवर बना देती है।

शकुन्तले मालविके युवां मे
तथा प्रिये न प्रथमावलोके ।
यथा वियोगाग्निविशुद्धसत्त्वे
तापं विना का घटना दृढा स्यात् ॥

अयेऽत्र को मेंऽशुककोटिलम्बी
गतिं निगृह्णात्यहहार्भको मे ।
कुशक्षतं दर्शयितुं हि दीर्घा-
पाङ्गोऽङ्गमायाति मृगार्भको मे ॥

श्यामाकमुष्टिमुपभुङ्क्ष्व तवाहरामि
द्राक् तैलमैङ्गुदमपो नलिनीदलेन ।

कविः— इत्यन्यतो विपिनचारिणि कालिदासे
बालो व्यलोकि पथि कश्चिदबालसत्त्वः ॥

अङ्के स दुर्ललितबालममु गृहीत्वा
यावत्तदङ्गरजसा शिवभस्मनेव ।
स्वाङ्ग पवित्रयति तावदमुं कवीन्द्र-
मन्यो जहार तुरगेण खमुत्पतिष्णुः ॥

कालिदासः— कस्त्वं कुमार तव हन्त शरीरयोगः
सौख्य निषिञ्चति दृगन्तनिमीलनेन ।
लीये समाधिषु यथा

कुमारः— रघुरस्मि दिव्य-
धेनुप्रसादसमुपाहितदिव्यतेजाः ॥

ऐन्द्रं पदं क्रतुशतेन समाजिहीर्षोः
तातस्य विघ्नमभिषेणयितास्मि शक्रम् ।
आस्मिन् समीपत उपेयुषि मेघपीठे
स्थित्वा रणं मम च वज्रभृतश्च पश्य ॥

हे शकुन्तला और मालविका, तुम दोनो प्रथम दृष्टि में मुझे इतनी प्रिय नही लगी जितनी कि वियोगाग्नि में तुम्हारी आत्मा के विशुद्ध होने के बाद। अग्नि में तपाये बिना कौन-सी रचना सुदृढ बनती है?

अरे, मेरे वस्त्र का छोर यहाँ कौन पकड़ रहा है? हाय, यह मृग-छौना मेरी गति रोक रहा है। लम्बी चितवन वाला यह मृग-छौना, कुश से हुए अपने घावों को दिखाने के लिए, मेरे समीप आ रहा है।

तुम मुट्ठी-भर जगली धान खाओ, मै थोड़ा-सा इगुदी तेल और कमल के दोने में पानी लाता हूँ।

कवि — इस प्रकार जब कि कालिदास वन में विचरण कर रहे थे, उन्होने दूसरी ओर मार्ग पर एक ऐसा बालक देखा, जिसका बल-वीर्य बालको-जैसा नहीं था।

जैसे ही वह उस उद्धत बालक को गोद में उठाकर अपने अगो को, उसके अंगों की शिव-भस्म-जैसी धूल से, पवित्र कर रहे थे कि उन कविवर को आकाश में उडने की इच्छा वाला कोई दूसरा व्यक्ति घोड़े पर बैठाकर हर ले गया।

कालिदास — हे कुमार, तुम कौन हो, जो कि तुम्हारा शरीर-स्पर्श मुझे सुख से सींच रहा है और ऑखे मूँद लेने पर जान पड़ता है जैसे मै समाधि में लीन हो रहा हूँ।

कुमार — मै दिव्य कामधेनु के अनुग्रह से प्राप्त दिव्य तेज वाला रघु हूँ। सौ अश्वमेध-यज्ञ करके इन्द्र-पद पाने की इच्छा वाले अपने पिता के विघ्नकर्ता इन्द्र का मै सामना करूँगा। इस समीप आते हुए मेघ की पीठ पर सवार होकर आप मेरा और वज्रधारी का युद्ध देखे।

कविः— दैलीपाश्वात् जलदमभजत्तत्पथेनोपयातं
प्रत्यासन्नामरपतिधनुस्तोरण कालिदासः।
तस्य प्रेयान् खलु जनधरो यो यथेच्छं कवीनां
भावो यद्वद्दिवि विहरते चित्ररूपं दधानः ॥

मेघः— दुःखो ह्यध्वा कविपरिवृढ त्व सखासोऽद्य दैवा-
न्नूनं साम्यं भवति कविना भूयसा मेऽम्बुदस्य।
आस्ते विद्युन्मयि भवति च प्रातिभं ज्योतिरन्तः
द्वावप्यावां निजरसभरैः लोकमुज्जीवयावः ॥

कालिदासः— मन्ये मेघ व्रजति हि भवानुत्तरामेवमाशां
तत्रैवास्ते मम च भवनं मूलभूतं पुराणम्।

मेघः— नेष्यांस्मि त्वां वसतिमलकां नाम यक्षेशितुस्तां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रनष्टान्धकाराम् ॥

कालिदासः— अत्र मां त्यज बलाहकाधुना
गन्धमादनवनान्तभूमिषु।
चिन्मयी सुरनदीह तत्तटे
शक्यमादिपितरौ हि वीक्षितुम् ॥

प्रेमचारिमविमानयोगतः
प्रापितोऽस्मि परतत्त्वसन्निधिम्।
शब्दमर्थमपि पक्षती दधद्
राज एष हि सुपर्णसन्निभः ॥

आः कुमारवनमेतदाश्रितः
स्यां भुवीह लतिकात्मना क्वचित्।
स्यात्तथात्र विहरच्छिवाङ्घ्रिणा
मर्दन सकलबन्धमर्दनम् ॥

कवि — कालिदास दिलीप के घोडे को छोड़कर उधर से आते हुए उस बादल पर चढ गए, जो निकटवर्ती इन्द्र-धनुष के तोरण से सजा हुआ था, क्योकि वह कवियो के भावो के अनुरूप, विचित्र रूप धारण करके, आकाश में स्वच्छन्द विचरण किया करता है।

मेघ — यह राह बडी कष्टप्रद है, किन्तु सैाभाग्य से, हे कवि-श्रेष्ठ, आज तुम-जैसा सखा मिल गया है। अब निश्चय ही मुझ बादल की कवि से प्रचुर तुलना की जा सकती है, क्योकि मुझमें यदि बिजली है तो तुममें प्रतिभा की अन्तर्ज्योति है; हम दोनो ही अपने रस-समूह से लोक को अनुप्राणित करते है।

कालिदास — मै समझता हूँ, तुम उत्तर दिशा में जा रहे हो, वही मेरा मूलभूत प्राचीन निवास है।

मेघ — मै तुम्हें यक्षराज कुबेर की नगरी अलकापुरी में ले जाऊँगा, जहॉ के अन्धकार को बाहरी उद्यान में स्थित शिव के मस्तक का चन्द्रमा नष्ट करता है।

कालिदास — हे बादल, अब मुझे यहॉ गन्धमादन-पर्वत के वन्य प्रदेश में छोड़ दो, जिससे यहॉ बहने वाली ज्ञानमयी गंगा के तट पर संसार के आदि माता-पिता के दर्शन सम्भव हो सके।

विमान के बिना ही मै परमात्म-तत्त्व के निकट पहुँच गया हूँ, जहॉ प्रेम के सहारे ही पहुँचा जा सकता है। शब्द और अर्थ के पंखो को धारण करने वाला यह गरुड़ के समान सुशोभित हो रहा है।

अरे, यह तो कुमार-वन है, जिसका आश्रय लेकर यदि मै इस पृथ्वी पर कही लता बन जाता तो यहॉ विहार करने वाले शिव के पैरो से कुचला जाकर अपने सब बन्धनो को नष्ट कर देता।

सङ्गमनीय मणिवरमथवा विचिनोमि काननेऽत्रैव ।
यस्य प्रसादतोऽहं युज्ये नाथेन भूतनाथेन ॥

अहो अहो नमो मह्य यदुदेति पुरो मम ।
सोमास्कन्द परं ज्योतिः वागर्थरससौभगम् ॥

वे. राघवन

अथवा, मै यहीं वन में संगमनीय मणि ढूँढूँगा, जिसके प्रसाद से मै भूतनाथ-महादेव के साथ संयुक्त हो जाऊँगा।

अहो, मुझे नमस्कार है (मेरे अहोभाग्य हैं) जो कि मेरे सम्मुख वाणी, अर्थ और रस से रमणीय सोममय परम ज्योति उदित हो रही है।

वे. राघवन

सिन्धी

चयन : सिन्धी सलाहकार समिति

अनुवाद : प्रो. एन. एन. बठेजा

कवि-नाम	कविता
अर्जन मीरचन्दाणी 'शाद'	मोदी का बिल'
खीअलदास बेगवाणी 'फ़ानी'	ओ मेरे वतन !
गोर्धन महबूबाणी 'भारती'	दृश्य यह है गाँव का
(स्व.) दीवान सोभराज निर्मलदास 'फानी'	अद्भुत लीला
नारायण 'श्याम'	पेट की पीड़ा
परसराम हीरानन्द सचानन्दाणी 'ज़िया'	चलो
बलदेव गाजरा 'गुमनाम'	लालसा
मोती प्रकाश	ग़ज़ल
लेखराज किशिनचन्द 'अज़ीज'	हृदय की अभिलाषा
सुगन आहूजा	ग़ज़ल

मोदीअ जो बिलु

मूंखे खपे हयाति में मस्ती शराब जी,
झन्कार अक़्लो होशु खसींदड रबाब जी,
बे ख़ुदि रहां, रहे न मूंखे पंहिंजी जिअ खबर,
दुनिया खपे जिते न हुजे पहुच ख्वाब जी;
का मौज अहिड़ी बज़्म दे दिलिखे जदहि धिके,
दामन थो तहिं समे अची मोदीअ जो बिलु छिके ॥

बादल जां रेल छेल मां आकास में घुमां,
मज़ल न मागु कोई मूंखे, मां पियो रुलां,
तारा चवनि, वराए चवनि; आउ, आउ, आउ !!!
आनन्द में अची मां खिंवणि जां पियो हसां,
पर्दे मे बादलनि जे, वञी दिलि जदहि लिके,
दामन थो तहिं समे अची मोदीअ जो बिलु छिके ! ॥

माण्यां सुरूरु चड जे रमणीक रूप मां,
सागर में दिलि जा भाव पियो उथिलंदा दिसां,
आग़ोश मखमलीअ मे सुम्हीं माहिताब जे,
खहुराणि ज़िंदगीअ जी समूरी भुली वञां,
जिअ हुस्न चंड जे ते वञीथी नजर टिके,
दामन थो तहिं समे अची मोदीअ जो बिलु छिके ! ॥

मै में टुब्यूं दियां थो, चढे पर नथो ख़ुमारु,
अफ़्सोसु हाल पंहिजे ते खां थो बार बारु,
कहिड़ो जिअणु थियो रूहु जिते बंदि क़ैद में,
आयो कदहिं पखीअ खे उदामण बिना क़रारु,
नग़मनि ते नगमा दिलि जदीं गाइण जे लइ सिके,
दामन थो तहिं समे अची मोदीअ जो बिलु छिके ! ॥

अर्जन मीरचन्दाणी 'शाद'

मोदी का बिल

जीवन मे बस एक चाह है मस्ती मिले शराब की,
अकल होश गुम करने वाली झनकारें रबाब की,
बेखुद रहूं सुध-बुध न रहे अपनी मुझे,
दुनिया ऐसी मिले कि जिसमें पैठ सके न ख्वाब भी,
मौज और महफ़िल का मजमा जब मेरा दिल खींचता।
ठीक उसी दम 'मोदी का बिल' आकर दामन पकड़ता॥

बादल-सा आवारा बनकर मै घूमूॅ आकाश में,
मंज़िल, मार्ग न कोई हो बस आजादी हो पास में,
"आओ, आओ" कहकर मुझ पर चॉद-सितारे इठलाएँ,
मै बिजली-सा हॅसूॅ हृदय मे आनन्द के स्वर लहराएँ,
बादल के पर्दों में दिल मेरा जब छुप जाता।
ठीक उसी दम 'मोदी का बिल' आकर दामन पकड़ता॥

चदा के रमणीय रूप का अति आनन्द उठाऊॅ मै,
सागर के हृदय में लहराते भाव उछलते देखूं मै,
चाँदनी की मखमली सेज से जी भरकर लिपटूॅ मै,
जीवन का सारा रूखापन पूर्ण रूप से भूलूॅ मै;
चन्द्र-छटा पर मै जब अपने नयनो को टिकाता।
ठीक उसी दम 'मोदी का बिल' आकर दामन पकड़ता॥

नशा नही चढता है मुझ पर यद्यपि गोते खाता हूँ,
बार-बार अपनी हालत पर शोक हरदम मनाता हूँ;
जहॉ कैद में हो आत्मा ही, जीवन भला वहाँ कैसे ?
बिना उड़ान भरे पंछी को मिल सकता है सुख कैसे ?
मधुर राग गाने को उत्सुक मेरा हृदय कचोटता।
ठीक उसी दम 'मोदी का बिल' आकर दामन पकड़ता॥

अर्जुन मीरचन्दाणी 'शाद'

ओ मुंहिंजा वतन

ओ मुंहिजा वतन ! दिलिदार वतन,
कया केदा भुलाइण जा मूं जतन ।
लगी लूअ लूंअ में आहे अहिडी लगन,
भुल खां न भुलनि तुंहिंजा भाण भवनि ।
कोशशि मूं कई, व्यर्थु सा वई ।
गारींदी रही, कर्मीनि जी कई ॥

हिति दाढो दुखायो आहि दुखनि,
सुख यादि करे उधमा था उथनि,
गुण यादि करे गालिहथूं न खुटनि,
पलि पलि था दिलासा, दिलि खां पुछनि,
घर मे छो रही धार्यो थी घुमीं ।
खशि रहु छो गमनि मार्यो थी घुमीं ॥

मुश्किलि थी पियो, वापसि आ वरणु,
मुश्किलि थी पियो गणित्युनि में गरणु ।
चाहे थो हरणु वारीअ दे वरणु,
समुझे थो सुठो बुख उञ में मरणु ।
संसारु भली तंग-ख्यालु सदे ।
दिलि तंहिखे महांगो मालु सदे ॥

करे नेण निखण्डु थी पहरा दिनमि,
धाड़नि ऐं धकानि खां दिलि न डिनमि ।
दुखु यादि न हो, दुख कोन दिठमि,
सवें छिर्क सही यारी न छिनमि ।
सर्दीअ जे सटुनि, गर्मीअ जे बटुनि ।
कुझु कीन कयो बोदुनि ऐं बुटुनि ॥

ओ मेरे वतन !

ओ मेरे वतन ! दिलदार वतन !
किये तुझको भुलाने के कितने जतन।
नस-नस में लगी है ऐसी लगन,
भूले न भुलाते उद्गार-मगन।
व्यर्थ ही रह गया, यत्न जो था किया।
कर्म की गति बस मुझे गलाती रही॥

दुःखो ने किया है अति सन्तप्त यहाँ,
सुखो की स्मृति से चित्त विह्वल महा।
गुणो का स्मरण कभी छूटे नहीं,
प्रति पल हृदय में ढाढ़स बँधे।
अपने ही सदन मे बिराने हो क्यो ?
प्रसन्न रहो, यह सन्ताप क्यो ?

वापस जाना भी तो है कठिन,
चिन्ता-ग्रस्त रहना भी तो है कठिन।
रेतीले पथ को मृग मुड़ना चाहता,
भूख प्यास से मर मिटना है रुचिकर उसे।
कहने दो संसार को संकुचित विचार-धारा इसे।
हृदय हमारा माने महँगा पदार्थ जिसे॥

निद्रा का कर त्याग नेत्र प्रहरी बनें जहाँ,
डकैती और प्रहारो से दिल दहला न जहाँ।
दुःख स्मृति-पथ में न था, सन्ताप देखा न कभी,
कई कम्प सहे, मैत्री छिन्न न हुई।
कँपकँपी शीत की और गरमी की घुटन।
बाढ़ और ऊमस ने कुछ बिगाड़ा नहीं॥

उहा झांग्युनि जी झूगार किथे ?
उहे चग घडा यक़्तार किथे ?
उहे खूह किथे ? उहे नार किथे ?
उहे फूल किथे ? हुब्कार किथे ?
उहे खीर वगा गिदिरनि जूं वल्यू ।
उहे वाड भला, छाँहिनि जूं छल्यूं ॥

समुझां थो मगर, मोटणु आ महालु,
मोटां बि अग्यों किथि ईंदो कमालु ।
जाहिरु थो दिसां हिति पांहिजो ज़वालु,
भलु ख़ालिक सदे मुंहिजो ख़ामु खयालु ।
तो दे मां नंगे पेरनि, जे अचां ।
थी ऊधा पवनि मुंहिंजा भाग संवां ॥

बेवासि थी छदियुमि, तोखे यार वतन !
छदे सूंहं कयइ सींगार वतन !
यारीअ जा दिठा मूं न पार वतन !
गुलज़ारु थी पिए, मुंहिजा खार वतन !
भला जे खारु थी पिएं, मूंखे छोन झलियुइ !
छोन पलवु झले, पकिड़े थे पलियुइ ?

हिति जानि जुदाईअ में थो दियां,
हिक आस ते आऊँ पियो थो जियाँ ।
शल तो दे अची थाईंको थियां,
आहिनि मूं छादिया हिति हारे हियां ।
जिन्दु जानि जुदाईअ में थी झुरे ।
पेरु भूंइ सां भाकुरु पाए भुरे ॥

वनचरो का वह मोहक गाना कहाँ ?
वे चग, घडे, इकतारे कहाँ ?
वे कुए, रहट, हुंकारे कहाँ ?
वे फूल कहाँ और महक कहाँ ?
खीरे ककड़ी और खरबूजे कहाँ ?
वे बाड़े भले और तरबूजे कहाँ ?

मानता हूँ कि दूभर है अब लौटना,
लौटा भी मिले तो दक्षता वह कहाँ ?
प्रत्यक्ष देखता हूँ यहाँ अपनी क्षति,
लोग चाहे कहें इसे मेरी विमति।
नंगे पाँव आऊँ तेरे पास तो।
उल्टे मेरे भाग्य हो जाँय सीधे कृती ॥

मेरे प्रिय स्वदेश ! मैने विवश होकर छोड़ा तुझे,
कितनी शोभा और शृङ्गार था तुझमें ?
हमारे प्रेम का भला कोई पारावार भी था ? हे मेरे स्वदेश !
पुष्प-पल्लवित होते हुए भी झंखाड़ हो गये तुम।
झंखाड़ होकर भी मुझे क्यो न अपनाया ?
पल्ला पकड़ अपने पाश में बाँधा क्यो न मुझे ?

बिछोह में यहाँ तो जीवन से हाथ धो रहा हूँ मै,
एक आशा के भरोसे जैसे-तैसे जी रहा हूँ मै।
तेरे पास आकर मै स्थायी हो जाऊँ,
यहाँ तो मै हृदय हारकर ही बैठ गया हूँ।
मेरे जीवन-प्राण झुलस रहे है बिछोह में तेरे।
भूमि-स्पर्श पाकर पाँव थिरकते मेरे ॥

हिति पंहिजे पल्यानि जा हाल त दिसु!
ऊहे सेठि सघा कंगाल त दिसु!
गूंदर में गदियल, हिति लाल त दिसु !
जालिम त जमाने जी चालि त दिसु !
हिति हूंद वारा हैरानु थिया।
धनवान विल्हा, वैरानु थिया ॥

खीअलदास बेगवाणी 'फ़ानी'

अपने पले हुओं की दशा यहाँ देखिए,
वह श्रेष्ठी वर्ग और दरिद्र भी देखिए।
शोक से उद्विग्न अपने लाडले जोहिए,
इस क्रूर समय की चाल को अवलोकिए।
वैभवशाली यहाँ सब आपन्न हुए।
सम्पन्न सभी यहाँ विपन्न हुए॥

खीअलदास बेगवाणी 'फ़ानी'

हीउ निज़ारो गोठ जो!

शाम वेले रातिरीअ ऐं दींहं जे छिकताण में,
जिअं बुदे आकासु थो लोहूअ सन्दी लालाण में,
तिअं अचानकु खूह ते नार्यूं अचनि थियूं नाज़ सां,
हर तर्फ़ हुब्कार फहिलाए, अजबु अंदाज़ सां—
पलटिजी पल में पवे थो, हुस्नु सारो, गोठ जो;
कंहिं दिठो आहे अख्युनि सां हीउ निज़ारो गोठ जो!

चेल्हि ते चौंरी, मथे ते आहि घाघरि या घड़ो,
छेरि छिमिके पेर में ऐं मस्तु मुंहं ते टीकड़ो,
ख़ूबु जोभन जी ख़ुमारी नरगसी नेणनि मथां,
नाहि सुधि, केदा कुसी विया तिनि निगाहुनि जे हथां—
आहि तीरनि खां तिखो अहिड़ो इशारो, गोठ जो;
कंहिं दिठो आहे अख्युनि सां हीउ निज़ारो गोठ जो!

नाज सां नोड़ियूं खणी, थियूं दोल गिर्ण्युनि ते धरिनि,
मुश्कन्दे मेठाज सां, से खूह मां पाणी भरिनि,
पींघ जां तिनि जी जुवानी, लोद खाई थी लुदे,
ऐं कमरि जे लोच में जोभन जी कूमलता कुदे—
खूहु आहे जणु बण्यो जमुना किनारो, गोठ जो;
कंहिं दिठो आहे अख्युनि सां हीउ निज़ारो गोठ जो!

आहि केदो रसु भर्यलु चूड़ियुनि सन्दी झन्कार में,
जणु त'लर्जिशि थी अचे कंहिं सारगीअ जे तार में,
किअं लिखां मां दिलिरुबाई, छेरि जे आवाज़ जी?
थी सघे थी कीन अहिड़ी दिलिकशी कंहिं साज़ जी—
काश! मां बणिजी पवां को शइर वारो, गोठ जो;
कंहिं दिठो आहे अख्युनि सां हीउ निज़ारो गोठ जो!

दृश्य यह है गाँव का!

सायंकाल को दिन और रात के खिंचाव में,
डूब जाता नभ ज़ब रक्तिमा में रुधिर-सी।
तब अचानक कूप पर आवें लालित्यभरी नारियाँ,
सब ओर फैला देती छटा विचित्र विस्तार से—
गाँव का सौन्दर्य सारा पलटता पल में वहाँ।
निज नयनों से देखा किसी ने दृश्य यह है गाँव का!

कमर पर है झज्झर, सिर पर मटका या घड़ा,
पायल बाजे पाँवो में मस्तक पै टीका मदभरा।
नरगिसी नयनो से निकले यौवन की खुमारियाँ,
सुधि नहीं, इन घातक नयनो के शिकार हुए कितने?—
तीरो से बढकर तीखे ये इशारे गाँव के।
निज नयनो से देखा किसी ने दृश्य यह है गाँव का?

रस्सी उठाकर नाज से रखती रहट पर डोल वे,
कूप से पानी निकाले माधुर्य-मय मुसकान से।
लचकता यौवन है यों झूमता झूला है ज्यों,
क्रीडा करती है कमर की लोच में यौवन की कोमलता—
यमुना-किनारा बन गया गाँव का यह कूप मानो,
निज नयनो से देखा किसी ने दृश्य यह है गाँव का!

चूड़ियो की झनकार में भरा हुआ है रस कितना!
मानो सारगी के तार में झंकारते कुछ गीत है।
पायल-ध्वनि की मोहकता मै कैसे लिखूँ?
हो न सकता आकर्षण ऐसा किसी वाद्यविशेष में—
चाहता मै बन जाऊँ कोई कवि इस गाँव का।
निज नयनो से देखा किसी ने दृश्य यह है गाँव का!

हाणि हरिका चेल्हि सां घाघरि लगाए थी हले,
छुलिकंदड पाणीअ सबबि छाती पुसाए थी हले,
दिलि अंदरि हर शख़्स जे हल्चलु मचाए थी हले,
पाण खे चञ्चल निगाहुनि खां बचाए थी हले—
हेज मां हरिका कन्दी हाणे पसारो, ग॒ोठ जो;
कंहिं दि॒ठो आहे अख्युनि सां हीउ निज़ारो ग॒ोठ जो !

गोर्धन महबूबाणी 'भारती'

कमर पर झारी लगाकर वे हैं अब चलने लगीं,
छलकते पानी से उनकी भींज जातीं छातियाँ।
दर्शकों के दिल में कुछ हलचल मचाती वे चले,
स्वयं को चञ्चल,कटाक्षो से बचाती वे चले।
लालित्य का करती अभी वे गॉव में प्रसार वे।
निज नयनो से देखा किसी ने दृश्य यह है गाँव का!

गोर्धन महबूबाणी 'भारती'

अधिभुतु लीला

सूरा सूरनि कोदि॒या, सूर सदा तिनि सेज ।
महबूबाणी मौज जा, माणिनि हकिया हेज !
दर्दु न जिनि जे दिलि में, से अणासा अरेज ।
चोजु॒नि चशिकनि चंबिड़िया, अगूंदरा खर खेज ।
हू सुहि सुरहा सूरमा, ही खुहि बुत बादेज ।
सूरनि नेबाहेजि, त ऊजलु अन्दर आरसी ॥

घड़त घड़ींदु॒ड हेकिड़ो, तरहें रूप पसार ।
सोनु सोनारो सागि॒यो, गु॒हणनि गु॒चु आकार ।
मुंडियूं चिन्दियू चोखियूं, ब॒ह ब॒ह रौनक़दार ।
फुलियू चूडियूं कैठियूं कगण चिमिकेदार ।
बहगु॒ण वींगासि वासिते, सोन जड़त सींगार ।
नक़्श घणा नकाशु हिकु, तूं हिक सां ब॒धु चित-धार ।
त पाइ पदु सुख-सारु, मिड़नी थोकनि खां मथे ।

सागे॒ काठ कुरूप मां, सहसें ठाठ सूतार ।
आधिभुतु लीला अगम जी, जंहि जा खेल अपार ।
हुनर कला हर तह अंदरि, ईश्वरी उपटार ।
नासवन्त नानत मंझां, उपजनि साति वीचार ।
साखी सर्जणहारु, को को गुर पर्सादि सां ॥

अद्भुत लीला

शूर वीर शूलो के कांक्षी, शूल सदा उनकी है सेज।
प्रियतम के मौज को तत्पर, आनन्द अनुभव करते हैं।
जिनके हृदय में पीड़ नही, वे शुष्क निष्ठुर हैं।
लम्पट विषय-भोग में, मौजी खर अविचार।
वे शूरवीर शाश्वत प्रसन्न, वे नश्वर-तन वातूल।
शूलो से निभाओ तो, अन्तः दर्पण हो उज्ज्वल ॥

गढन गढैया एक है, भिन्न-भिन्न रूप पसार।
सोना सुनार एक है, गहने अनन्त प्रकार।
अँगूठी बिंदिया चोखी, बड़ी जो रौनकदार।
लौग, चूड़ियाँ, कंठियाँ, कंगन चमकदार।
बहुगुण ललना के लिए, स्वर्ण-जटित शृङ्गार।
नक़्शा विविध नकाश इक, उससे बाँधो चित्त-धार।
पाओगे सुख-सार; बढिया थोक समूह से ॥

एक ही काष्ठ कुरूप से, सहस्र-रूप सुतार।
अद्भुत लीला अगम की, जिसके खेल अपार।
शिल्प कला हर परत में, ईश्वरीय विस्तार।
नाशवन्त अनेकता से, उपजे सद्विचार।
साक्षी सृजनहार; कोई गुरु-प्रसाद से ॥

वागूं वाहिद हथ में, थो वर वर वराए।
बेदा हिन बाज़ीअ खां, अणभूमो आहे।
'नानक लिखिया नाल' गति, को ज्ञानी समुझाए।
कर्मनि काढो जीव खे, जूणियूं भिटिकाए।
पर आदि कर्म वण ब़िज घुंडी, को सालिकु सुलिझाए।
सेवा साधू संगु थो, सहजे फलु लाए।
गूंगो गुड़ु खाए, 'कुशिके मुशिके कीनकी'॥

सुर्गवासी दीवानु सोभराजु निर्मलदासु 'फ़ानी'

बागडोर हाथ एक के, जो फिर-फिर फिराता।
मानव इसी खेल से, है अत्यन्त अज्ञात।
'नानक लिख्या नाल' गति, कोई ज्ञानी समझाता।
कर्मों का फल, जीव को, है योनियो में भटकाता।
किन्तु आदि-कर्म वृक्ष बीज गॉठ कोई विज्ञ सुलझाता।
सेवा साधु-सङ्ग फल, सहज में है लाता।
गूगा गुड़ खाता; मुस्कराता मुँह से नहीं॥

(स्व.) दीवान सोभराज निर्मलदास 'फ़ानी'

पेट जी पीड़

जोभनवन्ती विधवा नारी, जोभन खां बे ख़ाब,
पुरुष जे प्यारीअ चञ्चलता लइ, अंगु अंगु बे ताबु।
पाण खे रोके, केदी दिलि में; उधमनि जी थिए भीड़,
लेकिन उन जे पीड खां भारी, मुहिंजे दिलि जी पीड़।

मन्दर जो हो नवलु पुजारी, जोभन खां बे हालु,
मनहरु जंहि लइ हर नारी, ऐ नारीअ जी हर चाल।
पाण खे रोके केदी दिलि में, उधमनि जी थिए भीड़,
लेकिन उन जे पीड़ खां भारी, मुहिंजे दिलि जी पीड !

आह सर्दु, अखि आब्यल ऐ रुखु; जरदु सुञाणणु सहलु,
जोभन-भाव जे कारणि दिलि जो, दर्दु सुञाणणु सहलु।
श्याम पुछियुइ पर मुंहिंजी न्यारी, अहिड़ी कहिड़ी पीड ?
जोभन जी सचु पीड न अहिडी, पेट जी जहिडी पीड !

हलुचलु हीअ ससार जी सारी, जोभन जी उधमांदि !
मुश्किलि जेका बणी वदनि लइ, जोभन लइ सा रांदि !
पर उनखे बेकारि करे हीअ, आहे अहिडी पीड़,
दुनिया में सचु पीड़ न अहिडी, पेट जी जहिडी पीड़ !

नारायणु 'श्यामु'

पेट की पीड़ा

जोबनवन्ती विधवा नारी जोबन से बेख्वाब,
नर की प्यारी चञ्चलता हित अङ्ग-अङ्ग बेताब।
मसोसती दिल में उसके उन्मादो की भीड,
लेकिन उसकी पीर से भारी मेरे दिल की पीर!

मन्दिर का वह नवल पुजारी यौवन से बेहाल,
मोहक उसके लिए कामिनी और उसकी हर चाल।
मन मसोसता दिल में उसके उन्मादो की भीड,
लेकिन उसकी पीर से भारी मेरे दिल की पीर!

चेहरा ज़रद आह और ऑसू सहज यही पहचान,
युवा-हृदय की गहन वेदना यह भी सहज पहचान।
पूछे 'श्याम' कि कैसी न्यारी मेरी जीवन-भीड?
यौवन की भी पीर न ऐसी जैसी पेट की पीर!

हलचल इस संसार की सारी यौवन का उन्माद,
बड़े बड़ो को जो मुश्किल है वह यौवन का खेल।
उन सबको बेकार बनाती यह है ऐसी पीर,
दुनिया में कोई पीर न ऐसी जैसी पेट की पीर!

नारायण 'श्याम'

चलो !

प्रति पद पर एक नवीनोद्यान बनाते चलो।
मरु-भूमि में भी बाग़ की रंगत रचाते चलो ॥

प्यार जाग्रत हो उठे इनसानियत जाग्रत हो।
एकता के सब जगह नारे लगाते चलो ॥

दाना-दाना भिन्न हुआ माला टूटी प्रेम की।
एक ही सूत्र में उन्हीं दानो को मिलाते चलो ॥

कारवाँ चलता रहे दुःखदायी अन्धेरा न हो।
रुचि और साहस की मशाल को जलाते चलो ॥

नाव है मँझधार में माँझी बना सहकार को।
अपनी किश्ती को सदा तट पर लगाते चलो ॥

पुष्प यदि तुम चाहते हो प्रेम काँटों से करो।
अपनी सारी फुलवाड़ी की कुशल मनाते चलो ॥

ढलने वाले लाख हो किन्तु साँचा एक हो।
निर्द्वन्द्वता से हृदय का द्वन्द्व मिटाते चलो ॥

अधोदृष्टि क्यो करो ? खेचर बनो आकाश के।
रचना अपने घोसलो की नभ में कराते चलो ॥

दृक्पथ में जो कुछ आ पड़े देखो उसे कर्मण्य हो।
किन्तु उसकी प्रतिक्रिया से अपने को बचाते चलो ॥

कर्म ही संसार में भाग्य का निज रूप है।
कर्म से ही भाग्य की शोभा बढाते चलो ॥

सब मिलकर एक-एक ईंट उठाकर बनाओ जीवन-प्रासाद।
टूटे-फूटे झोपड़ो को बँगलो में बदलते चलो ॥

हिकिडो खाए बोड़ु ऐ, ब़ियो ग़ुणितियूं खाए पियो।
हिन ज़माने जे तफ़ावत, खे मिटाईंदा हलो॥

छो तबीबनि दे़ तक्यो, ख़ुदि दर्दजा दरमान थियो।
थी मसीहा फूक सां, दुख खे उद़ाईंदा हलो॥

दु़ख सुखनि जी सूंहं, दु़ख ईंदा त सुख आणींदा साणु।
पेच सूरनि सां ऐं पूरनि, साणु पाईंदा हलो॥

बहर मे ऊन्हा वञो, दे़ई टु़ब्यूं मोती लहो।
हीअ खबर सभिनी सराफनि, खे सुणाइंदा हलो॥

बर में बाज़ार्यूं लग़िनि, ऐं सावकूं सुञ में थियनि।
झंगलनि में ए 'जिया' मंगलु मनाईंदा हलो॥

परसराम हीरानन्द सचानन्दाणी 'ज़िया'

एक भरपेट मिष्टान्न खावे, एक अन्न-कण को तरसे।
इस समय के भेद को तुम सब मिटाते चलो॥

वैद्यो की न राह देखो, रोग-निदान परखो स्वयम्।
दैवी शक्ति के विभव से वेदना नसाते चलो॥

दुःख है सुखो की शोभा, दुःख लाते साथ में सुखों को।
युक्ति से प्रतिकूलताओ का सामना करते चलो॥

जलधि के गम्भीर जल मे डुबकी लगा मुक्ता-फल सञ्चय करो।
सब जौहरियो को यह शुभ सूचना देते चलो॥

उजाड़ो में मंडियाँ लगे मरुभूमि में हरियाली हो।
जंगल में ए 'जिया' मंगल मनाते चलो॥

परसराम हीरानन्द सचानन्दाणी 'ज़िया'

हसरत

दिलि में ई रह्या दिलि जा अरमान,
होठनि ते अची निकिरी न सघ्या !
सीने में उथ्या उथमाथ घणा,
पर हरफ़ बणी उदि॒री न सघ्या !

ख़ामोश रही जे कंहिंजी ज़बाँ,
छो मुंहिजी ज़बाँ ख़ामोशि रहे ?
तूफ़ान अन्दरि उभिरिया त घणा,
बा॒हरि से छुटी छुटिकी न सघ्या !

ज़ाहिरु जे कयां मां साफु अयाँ,
दर्दनि जो बयाँ, थिए दा॒ढो ज़ियाँ,
तंहिंखां मूं चयो भुलिजी से वञां,
लेकिन् से भुली, भुलिजी न सघ्या !

लोकनि खां लिकायुमि पाणु लिकी,
पर बा॒फ न मूं बा॒हरि बु॒रिकी,
लुड़िकनि खे छिपायुमि ख़ूबु छिपी,
पर लुड़िक छिपी छिपिजी न सघ्या !

दुनिया खां रह्या कुझु कीन लिको,
बदिनामु थियुसि हरि जाइ फिको,
'अफ़सोसु मगर गुमनामु पिरीं,
समुझी बि मूंखे समुझी न सघ्या !

बलदेव गाजरा 'गुमनाम'

लालसा

दिल के उद्वेग दिल में ही रहे,
ओठो पै आकर भी निकल न सके।
अन्तर में उठे आवेग बहुत,
किन्तु शब्द बनकर वे उड़ न सके।

जिह्वा किसी की जो मौन रही,
क्यो मेरी जिह्वा भी मौन रहे ?
हृदय में अनेको ऑधियाँ उठी,
बाहर निकलकर वे चल न सकी।

प्रकट करूँ जो मै स्पष्टतया
पीड़ाओ का वर्णन, होवे बहुत क्षति।
इसलिए मैने कहा मै भूल ही जाऊँ
मगर मै भूलकर भी उनको भुला न सका।

लोगो से छिपाया अपने को छिपा,
चूँ तक न किया बाहर कुछ भी।
दृग्जल को छिपाया छिप करके बहुत,
किन्तु ऑसू छिपकर भी छिप न सके

दुनिया से रहा कुछ गुप्त नही,
बदनाम हुआ सर्वत्र लज्जित।
किन्तु दुःख है कि प्रियतम 'गुमनाम'
समझकर भी मुझे समझ न सके॥

बलदेव गाजरा 'गुमनाम'

ग़ज़लु

खणी प्यालो चपनि ताईं थे आंदुमि पर, अडे साकी !
मूंखे उन में नजरि तुहिजो ई हुस्ने माहताबु आयो !

रमी वेई रगुनि मे, खून जे हर् बून्द में सूरत,
दिठुमि, साम्हूं निगाहुनि में उहोई बानिक़ाबु आयो ॥

थे खोल्युमि पंहिजे माजीअ जे हयातीअ जे पननि खे जिअं,
त हर् हिकु वर्कु मू लइ, जफ़ा तुहिजीअ जो बाबु आयो ॥

गम दिलि खे भुलाइण लइ त वठिजे ओट थी मै जी,
मगर ढुक ढुक सां उनजे, यादि तुंहिजीअ जो अजाबु आयो ॥

पियां थो, पर हथनि में कीन मै आहे न पैमानो,
ही जादू आ निगाहुनि जो, या दिलि में इन्क़िलाबु आयो ॥

अगे दिलि बीअ विझी थे यादि तुहिजी मू भुलाईं पर,
अग्यां तुंहिजे छो अहिडीअ सख्तु दिलि खे भी हिजाबु आयो ॥

मूं समुझ्यो चीज़ हो खुदि खे, खुदी भी हुई ऐं ईमॉ भी,
मगर् थियुसि शरमन्दो तुंहिजो, अग्यां जिअं आबो ताबु आयो ॥

मोती 'प्रकाशु'

ग़ज़ल

ओठो तक प्याला उठाकर लाया किन्तु, हे साक़ी।
उसमें आपका चॉद जैसा रूप नजर आया॥

नस-नस में औ लहू के हर क़तरे में समा गई तेरी सूरत।
देखा सामने निगाहो में वही बानकाब आया॥

अतीत के जीवन के पन्नो को जैसे मैने पलटा।
प्रति पृष्ठ पर तेरी क्रूरता का अध्याय नजर आया॥

ह्रदय का शोक भुलाने को मै का आसरा लेता।
घूँट-घूँट पर किन्तु उसके तेरी स्मृति का संताप आया॥

पीता हूँ, मगर हाथो में वह मै है न पैमाना,
यह जादू है निगाहो का या ह्रदय में कोई तूफान आया॥

ह्रदय अन्यत्र लगाकर तुझे मैने भूलना चाहा।
किन्तु तेरे पाषाण-ह्रदय के सामने क्यो मै शरमाया ?

मै अपने को कुछ चीज समझता था आपा भी था विश्वास भी।
किन्तु हुआ लज्जित जैसे तेरा सौन्दर्य सामने आया॥

मोती 'प्रकाश'

दिलि जी तलब

अहिड़े हन्ध ते पंहिंजो मकानु कजे,
जिति भुलिजी बि कोई न पेरु भरे।
न सताइण लइ कोबि दुश्मनु अचे,
न का दिलिड़ी वठण जी का दोस्तु करे ॥

हुजां मां ब॒ी न का ताति रहे तन में,
कंहिंजो पूरु न मूरु पवे मन में,
पंहिंजे दिलि जे समुंड जे दरपन में,
पियो पंहिंजो हमेशह अकसु तरे ॥

मुंहिंजे हस्तीअ मे शौक़ जी मस्ती रहे,
नितु हथ मे पियालो अलस्ती रहे,
मरु किअं बि जहाँ जी बस्ती रहे,
मनु मौज मंझां थी महीनु मरे ॥

दिलि मुंहिंजी इश्क जी खाणि हुजे,
हिक पियार जी जिति छिकताण हुजे,
कोई चाहे न चाहे न काणि हुजे,
रहे वेझे में वेझो परे खां परे ॥

नितु हालति दिलि जी समानु रहे,
दुख सुख जे असर खां थी दूरि पवे,
भलि आगि हवा जलु जोशु वठे,
न पुसे न सुके न ब॒रे न ठरे ॥

दिलि चाहे थी जिअरे ई ख़ाकि थियां,
अचे मौतु उन्हीअ खां अग॒ ई मरां,
हर आम कनां थी निरासु रहां,
गो॒ले जे बि क़ज़ा थी वतालु वरे ॥

हृदय की अभिलाषा

ऐसे स्थल पर निवास हो अपना,
जहाँ भूलकर भी कोई पाँव धर न सके।
सताने के लिए न कोई अमित्र आवे,
न कोई मित्र दिल को लुभाता हो ॥

केवल मै होऊँ, चित्त में चिन्तन न और कोई,
मन में मनन न कोई और रहे।
निज हृत्समुद्र के दर्पण में,
तैरता रहे सदा निज प्रतिबिम्ब ॥

अस्तित्व में मेरे रहे शौक की मस्ती,
हाथ में शाश्वत प्याला रहे।
दुनिया की बस्ती कैसे भी रहे,
मन मौज से मोम हो मृत बने ॥

प्रेम की खान हो मेरा हृदय,
जहाँ स्नेह की केवल खींचातान रहे।
कोई चाहे न चाहे परवाह न रहे,
समीप से समीप दूर से दूर रहे ॥

मन की दशा सतत समान रहे,
दुःख सुख के प्रभाव से दूर रहे।
क्षोभ में आवें जल ज्वाला पवन,
न गीला हो न शुष्क, न ठण्डा हो न जले कभी ॥

मन चाहता जीते जी धूलि बनूँ,
निधन आने से पहले ही मिटूँ मरके।
सब आशाओ से मै मुक्त रहूँ
नियति भी ढूँढे तो विभ्रान्त रहे ॥

अजु शौकु अज़ीज़ खे शाही थियो
बसि पंहिंजे पराए खां राही थियो,
कोन्हे हुनजो अलह रे को वाही थियो,
छदे मुल्कु, क़दमु थो अ़दम में, धरे ॥

लेखराज किशिनचन्द 'अज़ीज़'

शाही शौक हुआ है 'अज़ीज' को आज
अपने पराये से वह राही बना,
अल्लाह के बिना कोई साथी न बना,
संसार को छोड़ पॉव अगम में धरे ॥

लेखराज किशिनचन्द 'अज़ीज़'

ग़ज़लु

१. बर पटनि में बाग़ जी रंगति रचाईंदा हलो।
पियारु ऐं विश्वासु जनता जो वधाइंदा हलो॥

२. रहबरनि खे रहबरी जनता जे जज़्बनि खां मिले।
ग़मु, ख़ुशी पंहिंजी कि तिनि जी साॻी भाईंदा हलो॥

३. मुंदतनि खां साज़ में जे गीत घटिबा पिए रह्या।
दिलि जा से अर्मान अॼु बे ख़ौफ़ ॻाईंदा हलो॥

४. हिक नईं दुनिया अदॖण लइ वक़्तु ललकारे पियो।
वक़्त जी ललकार रॻ रॻ में समाईंदा हलो॥

५. पीड़िबी औरत न जिति इनिसान खां इनिसानु को।
सुरॻधाम्युनि जे हक़नि खे पिणि लॼाईंदा हलो॥

६. मोत्युनि जेदॖो क़दुरु रखंदा पसीने जा फुड़ा।
पारखुनि खां मोत्युनि जो मुल्हु कथाईंदा हलो॥

७. हर् तरक़ीअ खे मथिए तबिक़े दॿायो आ सदा।
फ़ैसिल-कुन अॼु टकर लॻंदा, लॻाईंदा हलो॥

८. राह में रखन्दा मुसीबत जा पहाड़नि जा पहाड़।
ठोकरुनि सां बाल जां, तिनिखे नचाईंदा हलो॥

९. घिर्घिल्युनि मज़हब जे नीत्युनि जा बछींदा भूत से।
फूक सां हर् भूत जी क़लई उदॖाईंदा हलो॥

१०. नितु नओं पहरे ते रखन्दा हिकु ख़ुदा हर मोड़ ते।
चिपु में घूरे हर् ख़ुदा जो सिरु झुकाईंदा हलो॥

११. हमख़याली यकवुजूदी पहिंजी आलमगीर आ।
हल्चलुनि सां जगु जो सिरु ऊचो कराईंदा हलो॥

सुगन आहूजा

ग़ज़ल

मरुभूमियो में उपवनो की रंगत रचाते चलो।
प्रेम और विश्वास जनता का बढ़ाते चलो॥

रहबरो की रहबरी जनता के आवेगों से मिले।
शोक हर्ष उनका व अपना एक-सा समझते चलो॥

चिर काल से जो वाद्य में गीत घटते रहे।
हृदय के उन उद्गारो को निभय हो गाते चलो॥

नवीन सृष्टि के निर्माण हित समय है ललकारता।
समय की ललकार को नस नस में समाते चलो॥

पीड़ित जहाँ अबला न हो मानव से मानव कभी।
दिवौकसों के अधिकारो को भी लजाते चलो॥

मोतियो के मूल्य सम पसीने के कतरे होगे।
पारखियो से मूल्य मोतियो का ॲकवाते चलो॥

उच्च वर्ग ने है धर दबाये उन्नति के साधन सभी।
अन्तिम निर्णय के आज टक्करे लगेगे, उनको लगाते चलो॥

मार्ग मे रखेगे वे कष्टो के भारी पहाड़।
ठोकरो से गेद जैसे उनको नचाते चलो॥

शिथिल धार्मिक नीतियो के चिपका देगे भूत वे।
फूँक से हर भूत की कलई उड़ाते चलो॥

हर मोड़ के पहरे पै रक्खेगे वे एक देवता।
शान्ति पूर्ण निरीक्षण से उसका सिर नवाते चलो॥

एकता सम विचार-धारा जग में प्रसिद्ध है अपनी।
हलचलो मे सिर जगत का ऊँचा कराते चलो॥

सुगन आहूजा

हिन्दी

चयन : नगेन्द्र
हरिवंशराय बच्चन

कवि-नाम	कविता
'अंचल' रामेश्वर शुक्ल	मन मंज़िल के पास है
'अज्ञेय' स. ही. वात्स्यायन	योगफल
उदयशंकर भट्ट	शब्द और अर्थ
धर्मवीर भारती	यह ढलता दिन
नरेन्द्र शर्मा	आकाश-पुरुष
'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी	गीत
बालकृष्णराव	मणिधर
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	'अहमिति'—प्रथमा विभक्ति
भगवतीचरण वर्मा	स्वीकार करो !
भवानीप्रसाद मिश्र	गीत-अगीत
भारतभूषण अग्रवाल	सूखे की पुकार
माखनलाल चतुर्वेदी	रात नहीं ठहरी
मैथिलीशरण गुप्त	अब वे वासर बीत गए
रामकुमार वर्मा	साधना के स्वर
सियारामशरण गुप्त	निर्भ्रान्ति
सुमित्राकुमारी सिनहा	गीत
सुमित्रानंदन पंत	शान्ति और क्रान्ति
हंसकुमार तिवारी	निरर्थक

मन मंज़िल के पास है

पैर भले डगमग हों मेरे मन मंज़िल के पास है

डूबे-डूबे प्राण किसी की याद नहीं सह पा रहे
मेरी प्रगति-भावना मेरे शब्द नहीं कह पा रहे
आज ढकी आँखों से मेरे गीत नहीं बह पा रहे
मेरे जल के स्रोत किसी के मरु में सूखे जा रहे
कंपित हृदय—अकंपित मेरी आभा का उल्लास है
पैर भले डगमग हों मेरे मन मंज़िल के पास है

होता व्यर्थ अधूरी पूजा में अर्पित उपहार कब
बुझ-बुझकर जलते दीपक का निष्फल ज्योति-प्रसार कब
पूजा के पहले मुरझाने वाला फूल असार कब
है संकल्प अडिग तो ठहरी दिल की विकल पुकार कब
इस असफलता में भी मेरा अभय सदा अविनाश है
पैर भले डगमग हों मेरे मन मंज़िल के पास है

मेरी ही मादकता मुझको लिपट-लिपटकर घेरती
बिछुड़ गई जो साध सदा को सजल दृगों से हेरती
अभिमानी मन की उमड़न क्यों धार न अपनी फेरती
जनम-जनम की विफल वासना रह-रह मुझको टेरती
कुछ भी हो पर मुझे तुम्हारी करुणा पर विश्वास है
पैर भले डगमग हों मेरे मन मंज़िल के पास है

जीवन के आलोक-तिमिर सब मंज़िल को पहचानते
ये बेकाबू स्वप्न उसीको एक बसेरा मानते
मन के सारे कम्प पुलक आनंद उसे अनुमानते
वहाँ पहुँचकर राग और रस नहीं लौटना जानते
हो कितनी भी दूर मगर मिलता भू से आकाश है
पैर भले डगमग हों मेरे मन मंज़िल के पास है

'अंचल' रामेश्वर शुक्ल

योगफल

सुख मिला :
उसे हम कह न सके।
दुख हुआ :
उसे हम सह न सके।
संस्पर्श बृहत् का उतरा सुरसरि-सा :
हम बह न सके।
यों बीत गया सब : हम मरे नहीं पर हाय कदाचित्
जीवित भी हम रह न सके।

'अज्ञेय' स. ही. वात्स्यायन

शब्द और अर्थ

मेरे घन-से उमड़े मन में अनगिनत अर्थ है शब्द नहीं
अर्थों को इंगित अक्षर दो
मत दो शब्दों का आडम्बर
केवल अर्थों को अंबर दो !

१

मधुवन के फूलो कलियों का निःस्वन कंपन—
सौरभ-लहरों की नई कलम से मिलता है जो
मर्म-व्यथा की स्याही से सब आत्म-कथा—
नभ-नक्षत्रों के भौंरों का मन हिलता है,
किस गायक ने गीतो की दी थी एक कड़ी कोकिल में भर,
मधु वाणी दी कलियों को जिस पर मँडराता है मुग्ध भ्रमर,
उस मधुवन की वाणी का क्या है अर्थ नया
कौन नई भाषा के स्वर वे कौन अभिव्यंजना प्रखर,
अर्थों को इंगित अक्षर दो,
मत दो शब्दों का आडम्बर
केवल अर्थों को अम्बर दो !

२

जो घन का उन्मादी मद पी झंझा के अश्वों पर गर्वित,
नयनों की स्वर्णिम कशा चलाता डूबा अपने मद अर्पित,
पर्वत के बिरवों की फुनगी पर झूम-झूम
गाता है चंचल महाकाल का प्राण चूम,
हारिल के पंखों में भरता है गति बडवानल की
मन की बिजली में साहस के सागर लहरें पल-पल पी

हंसिनी चचु से तोड़ रही मोती के कण,
जैसे मस्ती में होते रहते हो उमंग के रण।
मर्म-कथा के मौन सृजन को कब क्या शब्द दिये तुमने,
मानस-सरि की मुग्ध लहर क्रीड़ा को क्या-क्या शब्द दिये तुमने
उद्ग्रीव नाग जो 'हिंस हिस' करता, बोल रहा है दूरी पर
नथुनों से पानी फेंक मछलियाँ बोल रहीं हैं जो भाषा,
मुझे बताओ कौन शब्द है, क्या वाणी ?
मैं न समझ पाया हूँ अब तक वह वाणी उत्सुक प्राणी
इसीलिए कहता हूँ उत्सुक—
अर्थों को इंगित अक्षर दो
मत दो शब्दों का आडम्बर
केवल अर्थों को अम्बर दो !

३

हे अननुभूत हे अनुपमेय !
हे अर्थब्रह्म, तुम अविज्ञेय !
मैं अहं व्यथित, मै दर्पचूर,
मैं बहुत दूर हूँ, बहुत दूर,
मेरे स्वर टूटे काँप रहे
मेरी निर्बलता नाप रहे
वह बिजली जो नभ में बोली
छितराकर सूरज की रोली,
वह घनन-घनन घन का गर्जन
आकाश देवता का पूजन,
आरती पवन, नक्षत्र दीप,
वह दुग्ध नदी के मौक्ति सीप,
किंजल्कों का चंदन पराग,
जो काल अग्नि का विश्वभाग,

नक्षत्र-लोक के स्तुति-गायन,
प्राणों से परे अरे उन्मन।
मैं इनको कहाँ बाँध पाता हूँ अपने छंदों में
मै अभिव्यक्ति से शून्य प्राण अनुबंधो में
कितनी छोटी मेरी वाणी।
मैं नाप नहीं पाता हूँ तुमको
महाअर्थ को, महाशब्द को
यदपि मानता रहा तुम्हें हूँ कल्याणी,
जो चिड़िया के मधुर कंठ से गीत चटखकर छूट रहा,
और शरद की राका में जो,
सागर लहरों की उमड़न मे किरणों के
सम्मिलित गान से फूट रहा,
वह मेरे ससीम शब्दो में अरे, कहाँ भर पाता है,
तेरा गायन मेरी सीमा छू-छूकर रह जाता है,
इसीलिए कहता हूँ तुमसे
मेरे घन से उमड़े मन में जीवन्त अर्थ है शब्द नहीं
अर्थों को इंगित अक्षर दो !
मत दो शब्दा का आडम्बर
केवल अर्थों को अंबर दो !

उदयशंकर भट्ट

यह ढलता दिन

यह ढलता दिन बिखरे बादल, बेहद डूबा-डूबा-सा जी
जैसे कोहरे में डूबी हो, रंगीन गुलाबों की घाटी
अनजान दिशाओं में जाती, यह श्याम घटाओं की रेखा
मटमैले ऑचल पर मोती-सा
चॉद ढलक आया, लेकिन—
मैंने जो ऑसू पोंछ लिया, किसने जाना, किसने देखा?

नावों ने लंगर डाल दिये, घाटों पर संध्या-दीप जले
मेले से सब राही लौटे अपनी-अपनी चौपाल तले
गहना-गुरिया, पंखे-डलिया, टिकुली-बेंदी, सेंदुर-सारी
सोरह सिंगार सजे, सब गॉव
उनींदा हो आया, लेकिन—
सुनसान कछारों से मुझको आवाज़ किसी ने सहसा दी

आवाज़ मगर वह झूठी थी, नावें झूठी, मेले झूठे—
ये बादल शक्ल बदलते हैं, बादल उमडे, बादल टूटे
जी टूटा-सा था बहक गया, यह बादल का ताना-बाना
कुछ गॉव बसे, कुछ गॉव मिटे
बॉहों मे चुपके से लेकिन—
मैंने जो आँसू पोंछ लिया, किसने देखा, किसने जाना

यह बादल का ताना-बाना
बेहद डूबा-डूबा-सा जी
जैसे कोहरे में डूबी हो
रंगीन गुलाबों की घाटी

धर्मवीर भारती

आकाश-पुरुष

बार-बार आकाश-पुरुष आए कुटिया के द्वारे !
एक बार भी कहा न मिट्टी ने, प्रभु, भले पधारे !

किया न उठकर आदर, आए अतरिक्ष के स्वामी,
पहचाना भी नहीं, खडे थे सन्मुख अन्तर्यामी,
पौढी रही तिमिर की चादर ओढे, पॉव पसारे !

चिर-परिचित के प्रति वह निपट अपरिचित रही अयानी,
आकर चले गए अभ्यागत, मिट्टी तब पहचानी,
जब कि कंटकाकीर्ण पंथ में हॅसे शूल हत्यारे !

फूल चढ़ाना भूल, शूल पर चढा दिए अवतारी,
मिट्टी के पुतले युग-युग से बने रहे अविचारी,
मिट्टी के कारण प्रदीप के चरण रहे ॲधियारे !

बार-बार बलिदान लिया, पर मिट्टी नहीं अघाई,
मिट्टी की निष्ठुरता निशि-दिन अधिक-अधिक अधिकाई,
भूल गई मृण्मयी, प्राण मिट्टी को नहीं बिसारे !

अमित कृपा आकाश-पुरुष की, आते रहे निरंतर,
आज नहीं तो कल कञ्चन होगा यह मिट्टी का घर !
प्राण निछावर करते-करते महाप्राण कब हारे ?

हॅसते रहे शूल धरती पर, रोते रहे कमल-दल,
सप्तसिन्धु बनकर लहराता रहा धरा का ऑचल
गए देव जब रक्त-रंजिता छाया छोड़ किनारे !

आए तब पहचान न पाई उनकी पैछर सुनके,
चरण नहीं, वह चरण-चिन्ह ही रही पूजती उनके !
जागी भी तो कब जागी, जब प्रियतम दूर सिधारे !

जाने अब कब आएँगे फिर आहत अन्तर्यामी ?
कब दो चिन्मय चरणों के दो दृग होंगे अनुगामी ?
कब आकाश-पुरुष के सिर पर नहीं चलेंगे आरे ?

लपट बनेगी कब यह मिट्टी, उठकर गले लगेगी ?
टूटेगी हथकड़ी-बेडियाँ, कब मृण्मयी जगेगी ?
आएँगे आकाश-पुरुष कब मिट्टी का तन धारे ?

नरेन्द्र शर्मा

गीत

जी में न लगी जो विकल प्यास,
आँखो न देखने आना तुम!
भरकर न रही जो छबि उदास
तो कभी न उस घर जाना तुम!

कहते-कहते जग हार जाय,
रहते-रहते मन मार जाय,

जो उडे न अम्बर हरे बास
तो अपने भाव न लाना तुम!

कलियों के हारों बहु प्रकार,
उर लहरे गन्ध, बहे बयार,

यदि मिला न तुमसे हृदय छन्द,
तो एक गीत मत गाना तुम!

'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी

मणिधर

मुड़कर देखा महाव्याल ने
पूँछ,
सदा की भाँति,
आज भी पिछड़ गई थी।
फण बेचारा,
मणि-मंजूषा, विष-घट का
दायित्व-भार ले
चलता रहा अकेला अब तक
आगे-आगे।

कितनी बार कहा—
दोनों जिह्वाएँ
भिन्न उपायों से प्रोत्साहित
करती रहीं पूँछ को,
कहती रहीं कि है उसका अधिकार
कि वह भी अपना योग-दान दे,
हो प्रवीण फूत्कार कला में,
दंशन में पटु—

पर बेकार हुई सब शिक्षा,
पिछडी ही रह गई पूँछ,
रेंगती, घिसटती—
पहुँची यों ही विवर-द्वार तक।
एक बार फिर
फण ने मुड़कर
देखा पिछड़ी हुई पूँछ को,

फिर नत मस्तक,
हतोत्साह,
कर गया प्रवेश
विवर में अपने
फण एकाकी
आगे-आगे।

बालकृष्ण राव

अहमिति'–प्रथमा विभक्ति

सन्ध्या आई ! किन्तु न आई कृति-अनासक्ति,
अब भी है कर्मों में 'अहमिति'-प्रथमा विभक्ति।

१

यह कर्तृत्वाभिमान-भार-वहन-शील जन्तु,—
सन्तत हा तने हुए हैं जिसके स्नायु-तन्तु,—
मनःशान्ति पाने को उत्सुक तो है, परन्तु,—
नही जानता छोडे कैसे कर्मानुरक्ति ?
उसके कर्मों में है 'अहमिति'-प्रथमा विभक्ति।

२

जीवन-उपवन में हो शुद्ध कर्म-बीज-वपन,
और, सतत निरलस हो श्रम-कण-सीवर-सिचन,
तब होगा अकुर फिर अंकुर से विटप सघन।
फल भी होंगे, पर जब हिय जागे फल-विरक्ति,—
तभी मनुज पाएगा अरुज कर्म अनासक्ति।

३

तुम एकाकी कैसे हो फल के अधिकारी ?
तव फलांश ग्राही है सामाजिकता सारी।
कैसे तब कर्मों की फूलेगी फुलवारी ?
उसकी रक्षा में तो लगती है सघ-शक्ति,
तब क्यो हो कर्मों में 'अहमिति'-प्रथमा विभक्ति ?

४

फलमिदम् न मम—यह है जीवन का महा मन्त्र,
इसी मन्त्र के बल हैं सधते सब कर्म-तन्त्र।
पावन बन जाते हैं इससे उपकरण-यन्त्र
यों नर-नारायण की मिलती है अचल भक्ति
यों होती है विलीन 'अहमिति'-प्रथमा विभक्ति।

५

तू ज्ञानी है करता बातें तो बड़ी-बडी,
पर, क्या यह योग सधा तुझसे एकाध घडी?
मन की कह, पोथी की रहने दे बात पड़ी।
संध्या आई, अब तो हृदयंगम कर असक्ति,
खण्ड-खण्ड कर दे रे, 'अहमिति'-प्रथमा विभक्ति।

'नवीन' बालकृष्ण शर्मा

स्वीकार करो!

अर्पित मेरी भावना—इसे स्वीकार करो!
तुमने गति का संघर्ष दिया मेरे मन को
सपनों को छबि के इन्द्र-जाल का सम्मोहन,
तुमने आँसू की सृष्टि रची है आँखों में
अधरा को दी है शुभ्र मधुरिमा की पुलकन!
उल्लास और उच्छ्वास तुम्हारे ही अवयव
तुमने मरीचिका और तृषा का सृजन किया,
अभिशाप बनाकर तुमने मेरी सत्ता को
मुझको पग-पग पर मिटने का वरदान दिया।
मैं हँसा तुम्हारे हँसते-से संकेतों पर
मैं फूट पड़ा लख बंक भृकुटि का संचालन,
अपनी लीलाओं से हे विस्मित और चकित,
अर्पित मेरी भावना—इसे स्वीकार करो!

* * *

अर्पित है मेरा कर्म—इसे स्वीकार करो!
क्या पाप और क्या पुण्य—इसे तो तुम जानो,
करना पड़ता है, केवल इतना ज्ञात यहाँ!
आकाश तुम्हारा और तुम्हारी ही पृथ्वी,
तुममें ही तो इन साँसों का आघात यहाँ!
तुममें निर्बलता और शक्ति इन हाथों की,
मैं चला, कि चरणों का गुण केवल चलना है,
ये दृश्य रचे, दी वहीं दृष्टि तुमने मुझको।
मैं क्या जानूँ क्या सत्य और क्या छलना है!

रच-रचकर करना नष्ट तुम्हारा ही गुण है।
तुममें ही तो है कुण्ठा इन सीमाओं की।
हे निज असफलता और सफलता से प्रेरित,
अर्पित है मेरा कर्म—इसे स्वीकार करो!

* * *

अर्पित मेरा अस्तित्व—इसे स्वीकार करो!
रंगों की सुषमा रच मधुऋतु जल जाती है।
सौरभ बिखराकर फूल धूल बन जाता है।
धरती की प्यास बुझा जाता गलकर बादल।
चट्टानों से टकराकर निर्झर गाता है!
तुमने ही तो पागलपन का संगीत रचा,
करुणा बन गलना तुमने मुझको सिखलाया।
तुमने ही मुझको यहाँ धूल से ममता दी।
रंगों में जलना मैंने तुमसे ही पाया!
उस ज्ञान और भ्रम मे ही तो तुम चेतन हो
जिनसे मै बरबस उठता-गिरता रहता हूँ।
निज खण्ड-खण्ड में हे असीम, तुम हे अखण्ड!
अर्पित मेरा अस्तित्व—इसे स्वीकार करो!

भगवतीचरण वर्मा

अगीत

एक रोज़ आश्वास दूसरे दिन दुश्चिन्ता,
बडे मजे का क्रम है !
जलो-बुझो सौ बार महफिलों मे
जब जिसको जैसा भाए
अपनी इच्छा भ्रम है !!

आज सबेरे उठा तो जैसे
क्षितिज कोर पर झलक तुम्हारी दिखी
और स्वर सुना
कि मै आता हूँ रुकना,
मै क्या जानूँ इसका मतलब था
कि शाम तक बैठे रहना
और रात आधी हो जाए जब
तब रोना और सुबुकना !
हाय सबेरे कितनी किरणें
और अभी जिसमें सब-कुछ खो गया
कि इतना तम है !

मुझको लगता है कि ज़ोर से हँसूँ
और कुछ नही,
हँसी का हिचकी को
हल्का-सा झटका लगे !
दुःख न समझे यह
कि ठीक मंज़िल तक वह आ गया
उसे कुछ भटकी-भटका लगे !
किंतु असाध्य हिचकियाँ
रोके रुकतीं नहीं,

हँसी की गर्दन ख़म है !
एक रोज़ आश्वास, दूसरे दिन दुश्चिता
बड़े मज़े का क्रम है !

जैसे जल पर किसी वृक्ष के
टूटे पत्ते गिरते,
वैसे मेरे ख़्याल गगन-भर
मारे-मारे फिरते !
'जिनके ख़्याल सुबह निकले थे
शाम हुई घर आये,
याने जिस मतलब से निकले थे
उसको कर आये,
उनके ख़्याल नीड़ के बंदे
और गगन के गरज़ी
किसी डोर में बँधी पड़ी है
उनके मन की मरज़ी।'
ऐसा बोध लगाकर मैंने
कभी-कभी सुख माना
बोल-चाल में मगर इसे
कहते हैं, मन समझाना !

सच तो यही प्यार के बंधन का
आनन्द बहुत है,
नीड-हीन नभ
लाख खुला है
लेकिन बद बहुत है !

भवानीप्रसाद मिश्र

सूखे की पुकार

सूखे तपे खेत-सा ही चौड़े में पड़ा हुआ
चुनौतीदार धूप से निरन्तर लड़ा हूँ मै !
रूखे खिन्न ठूँठ-सा कटारीदार लू की चोट
झेलता, झुलस गया फिर भी खड़ा हूँ मै !
पोखर-से प्यासे इन प्राणों की सतह
पहले कीच-सी गिलाई
फिर जमी, सूखी,
और फिर अन्त में काग़ज़-सी फट गई;
फिर भी डटा ही रहा
भागा नहीं,
हंस-सा, बलाक-सा
होके उड़न-छू
किसी पर्वत की रानी से
ठण्डी हिमछाँह का सहारा कहीं माँगा नहीं,
माँगा नहीं मैंने कोई कृत्रिम उशीर-पट।
खुला ही रहा हूँ नित,
अपनी अनन्त मोहमयी इस माटी पै
बिछा ही रहा हूँ
अरे ! फैला ही रहा हूँ
और कसके तपा हूँ, खूब डट के तचा हूँ मैं !
ओ रे मेरे मेघ रे !
फिर भी बचा हूँ, देख, फिर भी बचा हूँ मैं !!

तो फिर ओ मेघ ! आज अपनी फुहार से
मेरा दग्ध मन क्या न शीतल करेगा तू ?
धरती के ताप, मेरे तप के प्रमान रे !

खेतों को भरेगा,
ठूँठ रूखों को करेगा हरा,
सिर्फ मेरे अन्तर की दरकी दरारों को
प्लावित किये बिना
फूटी इन पोरों को क्या रीता छोड़ जायेगा?
कृपा नहीं चाहता हूँ,
दान नहीं माँगता हूँ,
मेरा एक भाग जो है आज तेरे पास
और जिसका हूँ मै ही एक-मात्र सही अधिकारी
वह मुझे लाके दे!
कजरी की एक मेरी तान
इन मल्हारों की एक मेरी कड़ी
कहाँ छोड दी?
उसको उठाके दे!
आ रे आ, झूँखे इन अंगो पै उतरकर
अपना सलोना श्याम बिन्दु-चीर डाल दे,
खिन्न, छिन्न-भिन्न इन प्राणों पर
बाँध फिर रस का सेतु!
मेरी इस दाहिनी भुजा में थमा
अंकुर की रंग-ध्वजा
जीवन का जय-केतु!
कब से तरस रहीं पथराई आँखें ये
इन्हें गीले काजल की रेख से परस जा!
आ जा रे, बरस जा!

भारतभूषण अग्रवाल

अब वे वासर बीत गए

मन तो भरा-भरा है अब भी
पर तन के रस रीत गए।
चमक छोड़ चौमासे बीते,
कम्प छोड़कर शीत गए
देकर सुध की ऊमस आगे
बढ़ कितने मधुमीत गए।
इसे राम जानें, जीवन में
हारे वा हम जीत गए,
इतना ही थोड़ा क्या, जो अब
गूँज बची है, गीत गए।

मैथिलीशरण गुप्त

साधना के स्वर

सजल जीवन की सिहरती धार पर,
लहर बनकर यदि बहो तो ले चलूँ !
यह न मुझसे पूछना, मैं किस दिशा से आ रहा हूँ
है कहाँ वह चरण-रेखा, जो कि धोने जा रहा हूँ
पत्थरों की चोट जब उर पर लगे,
मधुरतर 'कल-कल' कहो तो ले चलूँ !

मार्ग मे तुमको मिलेगे, वायु के प्रतिकूल झोंके
दृढ़ शिला के खड होगे. दानवों-से राह रोके
यदि प्रपातों के भयानक तुमुल में,
भूलकर भी भय न हो तो ले चलूँ।

हो रहीं धूमिल दिशाएँ, नींद जैसे जागती है
बादलों की राशि मानो मुँह बनाकर भागती है
इस बदलती प्रकृति के प्रतिबिम्ब को
मुस्कराकर यदि सहो तो ले चलूँ !

मार्ग से परिचय नहीं है, किन्तु परिचित शक्ति तो है
दूर हो आराध्य चाहे, प्राण मे अनुरक्ति तो है
इन सुनहली इन्द्रियों को प्रेम की—
अग्नि से यदि तुम दहो तो ले चलूँ !

वह तरलता है हृदय मे, किरण को मै लौ बना दूँ
झाँक ले यदि एक तारा, तो उसे मैं सौ बना दूँ

७८९ हिन्दी

इस तरलता के तरंगित प्राण में
प्राण बनकर यदि रहो तो ले चलूँ !
सजल जीवन की सिहरती धार पर
लहर बनकर यदि बहो तो ले चलूँ !

रामकुमार वर्मा

वह विकल आभा तुम्हारी ये हमारे
दीप्त गति-बल-सत्व-प्राण-प्रयास;
दूर भी मृदु हास लहरित तुम यहीं पर हो
निरन्तर नित हमारे पास ॥

सियारामशरण गुप्त

गीत

साधना के दिवस मेरे कामना की रैन।

कर रही डगमग पगों से अडिग-पथ की माप,
अनमिले वरदान को मैं खोजती ले शाप,
लगन-राधा, लक्ष्य-मोहन-हित हृदय का क्षीर
यत्न-कर से मथ रही नवनीत, ले दृग-नीर,
और चलते जा रहे हैं भावना के सैन।
साधना के दिवस मेरे कामना की रैन।

एक दिन दुख पास मेरे आ गया घर छोड़,
और छिन मे युगो का बन, रम गया सँग जोड,
बाट तब से देखती आए भटक सुख-मीत,
औ' इसे बहला रही हूँ दे मधुर उर-प्रीत,
खीझ रूठूँ, रीझ बोलूँ, याचना के बैन।
साधना के दिवस मेरे कामना की रैन।

अब यही क्रम, रात की मासि मे स्वरों को बोर.
आस औ' विश्वास के लिख गीत कर दूँ भोर,
गीत जिनमें तृप्ति की हो छटपटाती प्यास,
और जिनकी नींव पर रच दें भवन इतिहास,
रह खिलें बन फूल, मुँद आराधना मे नैन।
साधना के दिवस मेरे कामना की रैन।

सुमित्राकुमारी सिनहा

शांति और क्रान्ति

शांति चाहिए शांति! रजत अवकाश चाहिए
मानव को, मानस वह : महत् प्रकाश चाहिए,
आत्मा वह : हाँ, अन्न, वस्त्र, आवास चाहिए,
देही भी वह :—आज मुख्यतः देही वह, क्षण—
मनोविलासी,—आत्मा बनना है कल उसको!

हाय, अभागा, बुरी तरह से उलझ गया है
बाहर के जग में वह, बाहर के जीवन में—
जहाँ भयानक अधकार छाया युगांत का!
मानव के भीतर का जग, भीतर का जीवन
आज खोखला, सूना, जीवन्मृत, छाया-सा—
गत सस्कारो से चालित, प्रेतों से पीड़ित!!

खाई खंदक में, खोहों में, बीहड़ मग में
भटक गए जन के पग संकट की रेती में!
दलदल में फँस गया मत्त भौतिक युग, गज-सा,
अपनी ही गरिमा के दुःसह बोझ से दबा!
जीवन-तृष्णा, चक्की के पाटों-सी, उसके
घायल पैरों से है लिपट गई, बेडी बन!
धष्ट, निरंकुश, उच्छृंखल नर, आज, शील के
स्वर्णाकुश के प्रति असहिष्णु, अहंता शासित!

सोच रहा मैं,—नहीं स्पष्टतः देख रहा मैं,
महत् युगांतर आज उपस्थित मनुज द्वार पर!—
बदल रहे मानव के भौतिक, कायिक, प्राणिक,
सूक्ष्म मानसिक स्तर, आध्यात्मिक भुवन अगोचर!
बदल रहा, निःसंशय, मानव ईश्वर भी अब,—

युग-युग से जो परिचालित करता आया है
मानव जग को, लोक नियति को, जीवन मन को!
जैवी स्थिति से उच्च भागवत स्थिति तक, संप्रति,
घूम रहा युग-परिवर्तन का चक्र अकुंठित!

आज घोर जन-कोलाहल के भीतर भी मैं
सुनता हूँ स्वर शब्द-हीन संगीत अतंद्रित,—
मन के श्रवणों में जो गूँजा करता अविरत!
इस अणु उद्जन के विनाश के दारुण युग में
सृजन निरत है सूक्ष्म सूक्ष्मतर अमर शक्तियाँ
मानव के अंतरतम में,—जिनका स्वप्नों का
अक्षय वैभव, अतिक्रम कर युग के यथार्थ को,
अकथित शोभा भुवनों में पल्लवित हो रहा
मानस की अपलक आँखों के सम्मुख प्रतिक्षण!
सूक्ष्म सृजन चल रहा नाश के स्थूल चरण धर!

कवि-कपोल-कल्पना नहीं,—अनुभूत सत्य यह,—
घोर भ्रांतियों के युग का निर्भ्रान्त सत्य यह—
आरोहण कर रही मनुज चेतना निरंतर
शिखरों से नव शिखरों पर अब, उठती गिरती,
संघर्षण करती, कराहती,—चिर अपराजित!
इसीलिए, मैं शांति-क्रान्ति, संहार-सृजन को,
विजय-पराजय, प्रेम-घृणा, उत्थान-पतन को,
आशा-कुंठा को, युग के सुंदर-कुरूप को
बाँहों में हूँ आज समेटे,—उन्हें परस्पर
पूरक, एक, अभिन्न मानकर,—युग विवर्त के
क्रन्दन किलकारों में ध्यानावस्थित रहकर!

विस्मय क्या, यदि बदल रहा आर्थिक, सामाजिक
धार्मिक, वैयक्तिक मानव? यदि मनुज चेतना
अब सामूहिक, वर्गहीन बन रही बाह्यतः,
बिखर रहे यदि विगत युगों के मनःसंगठन,—
क्या आश्चर्य, बदलता यदि आमूल मनुज जग!

स्वयं, युगों का मानव ईश्वर बदल रहा अब,
निश्चेतन, उपचेतन, अंतश्चेतन के जग
परिवर्तित हो रहे, नए मूल्यों म विकसित!
उन पर आश्रित निखिल सांस्कृतिक संबंधों का
रूपान्तर हो रहा आज,—आवर्त शिखर में
घूम, पुनः जो संयोजित हो रहे धरा पर!—
विगत निषेधो, रूढि, वर्जनाओं को सहसा
छिन्न-भिन्न कर अपने प्रलयकर प्रवेग में,—
विस्तृत कर जीवन-पथ, निःसृत प्राणों का रथ?—
नैतिक आध्यात्मिक अतीत सक्रमण कर रहा,—
निखर रहे आदर्श-लोक, सौन्दर्य तत्त्व नव!

आज नया मानव ईश्वर अवतरित हो रहा
स्वर्ण रश्मियों से स्मित ऊषाओं के रथ पर,
तड़ित स्फुरित लतिकाओं में लिपटे पर्वत-सा,
अगणित सुर वीणाओं के झंकृत निर्झर-सा,
उन्मद भृंगों से गुंजित नव कुसुमाकर-सा!

भरते शत सीत्कार आज बाहर गत पतझर
सुलग रहा भीतर नव मधु का स्वर्गिक पावक!—
आत्मा के गोपनतम अंतर में प्रवेश कर
मानव-मन, हो अधिक पूर्ण, खुल रहा बहिर्मुख!

आज नाश के कर गढ रहे नवल मानव को,
नव इंद्रिय वह, विकसित इंद्रिय, अति इंद्रिय अब !

बदल रहा है मानव ईश्वर—बदल रहा है
मानव अतर, मानवता का रूपान्तर कर !

सुमित्रानंदन पंत

निरर्थक

सुना अनसुना रहा गूँजकर भी जीवन-संगीत।
अनचीन्हा चल दिया द्वार तक आकर मन का मीत।

एक बूँद शबनम की पथ पर छिटकी हुई पड़ी है,
आकर किरण कहीं से कोई ठिठकी पास खड़ी है,
हँसी-रुदन की आकुलता में जिसकी मौन कड़ी है—
लौट गया आकर कानों तक वह अनजाना गीत।

वह जो दूर गगन के कोने जगता रहा सितारा
दीये की लौ से जाने क्या करता गया इशारा
तब से तडपी लहर धार में दुखता रहा किनारा—
जलकर पिघल गई प्राणों मे अनपहचानी प्रीत।

स्वप्न लिये आँखों में चुप-चुप उतरा अगम अँधेरा
बंध-विमुक्त विहग ने तिनको का ज्यों लिया बसेरा
साँस कली की लुटा जोत पर जगमग जगा सबेरा—
आई फिर खो गई स्वप्न-सी अनदेखी परतीत।

हार थकी तब से फिर उसको बाँध न पाती वाणी
उमड़ सूखता गया नैन में परछाँई को पानी
बुद्धि खड़ी उपहास कर रही हृदय बड़ा अज्ञानी
किंतु रह गया निरा निरुत्तर क्षण जो हुआ अतीत।

हवा पोंछ ले गई धूल पर से पदचिन्ह अदेखा
उगी अमिट अनउगी रही पन्नों पर लेकिन रेखा
वे आँखें वह कंठ कहाँ जो हो यह धन्य अलेखा
विधि का एक काव्य युग-युग को अपठित रहा, अगीत।

हंसकुमार तिवारी

लिपि-संकेत

उड़िया

हिन्दी भाषा में जिस प्रकार 'अकारान्त' पदे अन्त्य 'अ'कार का तथा कहीं-कहीं बीच वाले 'अ'कार का भी उच्चारण लुप्त रह जाता है, उड़िया में वैसा नही है। उड़िया में हर जगह 'अ'कारान्त अक्षरो का पूरा-पूरा उच्चारण किया जाता है। हिन्दी भाषा के किसी एक वाक्य को उड़िया लिपि मे यदि लिखा जाय तो दो-चार हलन्त चिह्नो की जरूरत अवश्य पड़ जाती है।

उड़िया में ह्रस्व-दीर्घ की माप-तोल साधारणतया हिन्दी की तरह इतनी पक्की नहीं है। रूप, पूजा, भूषा आदि के दीर्घ 'ऊ'कारो का उच्चारण ह्रस्व उकार-जैसा याने रुप, पुजा, भुषा-जैसा भी होता है।

'य' का उच्चारण शब्द के पहले 'ज' की तरह होता है। यम, यामिनी, यज्ञ और यमुना आदि शब्दो का उच्चारण क्रमशः जम, जामिनी, जज्ञ और जमुना होगा। पर शब्द के बीच मे या अन्त में 'य' का ठीक-ठीक उच्चारण किया जाता है और उसके लिए 'य' के नीचे विशेष चिह्न लगाकर एक स्वतन्त्र अक्षर बना लिया गया है। 'र' के साथ मिलने से सभी जगह 'ज' का उच्चारण होता है, जैसे पर्ज्यन्त (पर्य्यन्त), पर्ज्याप्त (पर्य्याप्त)। किन्तु लिखने मे 'य' के स्थान पर कभी 'ज' नहीं लिखा जाता।

ल और ल़ (ळ) दोनो का व्यवहार उडिया मे प्रचलित है। साधारणतः शब्द के पहले ल और बीच में तथा अन्त में ल़ आता है। 'ल' शब्द के आदि, अन्त, मध्य हर जगह रह सकता है, लेकिन ल़ शब्द के पहले कभी नहीं आता। यथा: कमल़, धवल, निर्मल़; लतिका, सुलभ, पलक, लम्बा।

'ब' और 'व' का स्वतन्त्र व्यवहार उड़िया मे प्रायः नही है। समस्त तत्सम शब्दों के 'व'कारो का उच्चारण 'ब' जैसा होता है। बसन्त, भबन, नाब, बिकार, आदि शब्द लिखने तथा बोलने मे शुद्ध विवेचित होते हैं। हॉ, 'व' के लिए एक स्वतन्त्र अक्षर है, किन्तु उसका व्यवहार नहीं के बराबर है।

'क्ष' का उच्चारण 'ख्य'-जैसा होता है।

'ऋ' का उच्चारण 'रि' न होकर 'रु'-जैसा होता है। किन्तु इसका उच्चारण जरा हल्का रहता है।

कन्नड़

कन्नड़, तेलुगु, तमिष और मलयालम ये दक्षिण की चार भाषाएँ हैं और इसी नाम की उनकी लिपियाँ भी हैं। इनका वर्ण-क्रम नागरी के जैसा ही है, सिर्फ स्वरो में ह्रस्व 'ए' और दीर्घ 'ए', ह्रस्व 'ओ' और दीर्घ 'ओ' का भेद है और वह बताना ही पडता है। अंग्रेजी get या met में यह ह्रस्व 'ए'-पाया जाता है। इसी तरह अंग्रेजी शब्द gate और mate में दीर्घ 'ए' पाया जाता है। दक्षिण की भाषाएँ अगर नागरी मे लिखनी हो तो यह ह्रस्व-दीर्घ भेद बताने होगे।

कन्नड की वर्णमाला में 'ऐ' और 'ओ' स्वरो का लघु रूप भी विद्यमान है। ये वर्ण नागरी लिपि में नहीं हैं, अतः 'ए' और 'ओ' का लघु रूप सूचित करने के लिए इन वर्णों पर '˘' चिह्न लगाया गया है। जैसे—ऍ, ऑ, कॅ, पॉ।

कन्नड़ में 'अ'कारान्त व्यंजनो का पूरा उच्चारण किया जाता है। हिन्दी में फल, घर, नगर, गडबड—शब्दो का उच्चारण फल्, घर्, नगर्, गड़बड् होता है। कन्नड में ऐसा नहीं होता, वहाँ 'फल' आदि का उच्चारण फ्+अ+ल्+अ होता है। अर्थात् जैसा लिखा जाता है वैसा ही पढा जाता है।

कन्नड के वाक्यो में बहुधा समास हुआ करता है। जैसे—'रामनु एल्लि इद्दाने' (राम कहाँ है) 'रामनेल्लिद्दाने' लिखा और बोला जाता है।

कन्नड मे संस्कृत का 'ई'कारान्त शब्द प्रायः इकारान्त लिखा जाता है। जैसे—हिन्दी–हिंदि, राणी–राणि।

कन्नड़ लिपि मे शिरोरेखा ही मानो पाई होती है। गुजराती मे जिस तरह पाई आखिर मे बाँक लेती है उसी तरह कन्नड़ लिपि में हर अक्षर की शिरोरेखा आखिर मे बाँक लेती है।

संयुक्ताक्षर लिखने में पहला अक्षर जो स्वर-रहित होता है उसको पूरा लिखते हैं और दूसरा अक्षर उसके नीचे लिखते हैं।

'रेफ' अक्षर के ऊपर नहीं बल्कि बाद मे लिखते हैं। यह व्यवस्था ध्वनि-क्रम के विरुद्ध है, लेकिन रूढ़ि वैसी ही है। कन्नड़ मे उतने ही व्यंजन हैं जितने सस्कृत यानी नागरी मे होते हैं। केवल एक 'ळ' ही अधिक है।

कश्मीरी

कश्मीरी भाषा के सब स्वरों को भारतवर्ष की किसी भी लिपि मे नहीं लिखा जा सकता। यों तो कश्मीरी शारदा अक्षरो में भी लिखी जाती थी और अब नस्तालीक़

और नागरी दोनों लिपियों में लिखी जाती है। परन्तु इन दोनों लिपियो में कई नई प्रकार की मात्राएँ जोड़कर ही काम चलता है। काम भी ऐसा कि स्वयं लिखने वाला ही सुभीते के साथ पढ़ सकता है। फिर यह भी बात है कि कई प्रकार के लोग कई प्रकार की मात्राओं का प्रयोग करते हैं। इस अनुवाद मे मैने अधिकतर उन्हीं मात्राओ को काम मे लिया है, जिसका प्रयोग कश्मीरी भाषा लिखने-लिखाने की सबसे बड़ी संस्था आल इंडिया रेडियो ने किया है। किन्तु किसी मात्रा या चिह्न की सहायता के साथ भी यह आशा कदापि नहीं रखी जा सकती कि कश्मीरी भाषा को न जानने वाला लिखी हुई कश्मीरी को ठीक-ठीक पढ़ सकेगा। कई स्वर ऐसे अनोखे हैं कि कश्मीरी से बाहर के लोग उन्हे सुनकर भी जबान से नही निकाल सकते। लिपि परिपूर्ण और स्पष्ट भी हो, पर वे स्वर जो कानो ने सुने ही नही, और यदि सुने भी हों तो जिन्हे ज़बान से निकाला नहीं जा सकता, उन स्वरों का शुद्ध उच्चारण करना कठिन ही होगा। इसी कारण नई मात्राओ की परिभाषा देते हुए भी नए पाठको को यही मशविरा देना होगा कि वे पढते समय किसी कश्मीरी की सहायता प्राप्त करे।

नई मात्राओं का प्रयोग :

(१) 'च़' के नीचे बिन्दी लगाने से 'च' और 'स' का मिला हुआ स्वर। यह स्वर दाँतो के दो जबडों को एक-दूसरे के निकट लाकर और जिह्वा के सिरे को जबड़ो के बीच की दरार के साथ लगाकर 'च' बोलने से निकलता है।

(२) 'छ़' के नीचे बिन्दी लगाने से 'छ' और 'स' का मिला हुआ स्वर। जिह्वा और दाँतो के जबडो को 'च़' बोलने की अवस्था मे रखिये और 'छ़' बोलने का प्रयत्न कीजिये तो 'छ' स्वर निकलेगा।

(३) हिन्दी अक्षरों पर 'ए' की मात्रा टेढ़ी लगती है। जहाँ ये मात्रा सीधी-सीधी, ऊपर को उठती हुई लगाई गई हैं, वहाँ अक्षर को उस कश्मीरी स्वर मे प्रयोग किया गया है जो 'अ' और 'ओ' के मध्य मे निकलता है। जैसे 'लर' अर्थात् मकान, 'अर' अर्थात् ठीक, 'च़र' अर्थात् चिड़िया। यदि यह मात्रा 'च़' पर न लगाई जाय तो 'च़र' अर्थात् खटमल बन जायगा।

(४) 'उ' और 'ऊ' के अतिरिक्त कश्मीरी मे दो और स्वर हैं, जो गले से निकलते है; अर्थात् 'उ' और 'ऊ' ओठो को गोल बनाकर बोले जाते हैं। परन्तु वे कश्मीरी स्वर ओठो को गोल किये बिना ही गले से निकाले जाते हैं। इनके चिन्ह ये हैं .

(ॖ) (ॗ) उदाहरणतया, तॖर = चिथड़ा, तॗर = ठंड।

(५) कश्मीरी मे 'आ' के अतिरिक्त एक और स्वर है, जो 'ओ' से आरम्भ तो होता है परतु 'ओ'-जैसा लम्बा नही होता। अर्थात् आरम्भ होते ही रुक जाता है। जैसे जोर = जोर, परन्तु जोर = बहरा।

गुजराती

गुजराती लिपि नागरी से कुछ अंश मे भिन्न है।

अशोक और ब्राह्मी लिपि परिवर्तित होकर गुजराती और नागरी तक पहुँची। छापने की सुविधा न थी तो लेखक अक्षरो की आकृति मे सुविधानुसार परिवर्तन करते थे। एक उदाहरण लीजिए—अशोक लिपि मे 'क' की आकृति + चिह्न था। नागरी में खड़ी लकीर वैसी ही रखी और आड़ी लकीर को सोये हुए S(ഗ) का-सा बना दिया। गुजराती ने खड़ी लकीर को / की आकृति दी और आड़ी लकीर वैसी ही रखकर कुछ तिरछी की।

गुजराती में अ, इ, च, ज, झ, फ, भ—इतने अक्षरों मे विशेष अन्तर है, बाकी अक्षर नागरी-जैसे है। आजकल की गुजराती ने शिरोरेखा हटा दी है और 'ए' 'ऐ' को 'ओ' 'औ' की तरह 'अ' पर मात्रा देकर लिखना आरम्भ कर दिया है। उच्चारण में कही-कहीं स्वरो के साथ 'य' या 'ह' मिलाया जाता है, जो सामान्यतया लिखकर नही बताते हैं। चन्द आधुनिकों ने 'य' श्रुति और 'ह' श्रुति लिखकर बताने का आग्रह रखा है।

तमिष़

तमिष और नागरी लिपियों का उद्गम एक ही है—ब्राह्मी लिपि। एक का विकास ब्राह्मी की दक्षिण शैली से हुआ है, दूसरी का उत्तर शैली से।

तमिष़ मे स्वर १२ हैं जब कि हिन्दी में (ऌ सहित) केवल ११ स्वर हैं। तमिष़ मे ह्रस्व 'ए' और 'ओ'—ये दो स्वर ऐसे हैं जो अन्य द्रविड़ भाषाओं में तो पाये जाते हैं, पर हिन्दी में नहीं।

तमिष़ मे व्यंजन कुल १८ हैं। पाँचों वर्गों में से प्रत्येक के मध्य के तीन वर्ण तमिष़ मे नहीं पाये जाते (ख, ग, घ, ठ, ड, ढ आदि)। इसी कारण समय-समय पर एक अक्षर के दो या तीन उच्चारण भी होते हैं जिसका निश्चय सन्दर्भ से किया जाता है। उदाहरण के लिए एक ही प्रकार से लिखे गए 'पावम्' शब्द को 'पाप' भी पढ़ा जा सकता है और 'भाव' भी। व्यंजनो में 'र' और 'न' दो प्रकार के होते हैं जिनके भिन्न उच्चारण और सन्दर्भानुसार भिन्न प्रयोग होते हैं।

तमिष़ की सुदरता zh अक्षर पर है, जिसका उच्चारण र, ल, ल़ और ड इन सबसे भिन्न है।

तॅलुगु

तॅलुगु मे भी, सस्कृत के सभी अच् (स्वर) और हल् (व्यंजन) विद्यमान हैं। साथ-साथ और भी कुछ ध्वनियॉ हैं, जिनका संक्षेप मे वर्णन इस प्रकार है—

(१) जैसे सभी द्रविड़ भाषाओं मे, वैसे तॅलुगु में भी ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' हैं। इनका अशुद्ध उच्चारण छन्द मे ही नहीं, गद्य मे भी, आदी कानो को भद्दा लगता है। कहीं कहीं अनर्थ भी हो जाता है। जैसे नॅल—चॉद, मास, नेल—ज़मीन, कॉडि—कज्जल, कोडि—मुर्गा। दक्षिणी भाषाओ का अध्ययन करने वालो को इस विषय पर ध्यान देना चाहिए।

(२) जैसे फ़ारसी की 'ज़' ध्वनि है, वैसे 'ज़' तॅलुगु में भी है। इसके अलावा 'च' (च के नीचे बिन्दी लगाने से बनने वाले) दन्त्य 'च' की ध्वनि भी है, जो देश्य शब्दो मे पाई जाती है। इस ध्वनि को भी सार्वदेशिक नागरी लिपि मे स्थान मिलना चाहिए।

(३) 'र' का दूसरा भेद भी है जो कि शायद पुराने ज़माने में अपना उच्चारण रखता हो, मगर अब दोनो संकेतों का एक ही उच्चारण है। किन्तु कभी-कभी अर्थ-भेद का द्योतन करने के लिए तॅलुगु लिपि में उन दोनो संकेतो का विशेष उपयोग होता है। जैसे :—तेरु—रथ, तेरु—साफ़ हो (ना)। मगर नागरी लिपि में इस दूसरे रेफ की ध्वनि को सकेतित करने के लिए अभी तक कोई उपाय नहीं सोचा गया।

(४) ल़-ध्वनि (ड और ल के बीच वाली ध्वनि) जो ऋग्वेद के 'अग्निमीळे पुरोहितम्' इत्यादि कई पदो मे मिलती है, द्रविड़ और मराठी भाषाओ मे प्रसिद्ध है। तॅलुगु में इसका खूब उपयोग है और तमिष़ में 'ल' की जगह पर 'ळ' बोलने से अर्थ भी बदल जाता है। जैसे :—पुलि—बाघ, पुळि—इमली।

बंगला

बंगला मे अकार का उच्चारण हिन्दी अकार के समान नहीं होता, बल्कि प्रायः 'अ' और 'ओ' के बीच मे होता है, जैसे अंग्रेजी के 'not' मे 'o'। 'अ' के बाद में इकार, उकार या यकार हो तो उसका उच्चारण अंग्रेजी के no के 'o'-जैसा होता है, जैसे 'अद्य' का 'ओद्द', 'दई' का 'दोई' और 'कवि' का 'कोबी'।

बंगला में 'क्षकार' का उच्चारण पद के आदि मे हमेशा 'खकार' होता है, जैसे क्षण – खन। पर अन्यत्र इसका उच्चारण 'क्ख' होगा, जैसे लक्षण – लक्खन।

मकार के साथ जिस वर्ण का योग हो, वह वर्ण सानुनासिक द्वित्व होकर अकार का लोप कर देगा, जैसे पद्म – पद्दँ। किन्तु पद के आदि में ऐसा हो तो द्वित्व नहीं होता, जैसे स्मृति – सॅृति।

हमने पाठ में तत्सम संस्कृत शब्दो के विन्यास मे 'व' को 'व' ही रखा है, लेकिन यह समझने के विचार से ही है। बंगला में बकार और वकार दोनो को ही बकार पढ़ा जाता है। इसी तरह मूर्द्धन्य 'ण' का उच्चारण सदा 'न' ही होता है। 'हाओया' लिखा जाता है, पर 'हावा' पढ़ा जाता है। 'ओया' का उच्चारण 'व'-जैसा होता है।

यकार का उच्चारण पद के आदि मे जकार हो जाता है, जैसे योग – जोग। किन्तु पद के मध्य में तथा अन्त में यकार ही होता है; जैसे नयन – नयन, समय – समय। लेकिन अगर यकार में रेफ हो तो जकार हो जाता है, जैसे धैर्य – धैर्ज्ज, सूर्य्य – सूर्ज्ज। व्यंजन के साथ मिलाने पर व्यंजन का द्वित्व होता है और यकार का लोप होता है, जैसे 'पद्य' को 'पोद्दो' पढ़ेंगे।

मागधी प्राकृत की परम्परा के अनुसार बगला में तीनो ही सकारों का उच्चारण तालव्य 'श' की तरह होता है। किन्तु दन्त्य 'स' के साथ किसी व्यंजन वर्ण का योग होने पर 'स' का उच्चारण 'स' ही रहता है, यथा स्तर – स्तर।

यदि किसी वर्ण का यकार अथवा वकार के साथ योग हो तो उसका द्वित्व होकर यकार-वकार का लोप होता है, जैसे ज्वाला – नित्त, वाद्य – बाद्द। किन्तु पद के आदि में केवल वकार का लोप होता है, जैसे ज्वाला – जाला, द्वार – दार।

पद के आदि में आने वाले दीर्घ ईकार-ऊकार का उच्चारण प्रायः ह्रस्व होता है, जसे पूजा – पुजा, ईश्वर – इश्वर। वैसे बॅगला में ह्रस्व-दीर्घ की माप-तोल हिन्दी के समान पक्की नहीं है, वहॉ लचीलेपन के लिए काफ़ी गुंजाइश है।

पद के अन्त्य वर्ण का उच्चारण प्रायः हलन्त होता है, जैसे संसार – संसार्, तोमार – तोमार्। लेकिन कविता में छंद के आग्रह पर वह अकार के उच्चारण के नियमानुसार भी चलता है, जैसे बकुल-बागाने को बकुल (ो)-बागाने भी पढ़ा जा सकता है।

अनुस्वार के उच्चारण में 'ङ' का अंश निहित रहता है, जैसे हिमांशु – हिमाङ्शु

एकार का उच्चारण कहीं-कहीं एकार और ऐकार के बीच का-सा होता है, जैसे एक—ऍक; कहीं-कहीं ऐकार का उच्चारण ओइकार-जैसा होता है, यथा ऐश्वर्य—ओइश्शर्ज्ज।

मराठी

मराठी की लिपि पूर्णतया नागरी ही है। हिन्दी और मराठी में जो अक्षर-भेद है वह लिपि-भेद नहीं है। एक ही अक्षर के दो रूपो मे से हिन्दी ने एक पसन्द किया है और मराठी ने दूसरा। मराठी का 'अ' 'ॐ' में पाया जाता है। मराठी का 'झ' 'इ' को 'ा' के साथ बाँध देने से बनता है। हिन्दी का 'झ' 'भ' को दुम लगाकर बनाते हैं। हिन्दी मे 'क्ष' को 'क्ष' लिखते हैं।

मराठी में 'झ', 'ज' और 'च' इन तीनो अक्षरो के दन्त्य और तालव्य ऐसे दो-दो उच्चारण हैं, जो भेद हम नुक्ता लगाकर नहीं बताते। अनुभव से ही भेद पहचाना जाता है। गुजराती, मराठी, उड़िया और दक्षिण की चार-पॉच भाषाओ में एक उच्चारण है (ळ), जिसके लिए हिन्दी मे अक्षर नही है। यही उच्चारण वेद मे भी पाया जाता है। 'ल', 'ड' और 'र' इन तीनो से 'ळ' भिन्न है।

मलयालम

देवनागरी और मलयालम दोनों लिपियों का उद्भव ब्राह्मी लिपि से हुआ है। हिन्दी की तरह मलयालम में भी नागरी वर्णमाला का प्रयोग होता है।

मलयालम में स्वर-चिह्नों के व्यवहार में कुछ विशेषता होती है। उदाहरण के लिए अन्त्य 'अ' का उच्चारण हलन्त नहीं, बल्कि अकारान्त होता है। 'कमल', 'वेदन' लिखकर 'कमला', 'वेदना'-जैसा पढ़ा जायगा। 'अं' का उच्चारण मलयालम में 'अम्' होता है। अन्त मे 'म्' के बदले अनुस्वार से ही काम लेने की प्रथा है। दक्षिण की अन्य भाषाओं के समान मलयालम में भी ह्रस्व 'ए' और 'ओ' होते हैं, जिनका हिन्दी में अस्तित्व नहीं है।

मलयालम में क, ट, त, न आदि कुछ वर्णों का उच्चारण या प्रयोग दो तरह होता है। उदाहरणार्थ पद के अन्त या मध्य में आने वाले 'क' का उच्चारण सामान्यतः 'क' और 'ग' के बीच होता है। इसी प्रकार शब्द के मध्य या अन्त में प्रयुक्त 'ट' का उच्चारण 'ट' और 'ड' के बीच में होता है। 'ण' के साथ संयुक्त होने पर इसका उच्चारण 'ड' होता है। जैसे—कण्टु—कण्डु। यह उच्चारण-भेद उपर्युक्त अन्य अक्षरो के सम्बन्ध

में भी लागू होता है। हिन्दी से भिन्न इन ध्वनियों का द्योतन 'ट', 'न' आदि के नीचे बिन्दियाँ लगाकर किया जाता है।

हिन्दी 'र' से भिन्न मलयालम मे एक और इससे जरा तेज ध्वनि है; जो 'रन', 'रेडियो' इत्यादि अंग्रेजी शब्दो मे पाई जाती है। इसे प्रकट करने के लिए 'र' के नीचे बिन्दी (यथा ऱ) लगाई जाती है।

'ष' का उच्चारण-स्थान 'प' से जरा नीचे (दाँत की तरफ) है। कम निःश्वास छोड़ना चाहिए।

सिन्धी

सिन्धी भाषा अरबी तथा देवनागरी दोनों लिपियों में लिखी जाती है। देवनागरी लिपि मे जो भी स्वर और व्यजन प्रयुक्त होते हैं उनके अतिरिक्त "ग़ ज़ द़ ब़" के नीचे अनुदात्त स्वर-जैसा चिन्ह लगाकर तत्सम व्यंजनो पर निर्धारित कुछ विशेष ध्वनियों का प्रयोग भी होता है। ये ध्वनियाँ सिन्धी भाषा की निजी है, जो अन्य भाषाओ मे नही पाई जाती।

कवि-परिचय

१. असमिया

१. **केशव महन्त** (१९२४—)
गौहाटी मे अध्यापक
प्र.—आमार पृथ्वी

२. **दिनेश गोस्वामी** (१९३४—)
गौहाटी विश्वविद्यालय मे एम. ए. के छात्र

३. **नवकान्त बरुआ** (१९२६—)
काटन कालेज, गौहाटी मे अध्यापक
प्र.—हे अरण्य हे महानगर (कविता-सग्रह); कपिली परीया साधु (उपन्यास); शियाली पालेगै रतनपुर (बच्चो के लिए)

४. **प्रफुल्ल भुइयाँ** (१९३३—)
जे बी. कालेज, जोरहाट अंग्रेजी के अध्यापक

५. **बीरेन बरकटकी** (१९२४—)
अध्यापक, शिवसागर कालेज, शिवसागर (आसाम)
प्र.—खोजते मिलाओ खोज, तुलीकार प्राण तथा कुमारी पृथ्वी

६. **महिम बरा** (१९२६—)
नौगाग कालेज में असमिया के अध्यापक

७. **महेंद्र बरा** (१९२९—)
गौहाटी के काटन कालेज मे अध्यापक
प्र.—डान क्किजोट, गुलीवर की यात्राओं के अनुवाद, नील सागरर साधु, स.—नतून असमिया कविता

८. **वीरेश्वर बरुआ** (१९३३—)
(बरेटा) आसाम सिविल सर्विस मे एक्स्ट्रा असिस्टेट कमिश्नर

९. **हरि बरकाकती** (१९३७—)
पता : गोलाघाट, जि. शिवसागर (आसाम)
प्र.—अनुर्बरा, ईविनसौग, इत्यादि

१०. **हेम बरुआ** (१९१५—)
ससद्-सदस्य
प्र.—(यात्रा-वृत्तात) सागर देखिल्ला, (समालोचना) आधुनिक साहित्य, (राजनीति) गणविप्लव, (अंग्रेज़ी मे) दि रेड रिवर एण्ड दि ब्ल्यू हिल, दि आगस्ट रैवोल्यूशन इन आसाम

११. **होमेन बरगोहाँई** (१९३१—)
आसाम सिविल सर्विस मे पदाधिकारी
प्र.—विभिन्न कोरस (कहानी-संग्रह)

२. उड़िया

१. **अनन्त पट्टनायक** (१९१४—)
स्वतंत्र लेखन
प्र.—तर्पण करे आजि, शांति-शिखा

२. **कुंजबिहारी दास** (१९१४—)
उड़िया लोक-साहित्य पर प्रबंध लिखकर विश्वभारती से पी-एच. डी. उपाधि प्राप्त, शातिनिकेतन में अध्यापक
प्र.—डुडुमा, बागरा, नवमल्लिका, प्रभाती, कंकालर लुह, माटी ओ लाठी (कविता संग्रह); लकाजात्री (प्रवास-वर्णन)

३. **कृष्णचन्द्र त्रिपाठी** (१९११—)
अध्यापक, पता : भीमपुर, पो. ओ. बानपुर, जि. पुरी (उड़ीसा)
प्र.—आहुति, अग्निशख, माटी द्वीप (कविता-संग्रह)

४. **कृष्णचरण बेहेरा** (१९३२—)
भद्रक कालेज, उड़ीसा में अध्यापक
प्र.—चा कपरे झड (कविता-संग्रह)

५. **गुरुप्रसाद महान्ति**
अध्यापक, सामन्त चन्द्रशेखर कालेज, पुरी

६. **गोदाबरीश महापात्र** (१९०२—)
पत्रकार, पता : कोमारग सासो, पो. ओ. कोमारंग, जि. पुरी (उड़ीसा)
प्र.—पल्लिछाया (कहानी-संग्रह); रूपरेखा, प्रभातकुसुम (कविता-संग्रह) प्रेमपथ (उपन्यास); भक्तियोग (अनुवाद); कथा-कहानी (बच्चों के लिए)

७. **गोपालचन्द्र मिश्र** (१९२५—)
सम्बलपुर कालेज में अध्यापक; उड़ीसा पी. ई. एन. के मंत्री
प्र.—विद्रोही दिवाकर, रासनी (कविता-संग्रह) निबेदिता, पूर्व राजा (नाटक) इत्यादि

८. **चन्द्रशेखर मिश्र** (१९०१—)
कटक, क्राइस्ट कालेज के हैडमास्टर
प्र.—सार सुदरी, ऋतु संहार (काव्य-संग्रह); बैठका महल (कहानी); प्रबंध (समालोचना); पारिजात (गीति-काव्य);

९. **चिन्तामणि बेहेरा** (१९२८—)
रावेन्शा कालिज कटक मे प्राध्यापक, नवयुवक कवियो मे अग्रणी
प्र.—स्वस्तिका, श्वेतपद्म (कविता-संग्रह)

१०. **जानकीबल्लभ महान्ति** (१९२५—)
रावेन्शा कालेज, कटक मे अध्यापक
प्र.—त्रियक, कथा ओ कथाकार, फकीरमोहन परिक्रमा, उड़िया साहित्य परिक्रमा

११. **तुलसी दास (कुमारी)** (१९३९—)
स्वतंत्र लेखन

१२. **नित्यानन्द महापात्र** (१९१२—)
'डगर' के सम्पादक
प्र.—छह उपन्यास, कई कविता-संग्रह, जिअन्ता मणिस, हिड़ माटि (उपन्यास); काल रड़ी (निबध)

१३. **बिद्युत् प्रभा देवी (श्रीमती)** (१९२९—)
स्वतंत्र लेखन
प्र —सविता, मरीचिका, स्वप्न-द्वीप आदि (कविता-संग्रह); संचयन

१४. **बिनोदचंद्र नायक** (१९१९—)
संबलपुर के सरसुगडा हाईस्कूल के हेडमास्टर
प्र.—चद्र ओ तारा (पद्य-नाटिका), नीलचंद्र रा उपत्यका (आधुनिक कविताओं का सग्रह)

१५. **बैकुण्ठनाथ पट्टनायक** (१९०४—)
पता : इन्सपैक्टर आफ स्कूल्स, वैस्टर्न सर्किल, बलगीर; अकादेमी की उड़िया परामर्शदात्री समिति के सदस्य
प्र.—काव्य-सचयन (काव्य-संग्रह); मुक्तिपथ (नाटक)

१६. **मायाधर मानसिंह** (१९०५—)
उत्कल विश्वविद्यालय में 'उत्कल ज्ञानकोष' के सम्पादक, अकादेमी की उड़िया परामर्शदात्री समिति के सयोजक
प्र.—'कमलायन' इत्यादि काव्य तथा कई कविता-संग्रह

१७. **यदुनाथ दास महापात्र** (१९२९—)
बालशोर में वकील
प्र.—रक्त मुखी, विभीषिका, प्रलय पयोधि जले, संग्राम

१८. **राधामोहन गड्नायक** (१९११—)
स्वतत्र लेखन
प्र.—काव्यनायिका, उत्कलिका, स्मरणिका, विप्लवी राधानाथ (काव्य-संग्रह); कालिदास (नाटक); मेघदूत (अनुवाद)

१९. **सुनन्द कर** (१९२७—)
सम्पादक 'उत्कल साहित्य'
प्र.—कल्पना, उदयन, (काव्य-संग्रह); दुनिया, सग्राम (कहानी-सग्रह), गोर्की की 'माँ' (अनुवाद)

३. उर्दू

१. **'अर्श' मलसयानी** (१९०८—)
बालमुकुद का उपनाम; उर्दू 'आजकल' के संपादक
प्र.—सुहागन बेवा, चगो-आइंग, आइगे-हेजाज़, हफ़्त रग

२. **आले अहमद सरूर** (१९१२—)
अलीगढ़ विश्वविद्यालय मे उर्दू के प्रोफेसर, अकादेमी की उर्दू परामर्शदात्री-समिति के सयोजक
प्र.—सलसबील, जौके-जुनूँ (कविताएँ), नये और पुराने चिराग़ (आलोचना), अदब और नजरिया (आलोचना)

३. **जगन्नाथ 'आजाद'** (१९१८—)
प्रेस इन्फार्मेशन ब्यूरो मे उर्दू के विभाग के प्रमुख
प्र.—बेकारॉं, सितारों से जर्रों तक (कविताएँ)

४. **'जोश' मलसयानी** (१८८२—)
अवकाशप्राप्त अध्यापक
प्र.—जुनूनो-होश: दीवाने-गालिब की शरह

५. **नरेश कुमार 'शाद'** (१९२८—)
हाउसिंग एण्ड,रैण्ट आफिस, गोखले मार्केट, दिल्ली
प्र.—फरियाद, दस्तक, ललकार इत्यादि

६. **नवाब जाफर अली खाँ 'असर' लखनवी,** (१८८५—)
लखनऊ के कवि
प्र.—नहारा, रगबस्त

७. **नाज़िश परतापगढ़ी** (१९२४—)
पता : बेगम वार्ड, प्रतापगढ़
प्र.—१९५० तक की ग़जलो का संग्रह

८. **'फ़िराक़' गोरखपुरी** (१८९६—)
पता : ८।४ बैक रोड, इलाहाबाद
प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व अग्रेजी के प्राध्यापक; उर्दू परामर्शदात्री समिति के सदस्य
प्र.—अन्दाज, शोला-ए-साज़, रूह-ए-कजनात, धरती की करवट, अनारकली इत्यादि

९. **रविश सिद्दीकी** (१९११—)
शाहिद अजीज अहमद का उपनाम; आकाशवाणी के उर्दू सलाहकार;
प्र.—कारवॉ, मेहराब ग़जल

१०. **सिकन्दर अली वज्द** (१९१४—)
एडीशनल सैशन जज, नानदेड (मुंबई राज्य)
प्र.—लहु-तरग, आफताब-ए-ताजा

४. कन्नड़

१. **अंबिकातनयदत्त (द. रा. बेन्द्रे)** (१८९६—)
डी. ए. वी. कालेज शोलापुर मे कन्नड़ के भूतपूर्व प्रोफेसर; आकाशवाणी धारवाड़ के सलाहकार; साहित्य अकादेमी द्वारा १९५८ का अकादेमी का पुरस्कार मिला

प्र.—गरी, नादलीले, उय्यसे, सखीगीता, गंगावतरण, मूतिच्त मत्तु काम कातुरी अरळु मरळु (कविता-संग्रह); हुच्चतगळु, होस संसार (नाटक); साहित्य मत्तु विमर्षे, साहित्य संशोधने, विचार–मंजरी, निराभरण सुंदरी (आलोचना)

२. **कुवेंपु (के. वि. पुटप्पा)** (१९०४—)
मैसूर विश्वविद्यालय के उपकुलपति
आपके 'श्रीरामायणदर्शन' महाकाव्य को १९५३ से पहले सात वर्षों मे सर्वश्रेष्ठ कन्नड़ पुस्तक होने का गौरव तथा अकादेमी पुरस्कार मिला
प्र.—५० से ऊपर पुस्तकें—नविलु, कल्मुंदरी, कोगिले मत्तु, सोवियत रशिया, कोलळु, पक्षी, काशी, अग्नि-हंस, पाचजन्य, चित्रागदा (काव्य-संग्रह); काव्यविहार, तपोनन्दन (आलोचना)

३. **चेन्नवीर कणवि** (१९२८—)
धारवाड़ मे कर्नाटक यूनिवर्सिटी के प्रकाशन विभाग के सचिव
प्र.—काव्याक्षी, भावजीवी, आकाशबुत्ती, मधुचंद्र (कविता-संग्रह)

४. **जयदेवितायि लिगाडे** (१९१२—)
प्र.—जयगीता, सिद्धवाणी, बसवदर्शन

५. **नरसिंहमूर्ति के.** (१९१९—)
बंगलौर, सेण्ट्रल कालेज में अध्यापक
प्र.—हर्ष द्वीप (कविता-संग्रह); कुवेंपु (समालोचना) इत्यादि

६. **नरसिंहस्वामी के.** (१९१५—)
बंगलौर में स्वतंत्र लेखन
प्र.—मैसोर-मल्लिगे, इरावथ, दीपडमल्ली, इरुवंथिगे (कविता-संग्रह)

७. **नरसिंहाचार्य पु. ति.** (१९०५—)
एडीटर आफ डिबेट, मैसूर लेजिस्लेचर
पता : ३७ ईस्ट पार्क रोड, मल्लेश्वर
प्र.—हणते, शरदयामिनी, रस सरस्वती (काव्य-संग्रह); अहल्या, दोणिय बिनह्रा, विकट कवि विजय (काव्य-नाटक)

८. **मुगलि रं. श्री.** (१९०६—)
विलिंगडन कालेज, सागली में कन्नड़ के प्रोफेसर
प्र.—बसिग, उपनकरुण (कविता-संग्रह), कन्नड़ साहित्य चरित्रे (साहित्येतिहास)

९. **रामचंद्र शर्मा** (१९२५—)
बंगलौर के हाईस्कूल में अध्यापक
प्र.—हृदयगीत इत्यादि

१०. **विनायक (वि. कृ. गोकाक)** (१९०९—)
प्रिंसिपल, कर्नाटक कालेज, धारवाड़
प्र.—पयन, समुद्रगीतगह्लु, युगांतर, बाल देगुलडह्ली (कविता-सग्रह) दि सौग आफ लाइफ, दि पोएटिक एप्रोच इन लैंग्वेज

५. कश्मीरी

१. **अब्दुल रहमान राही** (१९२५—)
अध्यापक; साहित्य अकादेमी की कश्मीरी सलाहकारी समिति के सदस्य
प्र.—सना बुनी साज, सुभुक सोडा, युन सानी आलऊ

२. **ज़िन्दा कौल मास्टरजी** (१८८५—)
साहित्य अकादेमी की कश्मीरी सलाहकारी समिति के सदस्य
प्र.—सुमरन, इस पर '५३ से ५५' के सर्वश्रेष्ठ ग्रथ के नाते अकादेमी पुरस्कार मिला; लाइफ़ एंड पोएम्स आफ परमानद

३. **नूर मोहम्मद रोशन** (१९१९—)
पता : श्रीनगर (काश्मीर)
प्र.—पोशी थेर, वोजेल गुलालेह (लोक-कथाएँ); गोदान, एपिल कार्ट (अनुवाद)

४. **दीनानाथ वली 'अलमस्त'** (१९१२—)
आर्टिस्ट (पेण्टर) बदियार, श्रीनगर।
प्र.—बाला यापरी

५. **पीताम्बरनाथ दर 'फानी'** (१९१९—)
अध्यापक, पता : विचारमार्ग, पी. ओ. नवशेरा, श्रीनगर, काश्मीर
प्र.—हुबाब, तराना-इ-जिन्दगी, तफसीरी हाल, पोशा दात्या, पोशा बाग इत्यादि.

६. **महिउद्दीन नवाज़ रतनपुरी** (१९२०—)
जमीदारी और कविता

७. **मिर्ज़ा आरिफ़** (१९१०—)
काश्मीर सरकार के विकास-मंत्रालय मे कार्य करते हैं। साहित्य अकादेमी की कश्मीरी सलाहकार समिति के सदस्य; फारसी, उर्दू के भी शायर
प्र.—रूबाइयात आरिफ़

८. **रसा जाविदानी अब्दुल क़दूस**
अध्यापक, कश्मीर ॲकेडेमी आफ आर्ट्स एड लैटर्स के सदस्य
प्र.—तोहफा-ए-काश्मीर

९. **शमसुद्दीन काफ़ूर** (१९२०—)
पता : अकिगम, पो. अक्काबल, अनन्तनाग, श्रीनगर
प्र.—पयाम-ए-कफूर (पुस्तिका)

१०. **श्यामलाल दर 'बहार'** (१९२६—)
अध्यापक, पता : चिनिक्रल मोहल्ला, हब्बा कादिल, श्रीनगर, काश्मीर

६. गुजराती

१. **उमाशंकर जोशी** (१९११—)
'सस्कृति' मासिक के सपादक, गुजरात यूनिवर्सिटी मे भाषा-साहित्य-शोध-कार्य के निर्देशक अध्यापक, साहित्य अकादेमी के गुजराती सलाहकारी बोर्ड के सयोजक
प्र.—विश्वशाति, गगोत्री, निशीथ, प्राचीना, वसतवर्षा (काव्य-संग्रह); सापना भारा (एकाकी); श्रावणी मेलो (कहानियॉ); शाकुतल (अनुवाद)

२. **दुर्गेश शुक्ल** (१९११—)
अध्यापक
प्र.—छाया, पल्लव, विभग कला, उर्वशी थी अने यात्री, झंकृति, पृथ्वीना आसु इत्यादि

३. **नलिन रावल** (१९३३—)
अध्ययन, पता : कवीश्वर स्ट्रीट, खाडिया, अहमदाबाद।

४. **निरंजन भगत** (१९२६—)
अहमदाबाद में अंगरेजी साहित्य के अध्यापक
प्र.—छंदोलय, किन्नरी, अल्पविराम (कविता-संग्रह)

५. **प्रियकान्त मणियार** (१९२७—)
स्वतंत्र लेखन तथा व्यापार
प्र.—प्रतीक (कविता-संग्रह)

६. **बालमुकुन्द दवे** (१९१६—)
नवजीवन सस्था, अहमदाबाद से संबद्ध
प्र.—परिक्रमा

७. **मनसुखलाल झवेरी** (१९०७—)
सेंट जेवियर कालेज बबई में गुजराती के अध्यापक; आकाशवाणी बबई के गुजराती सलाहकार
प्र.—फूलदोल, आराधना, अभिसार (कविता-संग्रह)

८. **राजेन्द्र शाह** (१९१३—)
स्वतंत्र लेखन, व्यापार
प्र.—ध्वनि, आन्दोलन (कविता-संग्रह).

९. **रामनारायण पाठक (स्वर्गीय)** (१८८८–१९५५)
आलोचक, कहानीकार, कवि; बम्बई आकाशवाणी केद्र से संबद्ध थे
प्र.—बृहत्-पिगल (आलोचना ग्रथ) इस पर अकादेमी का '५३ से '५५ का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ होने के कारण ५००० रु. का पुरस्कार मिला; शेषन् काव्यो (कविता-संग्रह)

१०. **सुन्दरम्** (१९०८—)
अरविंद-आश्रम पाडीचेरी मे रहते हैं
प्र.—कोयाभगतनी कडवी वाणी, वसुधा, यात्रा (काव्य-संग्रह)

११. **सुन्दरजी बेटाई** (१९०४—)
एस. एन. डी. टी. कालेज मे गुजराती के अध्यापक
प्र.—ज्योतिरेखा, इंद्रधनु, विशेषाजलि (कविता-सग्रह)

१२. **हरिश्चन्द्र भट्ट (स्व.)** (१९०६–१९५०)
प्र.—जोसेफ पिससुद्सी, केसुडो अने सोनेरू तथा कोजागरी, स्वप्न प्रयाण, दि स्कारलेट म्यूज

१३. **हसमुख पाठक** (१९३०—)
प्रयोगशील कवि

७. तमिष्

१. **अषहुप्पित्तन्** (१९२२—)
जूनियर एकाउंटेट, सदर्न रेलवे, मद्रास—३

२. **ए. एल. वल्लियप्पा** (१९२२—)
मद्रास के बच्चो के लेखक सघ के अध्यक्ष; तमिष् लेखक संघ के मंत्री थे; प्र.—मलरुम उल्लम (कविता-सग्रह) इंसपकथै-पादल्गल (बच्चो के लिए कविता-संग्रह).

३. **ए. के. परन्दामनार** (१९०२—)
मदुरई, त्यागराजन् कालेज मे अध्यापक
प्र.—पानगल मन्नर वाजि, कादल निलैवकवितैकल, नल्लतमिल एलुदवेडुमा ? वालकैकले

४. **एस. उमैताणु पिल्लई** (१९०८—)
नागेरकोइल, एस एल. बी. हायर सैकण्डरी स्कूल में अध्यापक
प्र.—मलरुम मलार, कुमारिततेनिल, अंजलिगल

५. **एम. के. तंगवेल** (१९२५—)
मद्रास, प्रेसिडैंसी कालेज मे अध्यापक

६. **एम. पी. मास्करेनस** (१८७९—)
रिटायर्ड स्टोर-कीपर, मदुरई मिल्स, तुलिकोर्नी
प्र.—मलाई पकल, माता थोथिरा पमालई, पाल संत मलाई

७. **ए. शुरुलिण्डप् पावलार** (१९०८—)
क्लर्क, कार्दामम प्लाण्टर्स एसोसियेशन आफ साउथ इडिया
कोमबई (मुंबई) मदुरई
प्र.—नाट्टु पाट्टु, साथ गीत मंजीरी, कल्लुम कवित्तयुम इत्यादि

८. **गणपतिदासन** (१९११—)
एस. वी. लक्ष्मी नारायण शर्मा का उपनाम
असिस्टेंट, पावडी म्युनिसिपल हाई स्कूल, सलेम—१
प्र.—१०८ गीत, ५० कविताएँ इत्यादि

९. **तमिष्मुडि** (१९३२—)
स्कूल मास्तर, एन. एस. एम. वी. पी. एस हाई स्कूल, रामनाथपुरम्
प्र.—पिल्लैकनियमुदु (कविता), तमिष्क्कलण्ज्यिम (नाटक), ऐम, पेण, इलकियम (निबन्ध), पीनमलर (कथा)

१०. **'नादि'** (१९१९—)
के. आर. एच. बोर्ड हाई स्कूल, उत्तमपल्यम, में तमिष् पंडित
प्र.—उमपिळ्ळै पादिक्कावली, कोवरीएन कथाली, कलाथक्कुकेरा, कवि भारती इत्यादि

११. **नामक्कल, वी. रामालिंगम् पिल्लई** (१८८८—)
कवि, नाटककार तथा भाष्यकार
प्र.—अवलुम, अवनुम, तमिझर इदयम् (कविता-संग्रह)

१२. **पुत्तनेरि आर. सुब्रह्मण्यन** (१९२२—)
सुपरिण्टेंडेंट (पी. डब्ल्यू. डी.), २३ नागप्पा मुदाली स्ट्रीट, मद्रास–२
प्र.—तमिष् नाट्टु सीरु कथाईगल, पौगल विरुंदु

१३. **पेरियस्वामी तूरन** (१९०८—)
प्रधान सम्पादक, तमिष् एनसाइक्लोपीडिया, यूनिवर्सिटी बिल्डिंग, मद्रास–५
साहित्य अकादेमी की तमिष् परामर्शदात्री समिति के सदस्य
प्र.—चित्र मंडल, पिळ्ळैवरम, पूविनसिरिप्पु इत्यादि

१४. **मुडियरशन** (१९२०—)
कराईकूडी, मीनाक्षी सुन्दरेसर हाई स्कूल मे तमिष् पडित
प्र.—मुडियरशन कवियइहाल भाग १–२, कवियाप्पवइ

१५. **वी. दुरैसामी** (१९२३—)
तिरुचिरापल्ली, ई. आर. हाई स्कूल में तमिल पंडित
प्र.—मुदारक्कधल, कन्नकी विरत्तम, अमुधा कलासम

१६. **सामि. पष़नियप्पन** (१९२६—)
पत्रकार
प्र.—पगल कन्नी, वल्लुरन थण्डा कडल इस्बम इत्यादि

८. तेॅलुगु

१. **अप्पलस्वामी पुरिपंडा** (१९०४—)
एक्स म्युनिसिपल कमिश्नर, मंगुल्ला वारी स्ट्रीट, विसाखपटनम्
प्र.—रत्नपटकम्, मुरली ध्वनि, सौदामणी, विश्व कथावीधी इत्यादि.

२. **कृष्णमाचार्य दाशरथि** (१९२७—)
आकाशवाणी, हैदराबाद
प्र.—अग्निधारा, रुद्रवीणा, महन्द्रोद्यम, महाबोधि

३. **चिरंजीवि** (१९२५—)
स्वतन्त्र लेखन; हनुमतरायनगर, बकिंघम, विजयवाडा
प्र.—त्यागी, विप्लवात्मा, नीति कथा निधि, पेड्डला पाठालु, बडी पतलु, इत्यादि

४. **नरसिंहाचार्युलु वेमुगंटि** (१९३०—)
इब्राहीमपटम (हैदराबाद) के गवर्नमैंट मिडिल स्कूल में अध्यापक
प्र.—प्रबोधम्, अमरजीवी बापूजी, कवितांजलि

५. **नारायण रेड्डी सी.** (१९३१—)
'स्रवन्ती' के सपादक, सिकन्दराबाद के कालेज में अध्यापक
प्र.—नव्वनि पुव्वु, जलपटम्, विश्वगीति, अजंतासुदर, नागार्जुन सागरम्

६. **मुरया** (१९३१—)
अध्यापक, गुडीवाडा कालेज, गुडीवाडा
प्र.—दानवुडु-मानवुडु, मृत्यु निरासनम, शिल्प, सकल्प विकल्पालु

७. **रजनीकांत रावु बालांत्रपु**
प्रोग्राम असिस्टेंट, आकाशवाणी, विजयवाडा
प्र.—सतपत्र सुन्दरी, विश्ववीणा, दिव्यज्योति इत्यादि

८. **रमणा रेड्डी के. वी.** (१९२८—)
कवालि (आन्ध्र) कवालि-कालेज में अध्यापक
प्र.—कडवि, भुवन घोष

९. **रामलिंगेश्वर रावु तुम्मलपल्लि** (१९२१—)
माइनरोलोजिस्ट, १६।१५, तुम्मलपल्लीवारी स्ट्रीट, सत्यनारायणपुरम्, गुडीवाडा, कृष्णा डि.
प्र.—पितृयज्ञम, शिवानुग्रहम, हास्यागाधाचनुश्शति इत्यादि

१०. **वेंकटरावु बालांत्रपु** (१८८१—)
कवि, प्रकाशक तथा आंध्र प्रचारिणी ग्रंथ नील्यम के संचालक
प्र.—एकान्तसेवा, काव्य कुसुमावली, लगभग १००० कविताएँ

११. **श्रीनिवासमूर्ति बेल्लूरि** (१९१०—)
कल्याणदुर्ग के बोर्ड हाई स्कूल में तेलुगु पंडित
प्र.—प्रेम तपस्विनी, जपमाला, तपोवनम्, अपश्रुति

१२. **सुब्बाराबु रायप्रोलु** (१८९२—)
तिरुपति, श्रीवेंकटेश्वर यूनिवर्सिटी मे प्रोफेसर, साहित्य अकादेमी की तेलुगु परामर्शदात्री समिति के सयोजक
प्र.—तृण ककणम्, कष्ट कमल

९. पंजाबी

१. **अजायब चित्रकार** (१९२४—)
'साहित्य समाचार' के सपादक
प्र.—सूरज मुखिया, भुलेखे, सजरी पैंर

२. **अमृता प्रीतम** (१९१९—)
आकाशवाणी नई दिल्ली के पजाबी कार्यक्रमो से संबद्ध; साहित्य अकादेमी की पजाबी सलाहकारी समिति की संयोजिका; '५३ से '५५ के सर्वश्रेष्ठ पंजाबी ग्रथ के लिए अकादेमी-पुरस्कार प्राप्त
प्र.—सुनेहुड़े (कविताएँ), पिंजर (उपन्यास)

३. **ईश्वर सिंह** (१९११—)
आर्टिस्ट सरकारी नौकर
प्र.—सुल सुराही, भख्दियॉ लहरॉ

४. **गुरुचरण सिंह रामपुरी** (१९२९—)
इलक्ट्रिक डिपार्टमेंट में ड्राफ्ट्समैन
प्र.—कंकण की खुशबू

५. **बावा बलवंत** (१९१५—)
प्र.—महानाच, बंदरगाह, काव-सागर

६. **मोहनसिंह** (प्रो.) (१९०४—)
'पंज दरिया' के सपादक, साहित्य अकादेमी की पजाबी सलाहकारी समिति के सदस्य
प्र.—सावे पत्तर, अधवाटे, आवाजॉ आदि अनेक ग्रथ

७. **संतसिंह सेखों** (१९०८—)
प्रोफेसर; साहित्य अकादेमी की पंजाबी सलाहकारी समिति के सदस्य
प्र.—कव दूत

८. **संतोखसिंह 'धीर'** (१९२०—)
स्वतंत्र लेखन

प्र.—पहु-फूटाला, धरती मगदी मीह वे, पत्त झड़े पुराणे (कविता-संग्रह); और दो कहानी सग्रह

९. **सुरजीत रामपुरी** (१९२६—)
अध्यापक
प्र.—गीतॉ भरी सावे

१०. **हरनामसिंह 'नाज़'** (१९२६—)
'रणजीत' के अवैतनिक संपादक
प्र.—नाजो

१०. बँगला

१. **अजित दत्त** (१९०७—)
बॅगला साहित्य के प्रोफेसर
प्र.—पॉच कविता-सग्रह और एक निबध-संग्रह

२. **आनंद बागची** (१९३४—)
पता : ५-ए, नीमटोला लेन, कलकत्ता-६
प्र.—प्रलाप, स्वागत सध्या

३. **उमादेवी** (१९१९—)
बेथुना कालेज, कलकत्ता मे अध्यापक
प्र.—संचारिणी, गांडीय वैष्णवीय रसेर अलकीकोत्व

४. **दिनेश दास** (१९१५—)
पता : ४।१, अफताब मोस्क लेन, कलकत्ता २७
प्र.—कविता, भूख-मिछिल, दिनेस दासेर कविता, अहल्या

५. **नीरेन्द्र चक्रवर्ती** (१९२४—)
पत्रकार, 'आनन्द बाजार पत्रिका' के सह-संपादक
प्र.—नील निर्जन

६. **प्रमथनाथ बिशी** (१९०२—)
कलकत्ता-विश्वविद्यालय में बॅगला साहित्य के अध्यापक
प्र.—उपन्यास, कहानी, प्रहसन, निबंध सब-कुछ प्रचुर मात्रा में लिखा है; छै कविता-संग्रह प्रकाशित

७. **प्रेमेन्द्र मित्र** (१९०४—)
आकाशवाणी कलकत्ता के सलाहकार; राष्ट्रीय कमीशन, यूनेस्को के मनोनीत सदस्य; साहित्य अकादेमी की बॅगला परामर्शदात्री समिति के संयोजक; '५४ से '५६ के सर्वश्रेष्ठ बॅगला-ग्रंथ के लिए अकादेमी-पुरस्कार-विजेता
प्र.—पंक, बेनामी बदर, पुतुल ओ प्रतिमा, मिच्छिल, प्रथमा, मृत्तिका, निशीथ नागरी, उपनयन, सम्राट्, धुली धूसर, सागर थेके फेरा इत्यादि

८. **बुद्धदेव बसु** (१९०८—)
'कविता' के संस्थापक-संपादक; 'कविता-भवन', २०२, रासबिहारी एवेन्यू, कलकत्ता—२९; साहित्य अकादेमी की बॅगला परामर्शदात्री समिति के सदस्य
प्र.—लगभग १०० से अधिक कविता-संग्रह, उपन्यास, समालोचना, आदि प्रकाशित हो चुकी हैं; 'शीतेर प्रार्थना : बसन्तेर उत्तर' पर निखिल भारत बग साहित्य सम्मेलन का पुरस्कार

९. **मणीन्द्र राय** (१९१९—)
तीन कविता-संग्रह प्रकाशित

१०. **वाणी राय** (१९१९—)
स्वतत्र लेखन तथा पत्रकारिता
प्र.—जुपीटर, पुनरावृत्ति, प्रेम, सप्तसागर इत्यादि

११. **संजय भट्टाचार्य** (१९०९—)
बंगला मासिक पत्रिका 'पूर्बाशा' के भूतपूर्व सपादक
प्र.—सात काव्य-संग्रह प्रकाशित

१२. **सुधीन्द्रनाथ दत्त** (१९०९—)
बॅगला मासिक पत्रिका 'परिचय' के १९३९ मे संस्थापक-संपादक थे। स्वतंत्र लेखन
चार कविता-संग्रह और एक निबंध-सग्रह प्रकाशित

१३. **सुनीलकुमार नन्दी** (१९३०—)
'अनुक्त' के संपादक
विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ में लिखते हैं; निखिल कुमार नन्दी के साथ सर्वोत्तम बगाली कहानियो का सपादन कर रहे हैं

१४. **सुभाष मुखोपाध्याय** (१९१९—)
पता : ५ बी डॉ. शरत् बनर्जी रोड, कलकत्ता–२९
प्र.—पदातिक, देश-विदेशेर रूपरेखा, अग्निकोण, चिरकूट अमर बगला, नाजिम हिकमतेर कविता, बगालीर इतिहास इत्यादि

१५. **हरप्रसाद मित्र** (१९१७—)
कलकत्ता विश्वविद्यालय में बॅगला साहित्य के अध्यापक
पॉच कविता-सग्रह और निबध तथा साहित्य-समालोचना के सग्रह प्रकाशित

१६. **हुमायूँ कबीर** (१९०६—)
भारत सरकार मे वैज्ञानिक अनुसधान तथा सास्कृतिक विषयो के मत्री
प्र.—स्वप्न-शोध, साथी, धारावाहिक, बॉग्लार काव्य, इत्यादि; अंग्रेजी मे 'दि महात्मा एड अदर पोएम्स' तथा कई ग्रन्थ।

११. मराठी

१. **इंदिरा** (श्रीमती) (१९१४—)
बेळगॉव मे स्वतत्र लेखन
प्र.—सहवास, शेला, मेंदी : अंतिम सग्रह पर बबई राज्य की ओर से पुरस्कार प्राप्त

२. **कान्त** (१९१३—)
आकाशवाणी, नागपुर से सबद्ध
पता : प्लाट न. २५८, न्यू रामदास पेठ, नागपुर (महाराष्ट्र)
प्र.—फटत्कार, रुद्र-वीणा, तथा शत-तारका

३. **कुसुमाग्रज** (१९१२—)
नासिक में अध्यापक
प्र.—जीवनलहरी, विशाखा, किनारा, समिधा

४. **गुणाकर देशपांडे** (१९३०—)
नागपुर विश्वविद्यालय में अध्यापक

५. **ना. घ. देशपांडे** (१९०९—)
विदर्भ में सरकारी वकील
प्र.—शीळ

६. **पुरुषोत्तम शिवराम रेगे** (१९१०—)
सिडनहैम कालेज के प्रिन्सिपल, साहित्य अकादेमी की मराठी सलाहकारी समिति के सदस्य
प्र.—साधना, फुलोरा, हिमसेक, दोला, गाथा, गंधरेखा इत्यादि

७. **बा. भ. बोरकर** (१९१०—)
आकाशवाणी, पूना में मराठी कार्यक्रमो से सम्बद्ध
प्र.—जीवन संगीत, दूधसगार, आनन्द-भैरवी.

८. **बा. सी. मर्ढेकर (स्व.)** (१९०९–१९५६)
आकाशवाणी नई दिल्ली के अधिकारी थे, आपके ग्रथ 'सौन्दर्य आणि साहित्य' को साहित्य अकादेमी के '५३ से '५५ तक प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ मराठी ग्रंथ का ५००० का पुरस्कार दिया गया।
प्र.—शिशिरागम, काहीं कविता, आणखी काही कविता

९. **म. म. देशपांडे** (१९२९—)
पता : एकाउण्टेट जनरल, मध्य प्रदेश, नागपुर ब्राच, नागपुर

१०. **मंगेश पाडगाँवकर** (१९२९—)
आकाशवाणी, बबई के मराठी कार्यक्रमो से सम्बद्ध
प्र.—धारा-नृत्य, जिप्सी

११. **वसंत बापट** (१९२२—)
बबई के नेशनल कालेज मे प्रोफेसर
प्र.—बिजली

१२. **विंदा करंदीकर** (१९१८—)
गोविद वि. करदीकर का उपनाम
रामनारायण रूइया कालेज, बबई मे अंगरेजी के अध्यापक
प्र.—स्वेदगगा, मृद्गंध

१३. **शरच्चंद्र मुक्तिबोध** (१९२९—)
नागपुर विश्वविद्यालय में मराठी के अध्यापक
प्र.—नवी मळवाट, यात्रिक (कविताएँ), क्षिप्रा (उपन्यास)

१४. **सरिता पदकी** (श्रीमती) (१९२८—)
पता : ६३९।४८ माडीवाले कालोनी, पूना–२
प्र.—बाधा (स्वतंत्र सामाजिक नाटक)

१२. मलयालम

१. **एम. पी. अप्पन** (१९१३—)
अध्यापक, त्रिवेंद्रम
प्र.—वेल्लिनक्षत्रम्, स्वातन्त्र्य गीतम्, किल्लिकोंचल, पनिनीरपुवुम् पडवल्लुम्, दिव्यदीपम्, जीवितोत्सवम्

२. **ओ. एम. अनुजन्** (१९२८—)
अध्यापक
प्र.—मुकुलम्, चिल्लुवथिल, अगाधनीलकमल, अक्काइयों, प्रलयम, मलयालीची, मधुवुम, रामायुम राजावुम इत्यादि

३. **ओ. एन. वी. कुरुप्पु** (१९३१—)
अर्नाकुलम, महाराजा कालेज, मे अध्यापक
प्र.—दाहिक्कुंन्ना पानापात्रम्, माट्टुविन चट्टंगल, जा निन्ने स्नेहीकुन्नु, नील कमल

४. **ओ. सु. नम्बूद्रिपाद** (१९२३—)
स्वतंत्र लेखन
प्र.—वीणा, कल्पना, किलुंगुन्ना कय्यामम्, इल्तालम्, असरीरिकल, वीत्तैलम्, पांचाली

५. **का. मा. पणिक्कर** (१९०१—)
भारत के फ्रान्स-स्थित राजदूत
प्र.—आपक्चपलम्, चिंतातरगिणी (कविता-संग्रह), केरलसिंह्म्

६. **जी. शंकर कुरुप्पु** (१९०१—)
महाराजा कालेज, अर्नाकुलम् में मलयालम के भूतपूर्व प्रोफेसर, आकाशवाणी के सलाहकार
प्र.—साहित्य कौतुकम् (४ खंड), निमिषम्, ओटक्कुषल

७. **पैलोप्पल्ली श्रीधर मेनोन्** (१९११—)
अध्यापक, असिस्टेंट एजुकेशन आफिसर, त्रिचूर (केरल राज्य)
प्र.—कन्निकोय्त्त, श्री रेखा, ओणप्पाट्टुकार, वित्तुम् कैक्कोट्टुम्, कुन्नि मणिकल, कुडियालिक्कल, ऋषिसृंगगम् एलैक्सण्डरम्

८. **वयलार राम वर्मा** (१९२९—)
स्वतंत्र लेखन; शेरतल्लई, केरल राज्य

प्र.—आइशा, मुलंकाडे, कोन्तयुम पूनुलुम, एनिक्क मरणमिल्ला, ओरु जूवास जनिक्कुन्नु, एण्टे माहोलि कविताकल, कत्रीना

९. **वल्लत्तोल (स्व.)** (१८७८–१९५८)
मलयालम के आस्थानकवि, केरल कला मंडलम् के संस्थापक
प्र.—मग्दलन मरियम, शिष्यनु, मकनु, साहित्य मजरी (८ खड), ऋग्वेद का पद्यबद्ध अनुवाद

१०. **वेण्णिकुलम् गोपाल कुरुप्पु** (१९०२—)
त्रिवेन्द्रम के मलयालम कोश विभाग से संबद्ध
प्र.—सौंदर्यपूजा; वसंतोत्सवम्

१३. संस्कृत

१. **आर. एंटोइने** (१९१४—)
प्राध्यापक, जादवपुर विश्वविद्यालय
पता : १।३२ बी, प्रिंस गुलाम मोहम्मद रोड, कलकत्ता–२६
प्र.—संस्कृत मैनुअल

२. **एन. भीम भट** (१९३३—)
संस्कृत अध्यापक, पता : कन्याना पी. ओ., वाया-विट्टल, साउथ कनारा जि. (मैसूर राज्य)
प्र.—काश्मीरसन्धानसमुद्यमः, गोवास्वातन्त्र्यम्, हैदराबादविजय आदि,

३. **कविशेखर राजशेखर**
(खेद है, परिचय प्राप्त न हो सका।)

४. **के. वी. कृष्णमूर्ति शर्मा** (१९००—)
दकन कालेज, पूना के डिक्शनरी विभाग मे संस्कृत अध्यापक
प्र.—सह्याद्रिवर्णनम्, कलिविजृम्भणम्, शतकत्रयम्, नानमजरीर्थे, रामकर्णामृतम्

५. **के. वी. सुब्रह्मण्य शास्त्री**
(खेद है, परिचय प्राप्त न हो सका।)

६. **गौरीप्रसाद चुनीलाल झाला** (१९०७—)
सेंट ज़ेवियर कालेज, मुबई मे संस्कृत तथा गुजराती के प्राध्यापक
प्र.—कालिदास ए स्टडी (अंग्रेजी), सुषमा (संस्कृत कविताओं का संग्रह), दी प्राब्लम आफ दि यज्ञफलम्, इत्यादि

७. **जयनारायण रामकृष्ण पाठक** (१९२५—)
शारदा-मंदिर हाईस्कूल में हिन्दी-संस्कृत-अध्यापक
पता : महता पोल, गर्जीवाडा, बड़ौदा

८. **पी. नारायण नायर** (१८९८—)
अवकाश-प्राप्त अध्यापक, पता : नेम्मारा पी. ओ., केरल
प्र.—मलयालम भूपाल मंगलम्, मणि मेखला, संस्कृत कोवलम् कन्नकि

९. **बहादुर चन्द छाबड़ा** (१९०८—)
आर्किआलाजी डिपार्टमेंट (ऊटकमण्ड) में कार्य करते हैं
प्र.—स्वर्ण-बिन्दु, न्यक्तराजन् पद शोभा, ईषोपालम्भ, लोकोक्तियाँ और मुहावरे

१०. **भट्ट मथुरानाथ शास्त्री** (१८८९—)
महाराजा संस्कृत कालिज जयपुर में साहित्य-विभाग के अध्यक्ष
प्र.—साहित्य वैभव, जयपुर, गोविन्द, आदर्श रमणी आदि

११. **मथुराप्रसाद दीक्षित** (१८७७—)
पता : १४९ हजारीयाना, बाडा गाँव, गेट रोड, झाँसी
प्र.—वीर प्रताप, भारत विजय, शंकर विजय, पृथ्वीराज, भक्त सुदर्शन, मातृ-दर्शन इत्यादि

१२. **माधव श्रीहरि अणे** (१८८०—)
पता : ४७ सिविल लाइन्स, नागपुर; बिहार के भूतपूर्व राज्यपाल
प्र.—मराठी तथा अंग्रेजी में भाषणों और लेखों का संग्रह (४ भाग)

१३. **रुद्रदेव त्रिपाठी** (१९२५—)
अध्यापक; पता : महेश्वर प्रिंटिंग प्रेस, मुरादाबाद
प्र.—विनोदिनी, प्रेरणा, पत्रदूतम्

१४. **विद्याधर शास्त्री** (१९०१—)
डूँगर कालेज, बीकानेर में संस्कृत के प्राध्यापक
हरनामामृतम्, लीला लहरी, कलिपलायनम्, पूर्णानन्दम्, मरु माधुरी, यथार्थ दर्शन इत्यादि

१५. **वी. गोपाल आयंगर** (१९००—)
संस्कृत प्राध्यापक, राजा सरफौजी कालिज, तंजौर
प्र.—रघुवंश (संपादित), कुमारसंभव (संपादित)

१६. **वे. राघवन** (१९०८—)
मद्रास यूनिवर्सिटी मे संस्कृत के प्राध्यापक; साहित्य अकादेमी की सस्कृत सलाहकारी समिति के सयोजक; सपादक 'संस्कृत प्रतिभा'
प्र.—शृगार प्रकाश, शृगार मजरी, आर्य-शतक व्याख्या, रसलीला इत्यादि; कई अग्रेजी ग्रथ

१४. सिन्धी

१. **अर्जन मीरचन्दाणी 'शाद'** (१९२४—)
खालसा कालेज माटुंगा में सिन्धी के प्राध्यापक
फिल्म स्टार, आलोचक और कवि

२. **खीअलदास बेगवाणी 'फानी'** (१९१४—)
मध्य प्रदेश मे शिक्षा विभाग मे असिस्टेंट डिस्ट्रिक्ट इस्पैक्टर
प्र.—मुक्ति-मार्ग, फुटकल कविताएँ.

३. **गोर्धन महबूबाणी 'भारती'** (१९२९—)
अजमेर मे अकाउट्स क्लर्क
प्र.—उमर मारुई (हिन्दी मे नाटक), गुल ऐं मुखिड़ियूँ, सिन्धी रत्नमाला

४. **(स्व०) दीवान सोभराज निर्मलदास 'फ़ानी'** (१८८३–१९५६)
सिन्ध मे १९३७ मे डिप्टी कलेक्टर के पद से निवृत्त
प्र.—खयाली झलिका, चित फुलवाड़ी, रूहानी तिजला, वीचार वखर, गुलस्तान (अनूदित), पहाका इत्यादि

५. **नारायण 'श्याम'** (१९२२—)
दिल्ली मे अपर डिवीजन क्लर्क
प्र.—माक-फुड़ा पखिड़ियूं, रग रती लहर

६. **परसराम हीरानन्द सचानन्दाणी 'ज़िया'** (१९११—)
कल्याण कैम्प मे एक सेकण्डरी स्कूल में सिन्धी के अध्यापक
प्र.—तस्वीर अहसास और अदबी गुल (सिन्ध सरकार से पुरस्कृत), सुखमनी, जप साहेब, नाए महले के सलोक और ऋग्वेद के मन्त्रो का सिन्धी में पद्यानुवाद

७. **बलदेव गाजरा 'गुमनाम'** (१९०९—)
सम्पादक 'भारतवासी', सिन्धी साप्ताहिक पत्र
प्र.—गुमनाम सदा

५. **नरेन्द्र शर्मा** (१९१६—)
आकाशवाणी के बम्बई-केन्द्र में हिन्दी-परामर्शदाता
प्र.—प्रभात फेरी, शूल फूल, कामिनी, पलाशवन, प्रवासी के गीत, हंसमाला, अग्निशस्य, रक्तचन्दन (कविता-सग्रह)

६. **'निराला' सूर्यकान्त त्रिपाठी** (१८९६—)
स्वतन्त्र लेखन
प्र.—परिमल, अनामिका, गीतिका, अपरा, तुलसीदास, नये पत्ते, अर्चना (कविता-संग्रह)

७. **बालकृष्ण राव** (१९११—)
स्वतन्त्र लेखन
प्र.—कवि और छवि, आभास, रात बीती (कविता-सग्रह), संपादक 'कवि-भारती'

८. **बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'** (१८९७—१९६०)
राज्य-सभा के सदस्य
प्र.—कुंकुम, क्वासि, अपलक, रश्मिरेखा, विनोबा-स्तवन, ऊर्मिला (कविता—सग्रह)

९. **भगवती चरण वर्मा** (१९०३—)
स्वतन्त्र लेखन; आकाशवाणी के कई केन्द्रों में हिन्दी-परामर्शदाता रहे
प्र.—प्रेम संगीत, मधु-कण (कविता-संग्रह)

१०. **भवानीप्रसाद मिश्र** (१९१४—)
आकाशवाणी के नई दिल्ली केन्द्र से सम्बद्ध
प्र.—गीत-फरोश (कविता-संग्रह)

११. **भारतभूषण अग्रवाल** (१९१९—)
आकाशवाणी के भोपाल केन्द्र से सम्बद्ध
प्र.—छवि के बन्धन, जागते रहो, मुक्ति-मार्ग (कविता-संग्रह)

१२. **माखनलाल चतुर्वेदी** (१८८८—)
सम्पादक 'कर्मवीर', खण्डवा (मध्य प्रदेश); आपको १९५५ का साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त हुआ।
प्र.—हिम तरंगिनी, हिम किरीटिनी, माता, समर्पण (कविता-संग्रह)

१३. **मैथिलीशरण गुप्त** (१८८६—)
राज्य-सभा के सदस्य; साहित्य अकादेमी की हिन्दी-परामर्शदात्री समिति के सदस्य
प्र.—भारत–भारती, जयद्रथ-वध, यशोधरा, साकेत, जय भारत, पचवटी, द्वापर, प्लासी का युद्ध, स्वप्नवासवदत्ता, मेघनाद-वध, रूबाइयात उमर खयाम, विष्णुप्रिया इत्यादि (कविता-संग्रह)

१४. **रामकुमार वर्मा** (१९०५—)
मास्को विश्वविद्यालय मे हिन्दी के अध्यापक
प्र.—अंजलि, रूपराशि, चित्ररेखा, चन्द्रकिरण, वीर हम्मीर, चित्तौड की चिता, अभिशाप, निशीथ, आकाशगगा, आधुनिक कवि (कविता–संग्रह)

१५. **सियारामशरण गुप्त** (१८९५—)
स्वतन्त्र लेखन
प्र.—मौर्य-विजय, दूर्वादल, आत्मोत्सर्ग, अनाथ, विपाद, आर्द्रा, पाथेय, मृण्मयी, बापू, दैनिकी, उन्मुक्त, निष्क्रिय, प्रतिशोध (कविता-सग्रह)

१६. **सुमित्राकुमारी सिनहा** (१९१५—)
आकाशवाणी के लखनऊ-केन्द्र से सम्बद्ध
प्र.—विहाग, आशा-पर्व, पन्थिनी, बोलो के देवता (कविता-सग्रह)

१७. **सुमित्रानन्दन पन्त** (१९००—)
आकाशवाणी के प्रयाग केन्द्र के परामर्शदाता।
प्र.—ग्रन्थि, वीणा, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि, मधु ज्वाल, ज्योत्स्ना, उत्तरा (कविता-सग्रह)

१८. **हंसकुमार तिवारी** (१९१८—)
स्वतन्त्र लेखन
प्र.—अनागत, रिमझिम, नवीना (कविता-सग्रह)

शुद्धि-पत्र

हमे खेद है कि पूरी सावधानी बरतने पर भी इस ग्रन्थ के मुद्रण मे कुछ भूले रह गई हैं। पाठको के निकट हम इन भूलो के लिए क्षमा-प्रार्थी हैं। निवेदन है कि वे इनमें निम्नाकित सुधार कर ले :—

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
१०१	७	'जोश' मलीहाबादी	'जोश' मलसयानी
३४८	५	पेरिम स्वामी तूरन	पेरिय स्वामी तूरन
३४९	९	पेरिम स्वामी तूरन	पेरिय स्वामी तूरन
३६७	१६	मन्मथावाह	मन्मथावाहन
७६५	१४	गीत-अगीत	अगीत